प्रकाशक : मन्त्री, सर्व सेवा संघ,
राजघाट, वाराणसी
संस्करण : प्रथम : अप्रैल, १९६५ : ३,०००
द्वितीय : अक्तूबर, १९६५ : ३,०००
कुल प्रतियाँ : ६,०००
मुद्रक : ओमप्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड,
वाराणसी (बनारस) ६५१०-२२
मूल्य : ३ रुपये ५० पैसे

Title : BINA PAISE DUNIA KA
PAIDAL SA
Author : Satish Kumar
Subject : Peace Travel
Publisher : Secretary,
Sarva Seva Sangh,
Rajghat, Varanasi
Edition : First April, 1965 3,(
Second : October, 1965 3,(
Total Copies : 6,000
Price : Rs 3.50

शान्ति के समर्थकों को समर्पित

- हमने युद्ध के विरोध मे दुनिया की पैदल यात्रा की ।
- हमने शान्ति और मित्रता के लिए विश्व के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सफर किया ।
- दिल्ली से मास्को और वाशिंगटन तक की आठ हजार मील की पदयात्रा मे हमे ऐसे हजारो लोग मिले, जो हृदय से शान्ति चाहते है ।
- दुनियाभर के श्रमशील मानव एक जैसे है और वे युद्ध तथा अणु-अस्त्रो का विरोध करते है ।
- शान्ति-यात्रा के सस्मरणो की अपनी यह पुस्तक मै उन्ही शान्ति के उपासक श्रमजीवियो को समर्पित करता हूँ ।

—सतीश कुमार
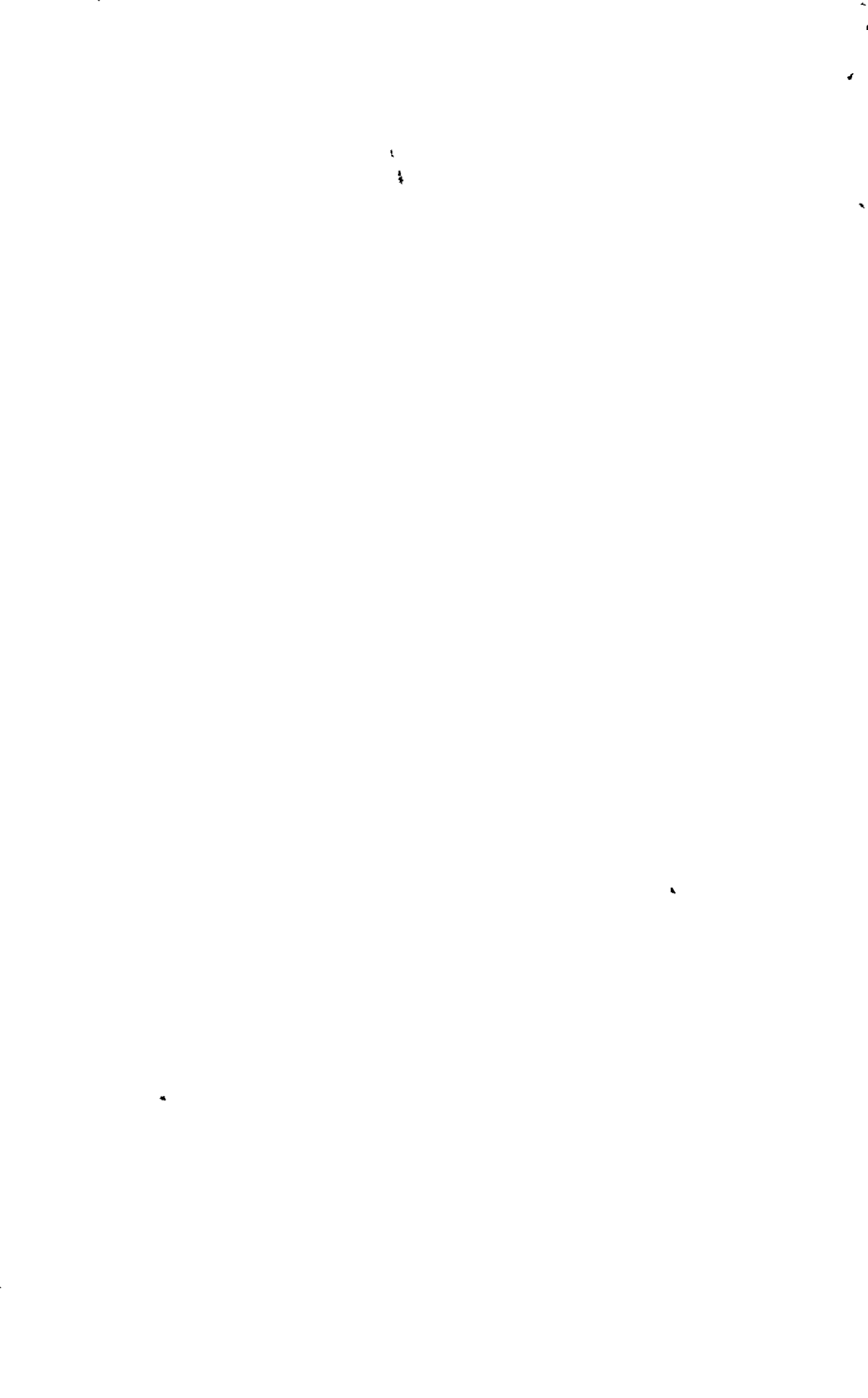
प्र का श की य

सैर कर दुनिया की गाफिल
जिन्दगानी फिर कहाँ,
जिन्दगी गर कुछ रही
तो नौजवानी फिर कहाँ ?

दो नौजवान—सतीश कुमार और प्रभाकर मेनन एक दिन दिल्ली से निकल पडे दुनिया की सैर के लिए। पर यह सैर सैलानी-पन की हविस पूरी करने के लिए नही थी, यह थी युद्ध की विभीषिका से त्रस्त जनता को अहिसा और प्रेम का सन्देश सुनाने के लिए और मास्को, पेरिस, लन्दन, वाशिगटन आदि मे बैठे राजनेताओ से नि शस्त्रीकरण की अपील करने के लिए।

और इतना ही नही, इस यात्रा की दो खूबियाँ और थी, यह यात्रा थी बिना पैसे की और बिना मवारी की। पैदल, पैदल, पैदल !

कहाँ दिल्ली, कहाँ वाशिगटन ! वापू की समाधि से शुरू हुई यह यात्रा, समाप्त हुई कैनेडी की समाधि पर।

भारत के दो शान्ति-यात्रियो का बिना पैसे का सारी दुनिया का यह पैदल सफर साहस से तो ओतप्रोत है ही, अपरिग्रह और शाकाहार के मार्ग मे आनेवाली वाधाओ से भी भरा पडा है। ये यात्री खैबर दर्रे से भी गुजरे है, रेगिस्तानो से भी, बर्फीले मैदानो से भी और जगलो से भी। पेरिस मे इन्हे जेल की भी हवा खानी पडी है और अमेरिका मे इन्हे पिस्तौल का भी सामना करना पडा है।

पर, इन सारे अनुभवो की पृष्ठभूमि मे सर्वत्र एक बात मिलती है और वह यह कि इन्सान हर जगह इन्सान है। उसके दिल मे हर इन्सान के लिए प्रेम है, सहानुभूति है, दर्द है। वह सबके साथ प्रेम से मिल-जुलकर रहना चाहता है। उसे युद्ध नही चाहिए, कतई नही।

दो-सवा दो वर्ष की इस साहसिक पैदल यात्रा के मनोरजक सस्मरण और खट्टे-मीठे अनुभव जो भी पढेगा, मुग्ध हुए बिना न रहेगा।

क्रम

भारत से प्रस्थान	७
पडोसी देश पाकिस्तान मे	३३
अंगूरो के देश अफगानिस्तान मे	४७
कला और कविता की भूमि ईरान में	६९
श्रमिको की क्रान्ति के देश सोवियत संघ मे	९७
पोलैंड की प्राणवान जनता के बीच	१५९
विभाजित जर्मनी मे	१७५
बेल्जियम की सुन्दर गोद मे	२११
सगीत, सौन्दर्य और शृगार की धरती फ्रांस मे	२२१
विचार-स्वातन्त्र्य की भूमि ब्रिटेन मे	२३७
यान्त्रिक चरमोत्कर्ष के देश अमेरिका मे	२५५
पूर्व और पश्चिम की समन्वय-भूमि जापान मे	३०७

भारत में
प्रधान
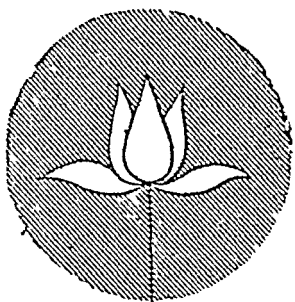
पहली जून १९६२ की शाम को नयी दिल्ली मे महात्मा गाधी की
माधि से जब हम पैदल रवाना हुए, तब हमने यह फैसला किया कि हम
दस-कदम चलकर मास्को जायेगे, पेरिस जायेगे, लन्दन जायेगे और
ाखिर मे वाशिगटन जाकर अमेरिका के युवा राष्ट्रपति से यह निवेदन
रेगे कि आप आनेवाली पीढी को अणु-युद्ध की भट्ठी मे भस्म होने से
वाने की कोशिश कीजिये। लेकिन आठ हजार मील की पदयात्रा करके
ब हम ६ जनवरी १९६४ को वाशिगटन पहुँचे, तो हमने देखा कि
ष्ट्रपति केनेडी एक हत्यारे की गोली के शिकार हो चुके थे। वे राष्ट्रपति
श्वेत भवन मे नही, बल्कि श्मशान-भूमि मे सो रहे थे। हमने इतनी
ठने और लम्बी यात्रा के बाद जिनसे मिलने की उम्मीद की थी, वे
। राष्ट्रपति-भवन मे नहीं मिले, तो हम आगे बढ़े और हमने अपनी
यात्रा केनेडी की समाधि पर जाकर पूरी की। हम बापू की समाधि से
: और केनेडी की समाधि पर पहुँचे। जब बापू ने हिन्दुओ और मुसल-
ाो को मिलकर रहने के लिए कहा, तो एक हिन्दू ने उन्हे गोली से
दिया। जब केनेडी ने काली और गोरी चमड़ी के लोगो को मिलकर

हम दिल्ली से मास्को, पेरिस, लन्दन और वाशिंगटन तक की पद-यात्रा करे ?"

प्रभाकर के मुँह से अचानक एक साहसभरी बात फूट पडी। मैने तुरन्त प्रभाकर की पीठ ठोकी : "शाबास ! तुम्हारी बात मेरे मन मे तीर की तरह चुभ गयी है।"

मेरी बात सुनते ही प्रभाकर का जोश कई गुना बढ गया। बोले : "पर क्या हम दो ही इसके लिए काफी है ?"

मैने कहा : "मेरे मित्र, संख्या पर न जाओ, गुण पर जाओ। अगर हम सच्चे दिल से काम करेगे, तो १ और १ मिलकर २ नही, बल्कि ११ जैसे होगे।"

इसी बातचीत मे हमने दो-तीन कप कॉफी पी डाली। बात पक्की हो गयी।

भाषा की समस्या

●

मेरे सामने एक समस्या थी। मै ९ साल की छोटी उम्र मे जैन-साधु बना दिया गया था। इसलिए स्कूल मे केवल तीन क्लास तक शिक्षा पायी थी। मैने स्कूल मे अंग्रेजी नही पढी। साधु बनने के बाद तो मेरी शिक्षा धर्म-ग्रन्थो और संस्कृत तक ही सीमित रही। १८ साल की उम्र मे मै जैन-साधु का जीवन छोड़कर सर्वोदय-आन्दोलन मे विनोबाजी के पास चला गया। इसलिए अंग्रेजी की शिक्षा मैने बिलकुल नही पायी। जब मैने प्रभाकर के साथ यह तय किया कि हम लोग आणविक अस्त्रो की अन्धी प्रतियोगिता के खिलाफ विश्व की पद-यात्रा करेगे, तब मेरे सामने सवाल आया—भाषा का। क्या बिना अंग्रेजी के यह यात्रा सम्भव है ? मेरे मन का हीन भाव मुझे अन्दर-अन्दर खाता रहा। हमारे अंग्रेजी-भक्त नेताओ ने मानसिक दृष्टि से हमे कितना कमजोर और गुलाम बना दिया है, इसका अहसास मुझे होने लगा। अंग्रेजी को हमने

ऐसी देवी बना दिया है, मानो वही सब कामो को सिद्ध करनेवाली हो। जो अंग्रेजी नहीं जानते, वे अपने-आपको कमजोर, हीन और असहाय महसूस करते है।

प्रभाकर ने कहा : "भाषा की कतई चिंता मत करो। हम तो केवल ब्रिटेन या अमेरिका नहीं जा रहे है। हमे तो सबसे पहले फारसी और रूसी-भाषी लोगो से मिलना है। चिन्ता केवल अंग्रेजी के लिए नहीं, सभी भाषाओं के लिए करो।" यो मेरा मन आश्वस्त तो हुआ, फिर भी एक खटका बना हुआ था। लेकिन जब हम ७ हजार मील की पद-यात्रा करके, बारह विभिन्न राष्ट्रो को पार करते हुए अमेरिका पहुँच गये, तब अंग्रेजी के प्रति मेरे मन मे जो भ्रान्त कल्पनाएँ खड़ी थीं, वे सब धुल गयीं। मन का खटका मिट गया। सिर पर चढ़ा अंग्रेजी का भूत उतर गया। अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा नहीं है, यह स्पष्ट हो गया।

हमने अफगानिस्तान और ईरान मे पॉच महीने तक पद-यात्रा की। इन पॉच महीनो मे अंग्रेजी ने रत्तीभर साथ नहीं दिया। हमने एकाग्रता-पूर्वक कोशिश करके फारसी सीखी और उस टूटी-फूटी फारसी ने ही हमारा काम बनाया। चार महीने तक हम सोवियत-संघ मे रहे। वहॉ भी हमने रूसी भाषा सीखी। शुरू-शुरू मे कुछ कष्ट हुआ। पर जो अभाव खटकता था, वह अंग्रेजी न जानने का नहीं, बल्कि रूसी न जानने का था।

केवल १४-१५ करोड लोगो की मातृभाषा अंग्रेजी है। ब्रिटेन और अमेरिका मे भी सब लोगो की मातृभाषा अंग्रेजी नहीं है। हिन्दी-भाषी लोगो की संख्या भी इससे कम नहीं। रूस में यदि हमे अंग्रेजी के दुभाषिया मिले तो हिन्दी के भी मिले। मास्को विश्वविद्यालय मे मेरे भाषण का अनुवाद करनेवाली बहन की हिन्दी इतनी शुद्ध और धाराप्रवाह थी कि मुझे भरोसा नहीं हुआ कि वह हिन्दी-भाषी नहीं है। मैने मास्को विश्व-विद्यालय मे भाषण देते हुए एक जगह कहा : "रूस की जनता 'हमारा' खूब मदद करती है।" तुरन्त ही दुभाषिया बहन ने मुझे रोकते हुए कहा : "हमारा मदद ? या 'हमारी' मदद ?" मै आश्चर्य मे पड़ गया। उस

तरुणी की शुद्ध हिन्दी देखकर। उसके मुँह से शुद्ध भारतीय स्वर मे मीराबाई के भजन सुनकर तो मै चकित ही रह गया। ल्यूद्मीला नाम की यह दुभाषिया बहन हमे अपने विदेशी भाषाओ के महाविद्यालय मे ले गयी, जहाँ पचासो विद्यार्थी धड़ल्ले से हिन्दी बोलते है। इसी तरह पेरिस मे हमारे भारतीय राजदूत ने बताया कि वहाँ संस्कृत और हिन्दी का जैसा विद्यापीट है, वैसे विद्यापीठ भारत मे भी कम ही होगे। जापान मे भी टोकियो और ओसाका विश्वविद्यालय मे हिन्दी के अध्ययन की विशेष व्यवस्था है। जब कि भारत के एक भी विश्वविद्यालय मे जापानी सिखाने के लिए कोई विभाग नही है। इसी तरह अन्य देशो मे भी हिन्दी का ज्ञान बढ रहा है, पर हमारे अपने ही देश मे अपनी ही भाषा उपेक्षित और अनाथ पडी है। जर्मनी और फ्रास मे हम वहाँ की भाषा नही जानते थे, इसलिए कभी-कभी तो दिनभर हमे कोई बात करनेवाला तक नही मिलता था। अग्रेजी के बारे मे हमने जो ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ बाँध रखी है, वे सब वास्तविक नही है।

इसी बीच मैंने फारसी और रूसी की भाँति अग्रेजी का भी अभ्यास प्रारम्भ किया। हालाँकि मैं व्याकरण नहीं जानता, अग्रेजी मे लिखने का भी अभ्यास नहीं, लेकिन अग्रेजी मे बात कर सकता हूँ, भाषण कर सकता हूँ। हमे किसी भाषा से नफरत नही। हम सभी भाषाओं का सम्मान करे। अधिक-से-अधिक जितनी भाषाएँ सीख सके, अवश्य सीखे। परन्तु अपने देश की जन-भाषा को उपेक्षित करके किसी एक ही भाषा के गुलाम बन जायँ, यह ठीक नहीं। जो भाई अग्रेजी नहीं जानते, वे अपने मे हीन भाव कतई न महसूस करें। यह ज्ञान मुझे अपने अनुभव मे मिला है। मैंने अग्रेजी नही पढी, पर मै विश्व-यात्रा करने मे सफल हुआ।

मित्रो का सहयोग

●

हमने सबसे पहले बर्ट्रेण्ड रसेल को और अमेरिका के उन तरुणों को पत्र लिखे, जिन्होंने सानफ्रांसिस्को से मास्को की यात्रा की थी। दोनों ने

तुरन्त हमे उत्तर दिया। रसेल ने लिखा कि "आपके मन मे यह बात आयी, यही हमारे लिए बडी प्रेरणा की बात है। जरूर योजना बनाइये और आगे बढिये।" अमेरिका के तरुणो ने लिखा : "स्वागत है आपका ! बस, मन को पक्का कीजिये। बिना बडे-बडे नेताओ की तरफ ताके अपनी योजना पर अमल कीजिये। सफलता आपके चरण चूमेगी।" साथ ही साथ इन दोनो ने यह भी लिखा कि "हम अपने क्षेत्र मे आपकी यात्रा का पूरा प्रबन्ध करेगे।" बस, हमारा विचार पक्का हो गया।

हमारे देश के नेताओ के आशीर्वाद का सवाल भी सामने था। क्योकि विदेश-यात्रा मे अनेक औपचारिक दिक्कते आती है। हमने स्व० प्रधानमत्री पं० नेहरूजी को लिखा। वे उन दिनो आम चुनाव के कारण बहुत व्यस्त थे। फिर भी उन्होने हमे तुरन्त उत्तर दिया : "इसके परिणाम के बारे मे मै सशकित हूँ, पर आपका आदर्श ऊँचा है। आपका साहस मुझे पसन्द आया। यह काम बहुत जरूरी है।" इसी तरह डॉ० राधाकृष्णन् ने भी बड़ा उत्साहवर्द्धक सन्देश भेजा। शाति के काम मे लगी हुई विभिन्न सस्थाओ को जब हमने अपनी योजना बतायी, तो सभी सस्थाओ ने हमे पूरा-पूरा समर्थन और सहयोग प्रदान किया।

इन सारी तैयारियो के बाद प्रश्न था—आर्थिक सयोजन का। सवा दो वर्ष का लम्बा समय, आठ हजार मील की लम्बी पद-यात्रा, पूरे विश्व की परिक्रमा, इसके लिए कितना धन चाहिए।

इस काम के लिए किसी संस्था से अर्थ-याचना करे, यह भी हमे नहीं जॅचा। हमने यही निर्णय किया कि कुछ भी हो, इस काम के लिए न किसी संस्था से धन लेगे, न सरकार से या किसी निधि से कोई मदद मॉगेगे और न कोई चदा करेगे। जो मित्र व्यक्तिगत रूप से हमे जानते है और मित्रता के नाते हमारी मदद कर सकते है, केवल उन्हीसे हम सहायता लेगे। इस बीच मैने कलकत्ता के अपने मित्रो के सामने इतनी बड़ी यात्रा के लिए होनेवाले भारी खर्च का सवाल रखा। यो व्यापारियो के सामने पैसे का प्रश्न बड़ा कठिन होता है, परन्तु मुझे यह देखकर

आश्चर्य हुआ कि कलकत्ता के मेरे साथी बिना किसी झिझक के हर प्रकार का खर्च उठाने के लिए तैयार हो गये। विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का सवाल जटिल था। भारत सरकार के तत्कालीन वित्त-मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने विदेशी मुद्रा देने से इनकार कर दिया। पर कलकत्ते के साथी बोले कि आप कोई चिन्ता न करे। विदेश मे ही आपको पैसा मिल जाय और ट्रावलर्स चेक के रूप मे आप वह पैसा साथ मे रख सके, ऐसी व्यवस्था हम कर देगे। मित्रो की तरफ से इतना आश्वासन और भरोसा मिलने के बाद मै निश्चिन्त तो हो गया था, परन्तु यह बात मन मे बराबर खटकती थी कि इतने खर्च का बोझ मित्र-मंडली पर कैसे डाला जाय। लेकिन मित्रों का सहयोग स्वीकार करने के अलावा हमारे सामने और कोई चारा भी तो नही था।

पत्नी का साहस

●

मुझे विवाह किये अभी सालभर भी नहीं हुआ था। मै इतनी लम्बी अवधि के लिए पत्नी से कैसे दूर चला जाऊँ, यह भी बडा कठिन प्रश्न था। उन दिनो जब मै और प्रभाकर विश्व-यात्रा की योजना बना रहे थे, मेरी पत्नी प्रसव के लिए पीहर गयी हुई थी। ऐसे भावुक और नाजुक समय मे अगर मै अपनी पत्नी से इस विश्व-यात्रा पर निकलने की बात कहूँगा तो उसके मन पर कैसी गुजरेगी, यह सोचते ही मेरा मन कुछ आशंकित होने लगता था। इसलिए दिन पर दिन, सप्ताह पर सप्ताह, यहाँ तक कि महीना भी बीत गया। यात्रा के विभिन्न पहलुओं पर हम विचार-विमर्श करते गये, पर इस सवाल का हल मेरे मन को नहीं सूझ पा रहा था कि गर्भिणी पत्नी को इतने लम्बे समय के लिए वियोग मे डालकर कैसे जाऊँ? मुझे अपने-आप पर कुछ क्रोध भी आ रहा था कि आखिर ऐसे मौके पर ऐसी योजना मैंने बनायी ही क्यो? मेरा क्रोध था पूरी पुरुष-जाति पर। कभी योग और संन्यास के बहाने, कभी साधना और तपस्या के बहाने, कभी

पढ़ाई और व्यापार के बहाने पत्नियो को घर पर छोड़कर जाने की परम्परा नयी नहीं है। मै भी तो वैसा ही करने जा रहा हूँ। जितनी तडप मुझे इस विश्व-यात्रा पर जाने की थी, उससे कम तडप पत्नी के साथ रहकर उसका स्नेह पाने के लिए नही थी। इसलिए मैने लम्बे पसोपेश के बाद अपनी पत्नी को दिल थामकर एक पत्र लिखा .

"प्रिय लता,

आज का पत्र प्रतिदिन के पत्रो जैसा पत्र नही है। आज के पत्र मे स्नेह-उलाहने की बाते नही लिखनी है। तुम्हे ताज्जुब मे डाल देनेवाली एक विचित्र-सी योजना आज लिख रहा हूँ। मै जानता हूँ कि यह योजना तुम्हारे मन को चोट पहुँचायेगी। फिर भी उसे लिखने का साहस कर रहा हूँ। जब तक इस योजना पर तुम्हारी मुहर नही लगेगी, मै उस पर कोई निर्णय नही करूँगा।

योजना यह है कि प्रभाकर और मै दिल्ली से मास्को और वाशिंगटन की शाति-पद-यात्रा करना चाहते है। एक तरह से यह विश्व-यात्रा ही हो जायगी। इसमे कम-से-कम दो बरस का समय लगेगा। यदि तुम पूरे मन से राजी होकर आज्ञा दोगी, तभी मै अन्तिम रूप से तय करूँगा। आज दुनिया मे जो शस्त्र-प्रतियोगिता चल रही है, उसे खामोश बैठकर देखते रहना मुझसे होता नही है। मनुष्य-समाज का एक सदस्य होने के नाते मुझे भी अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी के रूप मे कुछ-न-कुछ करना चाहिए। भले ही मेरा प्रयत्न 'नक्कारखाने मे तूती की आवाज' की भॉति विलीन हो जाय। मेरे मन की तड़प स्पष्ट है, पर तुम्हारे अधिकार को मै पहला स्थान देता हूँ।

पत्र का उत्तर लौटती डाक से देना।

तुम्हारा स्नेहमय

सतीशकुमार"

मेरा पत्र पाते ही लता ने जो उत्तर दिया, वह पढ़कर मै आश्चर्य मे पड गया। लता ने लिखा था :

"प्रियवर,

आपकी योजना साहस और निष्ठा से भरी हुई है। यदि मै माँ बननेवाली न होती, तो मै भी इस शाति-यात्रा मे आपके साथ चलती।

अभी हमारे पहले बच्चे का जन्म होनेवाला है। इसलिए इसके जन्म के पूर्व आप कोई निर्णय न करे।

मै ज्यादा लम्बा पत्र लिख नहीं पा रही हूँ। आपके पत्र ने मन पर तरह-तरह के विचारो का बोझ डाल दिया है। इसलिए यह पत्र मिलते ही एक बार आप मेरे पास तुरन्त चले आइये। यहाँ आने पर विस्तार से बाते करूँगी।

आपकी
लता"

इस पत्र ने मुझे ढाढ़स बँधाया। मै अपने-आप पर थोड़ा नाराज था। मेरे मित्रो ने भी कहा कि "तुम लता की और होनेवाली सन्तान की जिम्मेदारी से मुँह मोडकर भाग रहे हो।" मेरा अन्तर्द्वन्द्व मुझे शात नही बैठने दे रहा था। इसलिए मै तुरन्त ही लता के पास गया। दो दिन तक उसके साथ विस्तार से बाते की। मैने कहा : "मेरी योजना तुम्हारे सामने है। लेकिन इस योजना पर अमल करने के लिए मै तब तक प्रतीक्षा करने को तैयार हूँ, जब तक तुम खुद होकर इसे स्वीकार न करो।" इस पर लता ने कहा : "आपके मन मे उत्साह और जोश की जो तीव्रता है, वह समय के आवरणों के नीचे दब जाय, ऐसा मै नहीं चाहती। अब मै प्रसव के लिए यहाँ पीहर मे नहीं रहूँगी। आपके पास बॅगलोर मे ही प्रसव होगा। आप तब तक रुकें और उसके बाद यात्रा पर निकलें।" लता के साहस के सामने उस समय तो मै नतमस्तक हो गया, जब उसने कहा कि "मैं आपके लौटने की प्रतीक्षा करूँगी।"

१० मई को जब मै दिल्ली के लिए घर से विदा हुआ, तो लता ने तिलक लगाकर, आरती उतारकर मेरे लिए मंगल कामना की। नवजात

शिशु—साधना, जिसका बाद में मैंने 'यात्रा' नाम रखा, को गोद में लेकर वह बॅंगलोर स्टेशन पर आयी और गले में माला पहनाकर मुझे विदा किया। पूरे ढाई बरस तक मेरे आने का वह इन्तजार करती रही। १० मई १९६२ को बिछुडे हुए हम दो प्राणी १६ अक्तूबर १९६४ को फिर से मिले। यात्रा बेटी भी अब तक काफी बड़ी हो गयी है। प्रारम्भ में तो वह मुझसे झिझकती रही। पहले-पहल जब हम मिले, तो उसने लता से पूछा : "ये कौन हैं ?" "बाबूजी हैं" ऐसा बताने पर भी वह मेरे पास आने से डरती रही। पर अब तो वह मुझे छोड़ती ही नहीं।

इस विश्व-यात्रा का श्रेय लता के आशीर्वाद और साहस को ही है, जिसने मेरा जाना सम्भव और सुगम बनाया।

विनोबा से भेंट

●

विनोबा से मिलने के लिए हम १० मई को बॅंगलोर से रवाना हुए और मद्रास तथा कलकत्ता रुकते हुए १६ मई को गौहाटी से २७ मील दूर गोरेश्वर ग्राम में उनसे मिले। विनोबा टीन के छप्पर के नीचे बैठे हुए 'मैत्री आश्रम' की बहनों से बातें कर रहे थे। मुक्त हृदय से वे आश्रम-जीवन की कल्पना प्रस्तुत कर रहे थे कि बीच में ही हमने जाकर प्रणाम किया। "आ गये ?" कहकर जब विनोबा मुस्कराये, तो ऐसा लगा, मानो यात्रा की थकान पलभर में ही विलीन हो गयी।

विनोबा ने पूछा कि "किस रास्ते से मास्को पहुँचोगे ?" हमने बताया : "दिल्ली से पंजाब होकर पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान होते हुए रूस जायेंगे और मास्को के बाद यूरोप की तरफ आगे बढ़ेंगे।"

विनोबा ने 'वर्ल्ड एटलस' खोली और हमारे रास्ते के बारे में गहरी दिलचस्पी से देखने लगे। बोले : "इतना लम्बा रास्ता क्यों ले रहे हो ? क्यों नहीं अफगानिस्तान से सीधे ताशकंद होकर मास्को की तरफ आगे बढ़ते ?" हमने उत्तर में दो कारण बताये : "एक तो हम अधिक-

से-अधिक लोगो से मिलना चाहते है और दूसरा यह कि वह अधिक आसान तथा सडक का रास्ता है।"

इस प्रकार रास्ते की जानकारी, यात्रा की अब तक की तैयारी, मिशन इत्यादि के सम्बन्ध मे थोडी चर्चा करने के बाद विनोबा ने पूछा कि "कल तक तो साथ रहोगे न?" हमारे "हॉ" कहने पर बोले: "अच्छा, कल यात्रा मे चलते समय बात करेगे। उस दिन प्रार्थना-प्रवचन मे विनोबा ने हमारे लिए अत्यधिक प्रेरणादायक प्रवचन किया। 'दो जवान हमारे सामने बैठे है' इसी वाक्य से उन्होने प्रारम्भ किया और फिर निःशस्त्रीकरण, अणु-अस्त्रो का निर्माण और उनका प्रयोग, युद्ध की तैयारियॉ आदि के सम्बन्ध मे करीब एक घण्टे तक वे बोलते रहे।

आसाम हिन्दुस्तान का एक किनारा है। पहाड़ो, नदियो एव सुन्दर प्राकृतिक दृश्यो से भरा हुआ वातावरण सृष्टि के चिर-सौन्दर्य की अनुभूति कराता रहता है। ऐसे शस्य-श्यामल प्रदेश मे विनोबा की यात्रा ने नये प्राणो का सचार कर दिया था। गॉवो मे रहकर गॉव का-सा जीवन जीकर विनोबा जिस तरह काम कर रहे है, वह सम्पूर्ण देश के लिए और विशेष रूप से राजनैतिक दॉव-पेचो मे व्यस्त रहनेवाले तथाकथित नेताओ के लिए अद्भुत प्रेरणादायी है। एक व्यक्ति जिसे उम्र से, शरीर से, हर दृष्टि से आराम की जरूरत है, तरह-तरह के कष्टो का सामना करते हुए वास्तविक काम कर रहा है। यात्रा मे चलते समय, प्रवचन करते समय, कभी भी वर्षा आकर तर-बतर कर जाती है। गॉवो के मकान टपकते रहते है, पर विनोबा कहते है कि "ग्राम-स्वराज्य की प्राप्ति तक मै इसी तरह सतत चलता रहूँगा।" पूरे देश मे केवल एक विनोबा ही है, जो आज १२ साल से रोज सवेरे ३ बजे उठता है और लालटेन के मद्धिम प्रकाश मे अगले पडाव के लिए चल पड़ता है!

यह है हमारी प्रेरणा का दीपस्तम्भ, जो हम जवानो को सक्रिय प्रेरणा दे रहा है! आज देश के अधिकाश लोग सामाजिक जीवन मे मुँह मोडकर

नौकरी, बच्चे, खाना-पीना-सोना, इतने मे ही बँध गये है। आज 'पुत्र-भार्या-पोषण' तक ही कर्तव्य की इतिश्री मान ली जाती है। इन सीमित दायरो के इर्द-गिर्द ही हम सब घूमते रह जाते है। ऐसे वातावरण मे हमारी शांति-यात्रा के लिए विनोबा का आशीर्वाद और उनकी सक्रिय

प्रेरणा हमे उठने, चलने और 'कुछ' करने की स्फूर्ति दे रही थी। विनोबा से मिलने के बाद हमे लगा कि जब उन जैसा व्यक्ति इतने सालो से लगातार घूम सकता है, तो हमारे जैसे तरुणो के लिए दो साल की पद-

यात्रा मे कौन-सी कठिनाई है ? हमने पदयात्रा में विनोबा के साथ चलते समय विस्तार से बाते की, तो उन्होने कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये :

"रास्ते मे पानी तो साथ रखोगे ही ?" विनोबा ने पूछा।

"जी।"

"पानी सदा गरम पीने की कोशिश करना। गरम पानी स्वास्थ्य के लिए ठीक रहेगा, हलका और सुपाच्य रहेगा तथा नाना प्रकार के पानी से जो परेशानी हो सकती है, वह नही होगी।"

"हम कोशिश करेंगे।"—हमने कहा।

"आहार के सम्बन्ध मे क्या सोचा है ?"—विनोबा ने पूछा।

"आप जानते ही है कि हम दोनो ही शाकाहारी है। अब आप ही सुझाइये।"—हमारा प्रतिप्रश्न था।

"हॉ, यह ठीक है। शान्ति का और अहिसा का तुम्हारा जो 'मिशन' है, उसके लिए शाकाहार पूर्णतः सहायक है। पर इससे तुम्हे कुछ शारीरिक कष्टो का सामना करना होगा। यदि तुम लोग इस समस्या से पार पा गये, तो तुम्हारे 'मिशन' को बड़ी मदद मिलगी।"

विनोबा के इस उत्तर पर हमने कहा : "हम भी ऐसा ही सोचते है और हमे भरोसा है कि हम इस दिशा मे आपकी सलाह के अनुसार चल सकेगे।"

बिना पैसे की यात्रा !

"कितने पैसे साथ लेकर जा रहे हो ?"—विनोबा ने पूछा।

"हम तो जनता के भरोसे जा रहे हैं। जनता के साथ काम करना है। लोग हमे ठहरायेगे, खिलायेगे, हर तरह की मदद करेगे। फिर भी डाक, वस्त्र और अनिवार्य जरूरते पूरी करने के लिए थोडा-सा पैसा हम साथ लेगे।"

"नही।"—विनोबा ने हमारी इस बात पर कहा : "या तो तुम पूरे खर्च का प्रबन्ध साथ रखो या बिलकुल पैसा न ले जाओ।" थोडी देर

चुप रहकर फिर बोले : "यदि तुम्हारे साथ पैसा नहीं रहेगा, तो जनता स्वयं तुम्हारी मदद करेगी। इतनी लम्बी यात्रा पर जा रहे हो। देश-देशान्तर मे तुम्हारी रक्षा के लिए मै तुम्हे एक चक्र देता हूँ। चक्र यही कि अपनी जेब मे एक पैसा भी लेकर मत जाओ। इसके साथ ही शाकाहार रूपी गदा तुम्हारे पास है ही। यह गदा और चक्र तुम्हे सफलता प्रदान करेगे।"

आकाश काले बादलो से भरा था। हरे-भरे पेड़-पौधो से आसाम की धरती सॅवरी थी। ऊँची पर्वत-श्रेणियो की ओर जाती हुई टेढी-मेढ़ी सडक पर विनोबा हमारा हाथ पकडकर लम्बे-लम्बे डग भर रहे थे। हमे ऐसा लगा, मानो विनोबा हमारा हाथ पकडकर हमे यात्रा करना सिखा रहे हो। सचाई भी तो यही थी। वे हमे सीख दे रहे थे। वे स्वय सवालो को उठाते थे और स्वय ही उनका समाधान भी करते थे। एकाएक उन्होंने हमारे कन्धे पर हाथ रखा। दो मिनट मौन रहे। फिर प्यार से हमारी तरफ देखा। हम कुछ समझे नही। इतना जरूर लगा कि हमारी बातचीत करीब-करीब समाप्त हो गयी है, लेकिन कोई अन्तिम सीख विनोबा हमे देना चाहते है।

"सारी जनता शान्ति चाहती है और तुम लोग शान्ति का 'मिशन' लेकर जा रहे हो, तो जनता पर विश्वास रखकर जाओ, वह तुम्हे कष्ट मे नही पडने देगी। देशो की सीमाएँ धरती और जमीन के बीच भले हो, आदमियो के दिलो मे कही कोई सीमा या भेद नही।" एक क्षण रुककर विनोबा ने अपना विचार स्पष्ट किया : "जनता के साथ सीधा सम्पर्क होने मे पैसा बाधक होता है। मैने तो पूरा सर्वोदय-आन्दोलन जनाधार पर चलाने का विचार रखा है। तुम्हारी पदयात्रा के लिए भी मै वही मार्ग सुझाता हूँ। मुझे जनता पर पूर्ण विश्वास है। तुम लोग एक प्रयोग के तौर पर इसे आजमाओ। जाओ, तुम्हारी यात्रा के लिए मेरा पूरा आशीर्वाद है।"

खाना-पीना तो चल जायगा; पर चिट्ठी-पत्र के लिए क्या होगा ? जूते टूट जायेंगे तो क्या होगा ? कपडे फट जायेंगे तो क्या होगा ? रूस की भयकर सर्दी से बचने के लिए गरम कपडे कहॉ से आयेंगे ? बाल बढ जायेंगे तो हजामत कैसे बनेगी ? कहीं बीमार पडेगे तो दवा का क्या होगा ? और सब जाने दीजिये, पर साबुन तो प्रतिदिन चाहिए। विनोबा सन्त है, आदर्शवादी है, पर इन व्यावहारिक कठिनाइयो का सामना तो हमे ही करना होगा न ? पैसे के बिना इतनी लम्बी यात्रा कैसे मुमकिन है ? इस तरह मन ही मन अनेक संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते रहे। फिर मस्तिष्क ने तर्क किया—आखिर यहॉ पर पैसे कहॉ से आयॅगे। मित्रो से ही तो एकत्र करेगे। तो फिर क्या जिन देशो मे हम जा रहे है, वहॉ के लोग हमारे मित्र नही, अमित्र है। यह 'तो' जहॉ भी आता है, बंटाधार कर देता है। कल आसमान फट जायगा 'तो' क्या होगा ? कल मौत आ जायगी 'तो' क्या होगा ? इस तरह सोचने से क्या कभी काम चलता है ?

●

मस्तिष्क का यह तीव्र प्रतिवाद हृदय की कमजोरियो पर छा गया। आसाम की पहाड़ियो मे रुके हुए बादल फिर एक बार दिल्ली मे गरज उठे। भयंकर गर्मी से तपी हुई दिल्ली की सड़को पर पहली जून, १९६२ को वर्षा बरस उठी। पुरवाई हवा के ठडे झोके अलसाये हुए शरीर मे चेतना भरने लगे। जमना के किनारे चिरनिद्रा मे सोये बापू की समाधि पर हम खड़े थे। विनोबा ने हमे अपना आशीर्वाद देने से पहले वर्षा और बादलो की साक्षी मे जो सीख दी थी, उसकी याद दिलाने के लिए ही मानो बापू की समाधि पर भी वर्षा और बादल दोनो उपस्थित थे। हमे लगा, जैसे बापू चुपचाप हमे कह रहे हो कि "जनता बादलो की तरह उदार है और वर्षा की तरह सुखद-शीतल !" विनोबा-बापू ! बापू-विनोबा ! दोनो ने मिलकर हमारे मन-मस्तिष्क को साहस से भर दिया और हमने निर्णय किया—"हमारी यात्रा जनाधार का एक प्रयोग बने।

पैसे का आधार हम छोड़ते है। पूरी यात्रा मे कहीं, कभी भी हम पैसा स्वीकार नही करेगे।"

वह शुक्रवार का दिन था। इसी दिन सायंकाल बापू ने सत्य और शान्ति की शोध मे जीवन-बलिदान किया था। पहली जून '६२ को भी शुक्रवार था। सायकाल प्रार्थना के लिए राजघाट पर हम सब एकत्र हुए। प्रार्थना के बाद हमारी काचन-मुक्त पदयात्रा प्रारम्भ हो गयी। हम अपने पथ पर चल पडे।

हमारी यात्रा मे पैसे ग्रहण करने का आग्रह जगह-जगह होता रहा। पाकिस्तान का हमारा पहला पड़ाव था लाहौर मे। वहॉ कोई भी व्यक्ति हमारे लिए परिचित नही था। वहॉ भी हमे एक युवक मेजबान मिले। उन्होने हमारी सारी व्यवस्था की और चलते समय जबर्दस्ती हमारी जेब मे पाकिस्तानी सिक्के रख दिये। ये थे श्री गुलाम यसीन, जिन्हे किसी तरह समझा-बुझाकर हमने रुपये वापस किये। पाकिस्तान के बाद अफगानिस्तान पहुॅचे। जलालाबाद मे दैनिक 'निग्रहार' के सम्पादक श्री ग्रइमान ने कहा: "शान्ति-यात्रा के लिए हमारी कुछ तो मदद स्वीकार कीजिये ही", और अफगानी सिक्के पेश कर दिये। काबुल मे भाई अमृतलाल की दूकान पर हम बैठे थे। वे हमारी यात्रा की योजना से इतने प्रसन्न हुए कि भावुक बनकर उन्होने दूकान के 'कैश बॉक्स' मे से मुट्ठीभर अफगानी मुद्रा बिना देखे, बिना गिने निकालकर हमारे सामने रख दी: "मुझे सेवा का मौका दे।" उनकी दूकान से एक-एक फाउटेनपेन लेकर हमने उनसे क्षमा मॉगी। "पैसा नही, आपका स्नेह ही हमारी शक्ति है"—कहकर हमने उन्हे समझाया। काबुल के हमारे मेजबान श्री रामलाल आनन्द और भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव श्री मुरगेशन का यह तर्क था कि "पैदल चलने का एक आग्रह ही पर्याप्त है। पैसा रखने मे आपत्ति ही क्या है? साधारण तौर पर खर्च मत कीजिये, पर कभी वक्त-बे-वक्त के लिए कुछ मुद्रा पास मे रख लीजिये।"

हम ईरान मे पहुँचे तो गोवदे काबूस के एक बड़े जमीदार कैप्टेन हुनरवर ने और तेहरान के व्यापारी श्री शोभानी ने कहा : "हम लोग ऐसे ही सैकड़ो-हजारो खर्च करने रहते है। यदि आपकी यात्रा मे हम कुछ मदद कर सकेगे, तो हमारा चित्त बहुत प्रसन्न होगा।" पर हमने कहा : "हमे रातभर के आतिथ्य से और आपकी सहानुभूति से जो मदद मिलेगी, उसकी तुलना कितनी भी बडी धनराशि से नही की जा सकती।" वाराणसी से श्री सिद्धराजजी ने तेहरान स्थित भारतीय राजदूत को लिखा कि "उन्हे पैसे की जरूरत हो तो आप मुहय्या करे, हम यहाँ से उसका प्रबन्ध करेगे।" तेहरान पहुँचते ही हमारे राजदूत ने हमारी पैसे की आवश्यकता के बारे मे पूछा। पर, हमने बताया कि "दिल्ली से तेहरान तक बिना पैसे के हम पहुँच गये। हमे इतना अच्छा लगा कि पैसे की जरूरत भूल ही गये है। यदि किसी वस्तु की हमे आवश्यकता होगी, तो हम आपको बतायेगे। पर पैसा हमे नही चाहिए।"

ईरान के बाद हम सोवियत सघ मे पहुँचे, तो स्टालिन की जन्मभूमि गोरी मे रात को बारह बजे एक टैक्सी ड्राइवर ने हमारा दरवाजा खट-खटाया। उसने कहा : "मैने अखबारो मे आपके बारे मे पढ़ा है : आज दिन मे मैने आपको सडक पर देखा। आप कहाँ ठहरे है, इसका पता लगाते-लगाते अब यहाँ पहुँचा हूँ। ये २० रूबल (करीब १०० रुपये) आपको भेट करना चाहता हूँ।" अपनी भेट वापस ले जाने के लिए उन्हे बड़ी कठिनाई से हम राजी कर पाये। सोवियत शान्ति-परिषद् के प्रतिनिधि एलेक्जेण्डर इवानोविच पलादीन ने सुखुमी नगर मे आकर कहा : "हमे आश्चर्य होता है कि आप कैसे बिना पैसे के दिल्ली से यहाँ तक पहुँच गये ? ये लीजिये ४० रूबल (करीब २०० रुपये)। कहीं भी जरूरत पडने पर इस्तेमाल कीजिये। सकोच की बात नहीं। आप हमारे अतिथि है और अतिथि को कष्ट होने से हमे बहुत कष्ट होता है।" उन्हे किसी तरह समझाया कि "कष्ट पैसे रखने से होता है, न रखने से नही।" ऐसे कितने ही प्रसग यूरोप व अमेरिका मे भी आये, जब हमारे अनजान

मित्रों ने जाने-पहचाने मित्रो की भॉति ही हमे प्यार दिया, अपनत्व दिया और हर प्रकार की मदद करने के लिए उत्सुकता दिखायी।

मुसीबतें

बिना पैसे की यात्रा मे कभी-कभी कठिनाइयो का आना भी स्वाभाविक ही है। एक बार जब महीनेभर से भी अधिक समय तक हम भारत के लिए एक भी चिट्ठी नही लिख सके, तो तेहरान के दूतावास मे तार और चिट्ठियो के ढेर लग गये—हम कहॉ खो गये, इसका पता लगाने के लिए। कही ईरान के भयंकर भूकम्प की चपेट मे तो नही आ गये, इस सन्देह ने मित्रो और परिवारवालो को चिन्ता मे डाल दिया। तीन महीने तक एक बार हजामत न बनवा पाये, तो तेहरान के एक मित्र ने कहा : "क्या अणु-अस्त्रो पर प्रतिबन्ध न लगने तक बाल कटवाने की कसम खा ली है?" एक बार दो गॉवो मे जगह न मिलने पर सामने के होटल मे इसीलिए नही ठहरे कि जेब खाली थी।

इसी तरह लगातार तीस घटे तक भोजन न मिलने पर भी इसीलिए चलते ही रहे कि होटल मे जाकर खाने के बाद बिल कहॉ से चुकाया जायगा? गरीब किसान-परिवारो मे बिना दूध-चीनी की चाय और सूखी रोटी खाकर थके हुए शरीर को निद्रादेवी की शरण मे इसीलिए सौप देते थे कि अच्छे और पौष्टिक भोजन के लिए पैसे की शरण मे जाना हमे स्वीकार नहीं था। परन्तु ऐसे कठिन अवसरो मे भी मन को एक सन्तोष मिलता था, तृप्ति मिलती थी और इसीलिए यात्रा के प्रति कभी अनुत्साह पैदा नही हुआ। सच तो यह है कि ऐसे रूखे प्रसग आनन्द-प्रद प्रसंगो की तुलना मे नगण्य है।

सबसे दिलचस्प बात यह है कि हम अपनी आवश्यकताएँ कैसे पूरी करते थे? जैसे, कपडे की आवश्यकता को ले। काबुल मे हमे भारत से श्री हरिरामजी चोपडा और श्री सोमभाई ने अफगानिस्तान की सर्दी सहने

लायक कपड़े भेज दिये। सिर पर टोपी और पैरो मे जूतो की व्यवस्था काबुल मे हमारे मेजबान श्री रामलाल आनन्द ने की और इस तरह तेहरान तक हमें कोई दिक्कत नही हुई। बेशक काबुल के जूते तेहरान तक नही पहुँच सके। वेहशहर मे श्री अब्बास खियानी ने हमारे टूटे जूते देखकर न जाने मन ही मन क्या सोचा। वे उठे, हमसे कुछ कहे बिना चल दिये। थोडी देर मे हमने देखा कि वे दो जोडी जूते लिये चले आ रहे है। हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। तेहरान के बाद हमे बर्फ और रूसी सर्दी के मुँह मे जाना था। तेहरान के भारतीय व्यापारी श्री मक्खनसिहजी ने लगभग पाँच सौ रुपया खर्च करके 'स्लीपिग बैग', स्वेटर, जूते और कोट का प्रबन्ध किया। वे कहने लगे : "हम खुद आपके साथ चल नही सकते, इसी तरह कुछ मदद करके हम आपके 'मिशन' मे साथ दे सकते है।" तेहरानवाले जूते जुल्फा तक काफी घिस गये तो जुल्फा नगरपालिका के अध्यक्ष ने जूतो की मरम्मत करवायी। सोवियत सघ मे पहुँचे। अरमीनियन शान्ति-परिषद् की मन्त्रिणी ने हमारे लिए ऐसी टोपियाँ भेट की, जिन्हे पहनने पर कैसी भी सर्दी का असर नही हो सकता। आँख, नाक और मुँह को छोडकर गले तक पूरा ढाँक सके, ऐसी ये टोपियाँ थी। मास्को मे हम पहुँचे तो लखनऊ से श्री कपिलभाई द्वारा भेजा हुआ और बॅगलोर से डॉक्टर नटराजन द्वारा भेजा हुआ गरम कपडो का पार्सल हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। सोवियत शान्ति-परिषद् ने ओवरकोट भेट किया। वारसा मे राधाकृष्णजी बजाज द्वारा वर्धा से भेजे हुए जूते और वाशिगटन मे सुशीलकुमारजी द्वारा राजपुरा से भेजे हुए कपड़े भी इसी तरह सहायक बने।

ब्रिटेन से अमेरिका तक हमे ब्रिटेन के शान्तिवादी लोगो ने जहाज से भेजा, अमेरिका से जापान तक अमेरिका के पैसिफिस्ट लोगो ने हवाई जहाज से भेजा और जापान से भारत तक जापान के शान्तिवादियो ने जहाज से भेजा। इस तरह विकेन्द्रित ढग से सारी व्यवस्था सहज होती गयी।

डाक भेजने की परेशानी अवश्य कभी-कभी सताती थी। अक्सर तो हम अपने मेजबान को ही इसके लिए पूछते थे। यदि वैसी अनुकूलता न हो तो चिट्ठी लिखकर जेब मे रख लेते और सड़क पर चलते हुए, प्राय: कोई न कोई कारवाला हमे 'लिफ्ट' देने के लिए या हमारे बारे मे कुछ अखबारो मे पढा होने के कारण कुशल-क्षेम पूछने के लिए अपनी कार रोकता, तो उसे हम टिकट लगाकर चिट्ठी भेज देने का काम सौंप देते थे। टाब्रीज मे तो हम बडे डाकघर के 'डाइरेक्टर' के पास गये और १०-१२ 'एरोग्राम' ले लिये। इस तरह हम कोई-न-कोई तरीका निकाल ही लेते थे। किसी भी शहर मे जब किसीके घर ठहरते, तो उनसे साबुन, डाक-टिकट आदि की छोटी-मोटी जरूरते बहुत आसानी से पूरी कर लेते थे। रूस मे एक जगह दाढ़ी बनाने के लिए हमने अपने मेजबान से ब्लेड पूछा। उनके पास ब्लेड नहीं, उस्तरा था, जिससे दाढ़ी बनाने की हमे आदत नही। हमारे मेजबान ने खुद अपने हाथ से ही हमारी दाढी बना दी। कैसा दिलचस्प प्रसंग था यह रूस के एक छोटे-से गॉव मे।

हमारे पास पैसा नहीं है, यह जानकर तो लोग हमारी और भी ज्यादा चिन्ता करते थे। हमे अकसर यह अनुभव ही नही होता था कि हमारे पास पैसा नहीं है।

साथ का सामान

●

हमारी यात्रा की पूर्वतैयारी का ज्यादा सम्बन्ध बाहरी प्रश्नो से नहीं था। सबसे बड़ी बात एक ही थी कि इस यात्रा के लिए हमारे मन मे एक तडप थी और एक आकर्षण था। वह तड़प इतनी तीव्र थी कि उसके सामने सभी प्रश्न या तो गौण होते चले गये या अपने-आप सुलझते चले गये। हमे चारो ओर से इतनी शक्ति और स्फूर्ति मिली कि यात्रा का श्रीगणेश कब हो, इसीके इन्तजार मे हम बेचैन रहने लगे। कई मित्रों ने इस लम्बी पदयात्रा मे आनेवाले कष्टो, मुसीबतो और तकलीफो की

ओर हमारा ध्यान खींचा। पर हमने यही सोचा कि तकलीफें न आयें तो यात्रा का मजा ही क्या ? इसलिए हर मुसीबत का, हर कष्ट का हम सामना करेंगे—यही हमारा निश्चय था। कुछ बुजुर्गों को हमारे 'मिशन' की सफलता मे सन्देह भी था। पर हमने कहा कि कोई भी काम करने से पहले ही सफलता-असफलता के लिए जो चिन्ता करता रहता है, वह कभी कोई काम कर ही नही सकता। हमारा साध्य अच्छा है और उसके लिए हमने जो साधन अपनाया है, वह भी अच्छा है, तो फिर उस साधन मे जुट जाना ही हमारा काम है।

यात्रा मे हमे जो भी आवश्यक सामान चाहिए था, वह हमने अपने साथ रखा। हम अपनी पीठ पर एक थैले मे करीब १० किलो वजन रखते थे। इसमे वे सभी चीजे आ जाती थीं, जिनकी हमे नित्य जरूरत पड़ती है। किसी भी गॉव मे दो समय भोजन के सिवा हमे कुछ भी मॉगना न पड़े, इस तरह से हमने सामान का प्रबन्ध किया। हमारे पास निम्नलिखित सामान रहता था :

दो चादरे	डॉट पेन	चाकू
तीन पाजामे	पुस्तके दो	रस्सी
तीन कुरते	लेटरपैड	बरनोल
रूमाल	पीठ का थैला	आइडेक्स
दो बनियान	दो बगल-थैले	टिंचराइडिन
दो अंडरवियर	पानी की कुप्पी	सैरिडोन
तौलिया	लोटा और मग	ग्लूकोज
रेनकोट-टोपी	आईना, कंघा, तेल	पेचिश की दवा
बूट-जूता	दंत मजन	रेडीमेड चाय
चप्पल-जूता	साबुन	घडी
टार्च	रेजर, ब्लेड और ब्रश	टीन और कपडे का साइन बोर्ड
कैमरा	दो चम्मच	
थर्मस	पिन कुशन	वर्ल्ड एटलस और नक्शे

दो फाइले	पेन इंक	शब्दकोश
डायरी	कैंची	'रूसी भाषा शिक्षक'
फाउटेन पेन	नेल कटर	पुस्तक

पासपोर्ट।

●

पासपोर्ट के लिए हमने बहुत पहले ही मद्रास-क्षेत्र से आवेदन किया था। किन्तु मद्रास-क्षेत्र के पासपोर्ट अधिकारी ने 'राजनीतिक मामला' कहकर हमारा आवेदन-पत्र विदेश-मन्त्रालय, दिल्ली को भेज दिया। सबसे पहला प्रश्न था, २० हजार रुपये की गारंटी का। इसे हम कैसे हल करते? हमारी जिम्मेदारी कौन उठाता? सुरक्षा की गारंटी कौन देता? आखिर कलकत्ता के मेरे एक एडवोकेट मित्र मागीलाल जैन ने यह जिम्मेदारी ली। इस तरह सभी औपचारिक कार्रवाइयॉ पूरी हो जाने के बावजूद हमे समय पर पासपोर्ट नही मिल सका। मई महीने की चिलचिलाती धूप और लू मे हमने विदेश-मन्त्रालय के कितने ही चक्कर लगाये। परन्तु लाल-फीताशाही मे फॅसे हुए हमारे कागजात मुक्ति नही पा सके। यद्यपि विश्व-नागरिक होने के नाते हमे पासपोर्ट जैसी चीज पर कोई विश्वास नही है, फिर भी हम सरकारी तत्र को सन्तुष्ट करने के लिए पासपोर्ट मॉग रहे थे। जब हम अपने प्रयत्न मे असफल रहे और गाधी-समाधि, नयी दिल्ली से अपनी पदयात्रा पर चलने लगे, तब हमारे हाथ खाली थे। दूसरे ही दिन के एक दैनिक अखबार ने यह समाचार छापा कि "दो भारतीय शान्ति-यात्री दिल्ली से अमेरिका तक की पदयात्रा पर निकले है, किन्तु उनकी जेब मे न तो पैसा है और न हाथ मे पासपोर्ट।"

इस खबर ने कुछ खलबली मचायी। लोकसभा के एक सदस्य को यह प्रश्न पूछने की प्रेरणा मिली कि जब हमारे मन्त्रिगण तरह-तरह के लोगो को, व्यापारियो को, अपने सम्बन्धियो को नये-नये कारण ढूढ़कर विदेश-यात्रा पर भेज देते है, तो इन शान्ति-यात्रियो को पासपोर्ट देने मे

क्या बाधा हो सकती है ? वास्तव मे नीति सम्बन्धी तो कोई बाधा थी भी नही। दफ्तरो मे चलनेवाली शिथिलता और भ्रष्टाचार ही इसके पीछे कारण हो सकता था। पर हमने यही तय किया कि जो भी हो, हम वापस नही आयेगे और अपने कार्यक्रम के अनुसार आगे बढ़ते जायेगे। अपने कार्यक्रम मे फेर-बदल न करने की हमारी इच्छा के कारण ही हमने राष्ट्रपति राधाकृष्णन् से मिलने का विचार भी रद्द कर दिया। कारण, राष्ट्रपति ने हमे ३ जून को मिलने का समय दिया था और हम पहली जून को ही दिल्ली से चल पडने का निश्चय कर चुके थे। पासपोर्ट के लिए दिल्ली मे पहली जून के बाद रुकना हमने उचित नही समझा और अपनी यात्रा शुरू कर दी। जब हम पाकिस्तान की सरहद के पास पहुँच रहे थे, तब दिल्ली से एक भाई आये और बोले : "शान्ति-यात्रियो, यह लीजिये आपका पासपोर्ट !"

पाकिस्तान की सरहद तक हमने ३२ दिन यात्रा की।

पजाब का हमारा कार्यक्रम अत्यन्त उत्साहवर्धक रहा। पानीपत, अम्बाला, राजपुरा, लुधियाना, आदमपुर, जालन्धर और अमृतसर का सम्पूर्ण कार्यक्रम इतना व्यस्त और स्फूर्तिदायक रहा कि अब भी वह सारी यात्रा चलचित्र की भाँति नजरो के सामने है। सभी जगह बडी-बड़ी आम-सभाएँ, विद्यार्थियो और युवको की सभाएँ, बुद्धिजीवियो की सभाएँ हुई। दिल्ली से रवाना होते समय हमे इसका अन्दाज भी नही था कि पंजाब मे हमारा कार्यक्रम इतना सफल रहेगा।

हमने देखा कि सब जगह आणविक हथियारो के खिलाफ जनता का हृदय तैयार है। पर उसे यह समझ मे नही आ रहा है कि किन तरीको से इसका विरोध किया जाय।
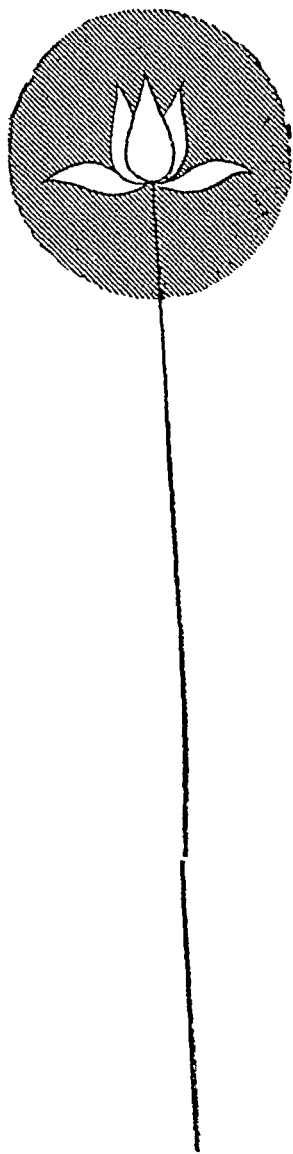
पड़ोसी देश पाकिस्तान में
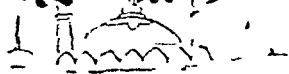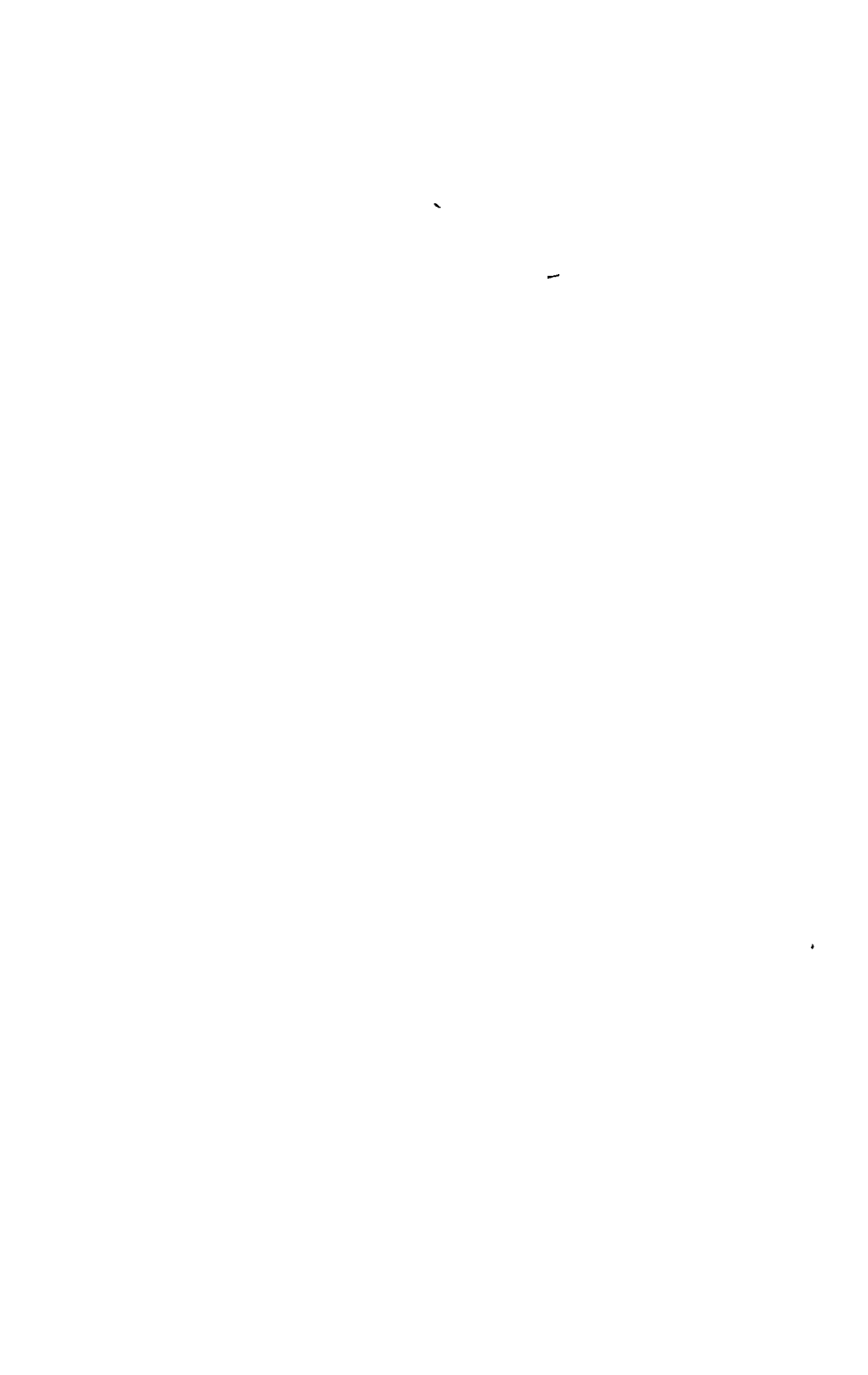
३ जुलाई को हमने हिन्द-सीमा पार की। अमृतसर से एक विशेष बस का प्रबन्ध करके करीब ३५ भाई-बहन हमे सीमा से विदा करने आये थे। पाक-सीमा मे दाखिल होने के बाद हमारा क्या प्रबन्ध होगा, यह कोई नही जानता था। हमारा परिचित या जान-पहचान का भी कोई आदमी पाक-सीमा मे या पाकिस्तान मे नही था। इसलिए सब लोग बहुत चिन्ता व्यक्त कर रहे थे।

अमृतसर से आनेवालो मे पन्द्रह-बीस बहने थी। किसी जमाने मे माताऍ, बहने और पत्नियॉ अपने पुत्रो, भाइयो तथा पतियो को तिलक लगाकर युद्ध-भूमि मे प्रस्थान करने के लिए जैसे विदा किया करती थी, करीब-करीब वैसा ही दृश्य हमारे सामने उपस्थित था। कुछ बहने साथ मे भोजन भी ले आयी थी। कहने लगी : "पता नही, पाकिस्तान मे आपको भोजन मिलेगा या नही। खाने का डिब्बा साथ ले ले।" हमे यह प्रस्ताव कैसे स्वीकार होता! हमने कहा कि "हम अविश्वास की यह गठरी अपने साथ लेकर नही जायेगे। हमारे मन मे पाकिस्तानी भाइयो के प्रति पूरा विश्वास है।" बूढी माताऍ और युवा बहने मंगल

विचारो मे हमे इस बात की झलक मिलती है कि वे लोग भारत-पाक सम्बन्धो को सुधारने के लिए कितने उत्सुक हैं।

हमने अपनी पदयात्रा के दौरान मे यह महसूस किया कि अस्सी प्रतिशत समस्या भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक है। पाकिस्तान के आम लोग तो इन बातो को जानते ही नही कि वास्तविकता क्या है। उनके मन मे एक भ्रम और गलतफहमी बैठ गयी है कि भारत के मुसलमान बहुत खतरे मे हैं, उन्हे कोई हक हासिल नही है और उनकी जान सुरक्षित नही है। लोग हमसे पूछते थे कि हिन्दुस्तान मे अमन है न? कोई पूछता था कि हिन्दुस्तान मे मुसलमानो की क्या स्थिति है? इन सवालो के पीछे उनकी यह भावना प्रतिबिंबित होती थी, मानो हिन्दुस्तान मे मुसलमान बडी मुसीबत से गुजर कर रहे है। कही-कही पर यदा-कदा कुछ गड़बड होती है, तो उसे बहुत बढ़ा-चढाकर अखबारो मे छापा जाता है। इस तरह भावनाओ ही भावनाओ मे वैमनस्य तथा द्वेष बढ़ता जाता है। दोनों ओर से अगर पूरा प्रयत्न किया जाय, तो भावनात्मक एकता और मनोवैज्ञानिक सान्निध्य कायम करने मे जरूर सफलता मिल सकती है।

सभी जगह लोग हमसे पूछते थे कि "आपकी जाति क्या है? आपका मजहब क्या है? आप हिन्दू है या मुसलमान?" हमने बडी दृढ़ता के साथ सर्वत्र इन सवालों का एक ही जवाब दिया : "हमारी जाति इन्सान है, हमारा मजहब इन्सानियत है, इन्सानियत से बढ़कर इस दुनिया मे कोई मजहब हो नही सकता। न हम हिन्दू हैं, न मुसलमान। सारा जहाँ हमारा है।" हमारे इस उत्तर से बहुत बहस होती थी, लोग चकित भी होते थे और परेशान भी। पर कुल मिलाकर हमारे इस रुख का अच्छा असर पडता था।

"कश्मीर को आजाद कराने के लिए हमे अभी एक और जग लड़ना है", ऐसे भावुकतापूर्ण जज्बात कभी-कभी पाकिस्तान की यात्रा मे हमे सुनने को मिले। कब्ल इसके कि ऐसे जज्बात फूटे, हम अहिंसावादियो

और शान्तिवादियो को इस प्रश्न पर गम्भीरता से सोचना चाहिए तथा अमन के लिए कोई खतरा पैदा न हो, इसकी पुरजोर कोशिश करनी चाहिए। मनुष्यो की भावनाएँ अहिसा के तथा शान्ति के पक्ष मे हो, तो फिर कोई भी बाहरी शक्ति उसे हिसा के लिए प्रेरित नहीं कर सकती। सबसे पहला और सबसे बडा काम भावनाओ का निर्माण करना ही है। "युद्ध मनुष्य के दिमाग से प्रारम्भ होता है, इसलिए शान्ति की रक्षा के विचारो का निर्माण भी मनुष्य के दिमाग मे ही करना चाहिए।"

खैबर दर्रा

●

खैबर दर्रा! हिन्दुस्तान पर आक्रमण करनेवालो के आने का ऐतिहासिक स्थल-मार्ग! जिस मार्ग के बारे मे हमने बहुत कुछ सुना था और जिस मार्ग की भयंकरता के बारे मे बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित है, उसे आँखो से देखने का अवसर मिला, तो मन मे एक प्रकार की विचित्र उत्सुकता का संचार हो उठा। आँखो से देखना और वह भी पैदल चलकर।

१ जून, १९६२ के सायंकाल से ही, जब हम पद-यात्रा पर रवाना हुए, हम अपनी पदयात्रा के मार्ग के बारे मे काफी जानकारी प्राप्त कर रहे थे। इस पदयात्रा का सबसे कठिन, भयावना और दुरूह पड़ाव था—खैबर दर्रे का पडाव। पहले दिन से ही, जिस-जिस व्यक्ति ने भी खैबर दर्रे के बारे मे और वहाँ के निवासी पठानो के बारे मे जो कुछ बताया, वह दिल मे भय पैदा करनेवाला था।

आखिर ६२२ मील और एक माह सत्ताईस दिन चल चुकने के बाद २८ जुलाई '६२ का दिन आया। हम पेशावर से १० मील आगे जमरूद मे थे। पाकिस्तान की सरहद का यह आखिरी पड़ाव था। इसके बाद खैबर दर्रे का २५ मील का 'आजाद कबायली' इलाका प्रारम्भ हो जाता है। इसे 'गैर इलाका' 'ट्राइबल एरिया' कहते है। इस इलाके मे

पाकिस्तान सरकार का कोई कानून लागू नही होता। पाल-पुलिस भी यहॉ नही जा सकती। यहॉ कोर्ट, कचहरी आदि भी नही है। ब्रिटिश-शासन-काल मे भी यह क्षेत्र इसी तरह आजाद था। जब हम इस तरफ चलने के लिए तैयार हुए, तब यहाँ के लोगो ने हमे हर सम्भव तरीके से समझाने की और पैदल जाने से रोकने की कोशिश की। स्थानीय अधिकारियों ने कहा : "आप दिल्ली से यहॉ तक पैदल आये है, यह और बात है, पर इस क्षेत्र मे पैदल जाना खतरनाक है और आपको कम-से-कम इस २५ मील की दूरी तय करने के लिए अपना पैदल चलने का आग्रह छोड देना चाहिए। सबसे बडी बात यह है कि पठान लोग अनपढ़ और जंगली-जैसे है। हरएक के पास बन्दूक रहती है। जान का खतरा है। उन पर हमारा कानून भी नही चलता।" इत्यादि।

पर हमने अधिकारियो से निवेदन किया : "हम खास तौर से ऐसे क्षेत्रो का अध्ययन करना चाहते है। आप बिलकुल न डरे। हमारी जान अगर जायगी तो उसका उत्तरदायित्व हमारा अपना है।"

अधिकारियो को हमने किसी तरह मनाया। उन्होने हमे खैबर दर्रे के रास्ते से पैदल जाने की इजाजत दे दी। हम शान्ति-यात्रियो की रक्षा के लिए चार बन्दूकधारी सैनिक भेजे गये।

साढ़े तीन हजार फुट ऊँची खैबर-चोटियॉ हमे आमन्त्रण दे रही थी। मानो कहती हो कि डरने की कोई बात नही है। यहॉ का रास्ता टेढा-मेढ़ा जरूर है, पर सडक बहुत अच्छी है। इस सड़क पर अभी पाक-सरकार का अधिकार है। सड़क के दोनो तरफ १०-१० गज का क्षेत्र भी सरकार का है। सवेरे ५ बजे से शाम को ७ बजे तक पूरे १४ घटे हमने इस २५ मील के खैबर-क्षेत्र मे व्यतीत किये। शाम को जब हम अफगानिस्तान की सरहद मे 'तोरखाम' आये, तब हमे लगा कि वह सारा डर, जो प्रातःकाल जमरूद के अधिकारी हममे पैदा कर रहे थे, निरा काल्पनिक था। बीच-बीच मे पीने के पानी का प्रबन्ध है। जगह-

जगह पर खैबर खासादार फोर्स की चौकियाँ बनी है। एक नदी, जो काबुल से आती है, सड़क के साथ-साथ चलती है।

कुछ पठानो से बाते हुई। उन्होने कहा : "हमारे खिलाफ हमारे बारे में जो कुछ कहा जाता है, उससे हमारी सारी पठान जाति उपेक्षित हो गयी है और हमारे मन मे प्रतिक्रियास्वरूप बाहर के लोगो से नफरत पैदा हो गयी है।"

यह सच है कि पठान वीर होता है। वह अपने कन्धे पर बंदूक रखना न केवल अपनी शान समझता है, बल्कि यह उसकी सभ्यता मे शामिल हो गया है। पठानों का इतिहास बहादुरी का इतिहास है। यदि किसीके साथ पठान का झगड़ा हो जाय, तो फिर वह उसके प्राण लेने मे तनिक भी नही हिचकिचाता। वह इतना स्वाभिमानी होता है कि किसी-का शासन कभी सहन नही कर सकता। यह स्वाभिमान ही आज स्वतन्त्र पख्तूनिस्तान के आन्दोलन के रूप मे प्रकट हो रहा है। स्वतन्त्रता-आन्दोलन के पुराने नेता सरहदी गाधी खान अब्दुल गफ्फारखान स्वतन्त्र पख्तूनिस्तान-आन्दोलन के नेता है और इसीलिए वे अभी तक जेल मे बन्द रहे। 'खुदाई खिदमतगार' नाम की एक सस्था खान साहब ने चलायी थी। इस संस्था के सदस्य पूरी तरह अहिसा मे विश्वास करते है। उनके कपड़े लाल होते है, इसलिए इस संस्था को 'लाल कुरती दल' के नाम से भी पुकारा जाता है। यदि ये पठान अपनी दिलेरी और वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं, तो मेहमानो का स्वागत करने मे, आतिथ्य करने मे और उनकी सेवा करने मे भी किसी तरह कम नही है। पठान के घर अतिथि होने का अर्थ है—पूर्ण सुरक्षा। यदि आप किसी पठान के मेहमान है और उस बीच किसीसे आपका झगड़ा हो गया अथवा किसीने आपकी कोई चीज छीन ली, तो आपका मेजबान पठान अपने प्राणो की बाजी लगाकर भी वह चीज आपको वापस लाकर देगा तथा आपकी हिफाजत करेगा।

करीब १ करोड पख्तून आज बड़ी उपेक्षित स्थिति मे है। शिक्षा का प्रसार तो नही के बराबर है। पहाडी क्षेत्र होने से जमीन बहुत कम है। उनका अपना कोई राज्य नही। कोई सामूहिक प्रयत्न भी नही। उनके यहॉ न कोई विशेष उद्योग-धन्धे हैं, न कोई विशेष कला-कारीगरी। पहले बहुत-से पठान उत्तम कसीदाकार होते थे। उनकी कसीदेवाली टोपियॉ चार सौ, पॉच सौ रुपये तक मे बिकती थी। जूतो पर भी वे बहुत सुन्दर नक्काशी करते थे। पर अब उस तरह का फैशन न रहने से उनका धन्धा चौपट हो गया है। कुल मिलाकर साधारण पठान बहुत गरीब हालत मे है।

भले ही झगडे-फसाद के लिए और मरने-मारने के लिए पठान बदनाम हो, पर हमारी तथाकथित सभ्य जाति की अपेक्षा उनमे झगडे कम होते है और सभ्य तरीके के नाम पर जिस तरह न्यायालयो में हम वकीलो के पीछे पानी की तरह पैसे बहाकर आये दिन सैकड़ो झगड़ो का गलत-सही फैसला कराते है, वैसा यहॉ नही होता। यदि गॉव मे पचायत को यह ज्ञात हो गया कि अमुक व्यक्ति ने गॉव के अमुक व्यक्ति को बिना अपराध के सताया है, तो पंचायत क्षणभर मे फैसला कर देगी, उस अपराधी को दण्डित भी कर देगी और वह अपराधी बिना किसी 'ननु न-च' के पच-फैसला मजूर भी कर लेगा।

खैबर-क्षेत्र का प्रसिद्ध नगर है—लडीकोतल। यह जमरूद से २० मील आगे है और अफगान सीमा तोरखाम से ५ मील पहले है। पठान लोग जो कुछ खरीद-फरोख्त करते है, उसका सबसे बडा केन्द्र यही है। यहॉ पर हमने पठानो को बड़े-बडे जत्था के रूप मे देखा। आध सेर आटे की एक मोटी रोटी और बिना दूध की हरी चाय से अपना पेट भरकर मस्ती से जीनेवाले इन पठानो की अपनी दुनिया ही अलग है। वे जब किसीसे प्रेम करते है, तो वह भी उत्कृष्ट और अनुपम होता है। वे जब किसीसे गलबहियॉ डालकर मिलते है, तो वह दृश्य भी दर्शनीय होता है। वे जब किसीकी सेवा मे लीन होते है, तो अपने-आपको भूल

जाते है। ये शासनमुक्त लोग खूब घेरदार सलवार और ढीला, लम्बा, झोलदार कुर्ता पहनते है। लम्बी दाढी, सिर पर टोपी और उसके ऊपर पगडी ! बडा आकर्षक व्यक्तित्व होता है उनका। लम्बा-चौडा डील-डौल, गोरा रंग, चौड़ा ललाट और ऊँचा स्वर। सब-कुछ लुभावना।

हमने अपनी इस यात्रा मे पठानो को निकट से देखा। खैबर दर्रे से गुजरने मे किसी तरह का किंचित् भी भय नहीं। हॉ, तोरखाम-सीमा पर पाकिस्तानी अधिकारियो के व्यवहार का रूखापन खटकनेवाला था। पर ये अधिकारी पठान नहीं, 'बाहरी' लोग थे।

पाकिस्तान की यात्रा मे पुलिस तथा सी० आइ० डी० के अधिकारी हमारे साथ रहते थे। हमारी सुरक्षा के लिए। अकसर ये पुलिसवाले बडे हमदर्द और सहयोगी साबित होते थे। पर तोरखाम-सीमा पर काम करनेवाले पाकिस्तान-सरकार के प्रतिनिधियो ने तो रातभर पनाह देने से भी इन्कार कर दिया। हमने पीछे मुड़कर देखा। खैबर की चोटियॉ पठानों का हँसता हुआ चेहरा। पाकिस्तान मे बिताये हुए दिनो की स्मृतियॉ ! हम आगे बढ गये। सीमा के पार।
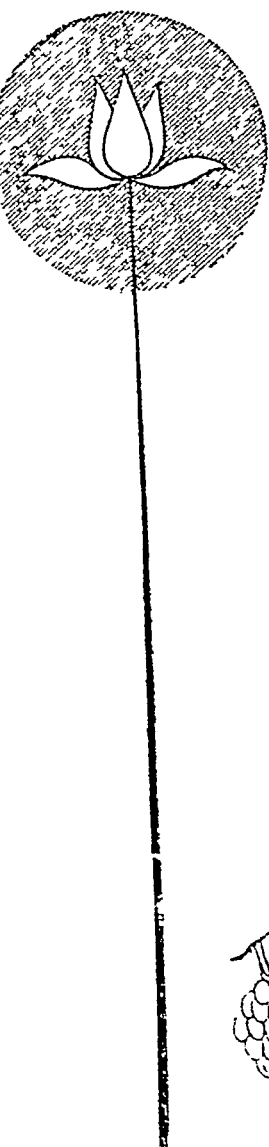
अंगूरों के देश अफ़गानिस्तान में

अब चलिये अफगानिस्तान की ओर। ऊँची-ऊँची चोटियों पर रहनेवाले लोगों के देश की ओर। यह सड़क जो हमें दिल्ली में मिली, लाहौर, पेशावर और खैबर में से मार्ग दिखाती हुई काबुल तक जा रही है।

भारत और पाकिस्तान में ५८ दिन की पदयात्रा के अनुभव के बाद जब हम अफगानिस्तान में प्रवेश करने के दिन खैबर दर्रे की घाटियों से गुजर रहे थे, तो मन में कई तरह के विचार उठ रहे थे। भारत-पाकिस्तान की परिस्थिति से अफगानिस्तान की परिस्थिति सर्वथा भिन्न है, यह खैबर दर्रे के वातावरण से हमें ज्ञात हो रहा था। खैबर दर्रे से ही भाषा, वेश-भूषा, भोजन इत्यादि की भिन्नता प्रारम्भ हो गयी। मन में लग रहा था कि हमारी वास्तविक यात्रा अफगानिस्तान से ही प्रारम्भ हो रही है।

जब हमने अफगान-सीमा को अभिवादन किया तो सूरज डूब चुका था, हल्का-सा अन्धेरा छा रहा था और काबुल रेडियो फारसी गीतों की मधुर धुन बजा रहा था। पीठ पर सामान, गति में शिथिलता और चेहरे पर थकान लिये जब हम अफगान अधिकारी के पास पहुँचे, तो

उसने कहा : "इस समय ! अभी तो आगे जाने के लिए कोई वाहन भी उपलब्ध नहीं होगा !" अधिकारी हिन्दी मे बात कर रहा था। हमने बताया कि "हम वाहन का उपयोग नहीं करते। ५८ दिनो मे ६४७ मील की पैदल यात्रा करके हम दिल्ली से आ रहे है। आगे भी पैदल ही जाना है।" अधिकारी को आश्चर्य हुआ। उसने कहा : "अब तक आप पैदल आये, यह ठीक है। पर यहॉ से आगे का रास्ता बहुत खराब है। रेगिस्तान है। पानी का अभाव है। अतः अब बस से ही जाइये।" हमने कहा कि "हमे तो यह सारी कठिनाइयॉ आयेगी ही। अमेरिका तक न जाने कितने बीहड़ मार्ग तय करने है।" काफी देर तक उससे बातचीत होती रही। उसे जब हमारे शान्ति तथा निरस्त्रीकरण के 'मिशन' की और अर्थमुक्त पदयात्रा की पूरी कहानी मालूम हुई, तो अत्यन्त सहानुभूति के साथ उसने हमारे उद्देश्यो का समर्थन किया और हमे अपना अतिथि बनाया। इस पठान अधिकारी ने एक साधारण मानव का रूप धरकर हमारे लिए भोजन-स्नान आदि की व्यवस्था की।

२९ जुलाई '६२ को प्रातःकाल अफगानिस्तान की धरती पर हमने पहली बार सूर्य के दर्शन किये। शुष्क मरुभूमि के रास्ते हम आगे बढे। चार दिन की पदयात्रा के बाद ५० मील चलकर हम अफगानिस्तान के प्रथम शहर, जलालाबाद पहुॅचे। हमे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि शुष्क भूमि मे बसनेवाले इस क्षेत्र के निवासियो का हृदय अत्यन्त आर्द्र था।

जलालाबाद मे स्वतन्त्र पख्तूनिस्तान-आन्दोलन के नेता श्री स्याल साहब के हम अतिथि बने। उन्होने गाधीजी के बारे मे काफी सुन रखा था। बोले : "हम अपनी आजादी के लिए सघर्ष कर रहे है। हमारे नेता खान अब्दुलगफ्फार खान हमे शान्तिपूर्ण तरीको से अपनी गतिविधि चलाने की बात कहते है। स्याल साहब ने हमारे मिशन के बारे मे पूरी सहानुभूति बतायी। उनके कारण जलालाबाद मे हमारे समर्थन मे अच्छा वातावरण बन गया। यहॉ के दैनिक अखबार ने भी हमारी पदयात्रा का स्वागत किया।

अफगानिस्तान मे हमारे लिए सबसे बडी परेशानी भाषा की थी। भाषा का क्या महत्त्व है और उसके अभाव मे आदमी कितना असहाय हो जाता है, यह हमे कदम-कदम पर अनुभव हो रहा था। हमने संकेतो और इशारो का सहारा लिया। एक बार यह समझाने के लिए कि हम मास मे मुर्गी और मछली भी नही खाते, हमे चित्र बनाकर समझाना पडा। भाषा के माध्यम से भी बड़ा माध्यम आँखो का स्नेह तथा सौजन्य है और वह माध्यम सशक्त बनकर हमारे काम आया। हमने धीरे-धीरे फारसी का अध्ययन प्रारम्भ किया। बाद मे टूटी-फूटी फारसी मे बोलकर हम अपना काम चलाने लगे।

२ अगस्त को हम जलालाबाद से चलकर ६ दिन मे अफगानिस्तान की राजधानी काबुल आ गये। ९२ मील का यह रास्ता नदी के किनारे ऊँची पहाड़ियो की तराई मे से होकर क़रीब ६ हजार फुट की ऊँचाई पर बसे हुए मध्य एशिया के सुन्दर नगर काबुल को जाता है। काबुल की सुन्दरता का अनुमान न केवल उस सुन्दर मार्ग को देखकर, बल्कि अनेक मनोहारी जलस्रोतो को अपने मे समेटते हुए कलकल करती अविरल बहनेवाली उस जलधारा को देखकर भी लगाया जा सकता है, जो काबुल नदी के नाम से हमे तरोताजा कर रही थी।

कहॉ वह युग, जब भारत की राजधानी तक्षशिला थी और काबुल-कन्धार तक भारत की सीमाएँ फैली थीं, और कहॉ आज का युग! दोनो मे बहुत अन्तर है। लेकिन आज भी भारत-अफगान-मित्रता का सूत्र अत्यन्त दृढ़ है। वह इतिहास, जिसमे काबुल नदी की गरिमा का गान करते हुए ऋग्वेद के सूक्त लिखे गये, और काबुल के निकट बासियान की बौद्ध मूर्तियॉ बनी, इस बात का साक्षी है कि दोनो देशो की सास्कृतिक एकता चिरंजीवी रहेगी।

हमारे जैसे अकिंचन मुसाफिर जब चलते थे, तो कोई पता नहीं रहता था कि हम कहॉ ठहरेंगे? कहॉ भोजन करेंगे? भोजन मिलेगा भी या नहीं? पर हम जहॉ भी जाते, वहॉ लोग यह कहकर हमें अपनी

बर्फानी चोटियो के अतिरिक्त और है भी क्या ? न कोई शहर न यातायात के साधन, न अखबार, न बिजली। अशिक्षित जन-समुदाय, गरीब किसानो के छोटे-छोटे गॉव और साल मे ६ महीने चारों तरफ बर्फ ही बर्फ !

हम करीब २० दिन तो ८ हजार फुट से ऊपर ही रहे। कई बार साढ़े दस हजार फुट से अधिक ऊँचाई तक गये। एक शिखर से उतरना और दूसरे शिखर पर चढना ! कई बार तो बीस-पचीस मील तक कोई गॉव नही ! ऊँटो के लम्बे-लम्बे काफिले। हजारो भेड़ो के काफिले और इन सबके बीच सीधे, सरल, निश्छल ग्रामवासी। यह मार्ग आम तौर से चालू नही है। कोई यातायात भी नही है। 'कारवा-रूट' है। काबुल से हैरात जाने के लिए गजनी, कंधार होकर ही लोग आते-जाते है। पर वह रास्ता इस रास्ते से करीब दो सौ मील अधिक लम्बा है, अतः हमने यह सीधा रास्ता लिया।

इन ग्रामवासी निष्कपट लोगो के लिए यह बडी अद्भुत बात थी कि-बिना भाषा जाने ये दो परदेशी युवक इधर आखिर किस मतलब से आये हैं ! जब ऊँचे पर्वत-शिखरो पर चढते हुए हम लोग शिथिल-से दीख पडते, तो अपने ऊँट या घोड़े पर सवार ये ग्रामवासी हमे भी अपने वाहन पर बैठाने की कोशिश करते थे। "हम तो पैदल ही चलेगे।" ऐसा समझाने पर अक्सर वे लोग हमारी पीठ पर लदे सामान को अपने ऊँट या घोड़े पर रख लेते थे। इस एक महीने मे ऐसे लोग तो कम ही मिले, जो युद्ध, अणु-अस्त्र और शान्ति के प्रश्नो को ठीक तरह से समझ सके। बीच-बीच मे सरकारी हाकिमो के साथ हम लोग ठहरते थे। वे लोग हमारी यात्रा के उद्देश्यो को समझकर हमारे विचारो को सुनते थे।

हमारे इस मार्ग पर जो प्रमुख स्थान आये, उनमे पंजाव, लाल, कासी, ख्वाजा-ए-चेस्त और ओवेह के नाम उल्लेखनीय है। इन स्थानो पर सरकारी दफ्तर भी है। अंगूर, रोटी और विना दूध-चीनी की चाय (हरा कावा) के साथ भोजन से परितृप्त होते हुए जब हम दिल्ली मे

१३५० मील की दूरी तय करके अफगानिस्तान के एक बड़े नगर हैरात पहुँचे, तो मन को बडा सन्तोष एवं उत्साह मिला कि हमने अपनी मंजिल का एक लम्बा फासला पूरा कर लिया।

हैरात से और ७५ मील चलकर ईरान मे हमने जब कदम रखा, तब हमारे हृदय मे ऐसा अहसास होने लगा कि एक दिन इसी तरह हमारे कदम मास्को और वाशिंगटन की भूमि पर भी पड़ेगे और हम वहॉ की जनता को दूसरे देशों की जनता का यह सन्देश देगे कि "हम शान्ति चाहते है और युद्ध की सम्भावनाओ की समाप्ति चाहते है।"

अफगानिस्तान की पचपन दिन की यात्रा मे हमने देखा कि यह देश बहुत गरीब है, फिर भी यहॉ के लोगो ने सदा ही धन, सुख और वैभव-विलास से आजादी को अधिक पसन्द किया है। अफगानी पठान जितने सरल और प्रेमल हृदयवाले है, उतने ही बहादुर भी है। इसीलिए उन्होंने आजादी के साथ सौदा नही किया। गरीब रहे, पर गुलाम नही बने। केवल १७० लाख की आबादीवाला यह छोटा-सा देश पाकिस्तान के साथ अच्छे सम्बन्ध न होने के बावजूद रूसी या अमेरिकी फौजी संगठन मे शामिल नही हुआ। किसी दूसरे मुल्क की सैनिक सहायता के बल पर अपनी आजादी की रक्षा करने का सपना उसने कभी नही देखा। सदा तटस्थ विदेश-नीति के आधार पर ही उसने बाहरी देशो के साथ अपने सम्बन्ध बनाये।

हमने अफगानिस्तान की सरहद मे जब प्रवेश किया था तो मन मे एक आशंका-सी थी, अनजानापन-सा था। पर २१ सितम्बर को ७७९ मील की यात्रा पूरी करके जब हम पीछे मुड़कर कृतज्ञ भाव से अफगानिस्तान को 'खुदा-हाफिज' कह रहे थे, तब एक-एक दिन चल-चित्र की भॉति हमारी ऑखो के सामने नाच रहा था। वह हार्दिक स्वागत, उदार आतिथ्य, प्रेमल आशीर्वाद और हमारे मिशन का पुरजोर समर्थन, सब कुछ हमे याद आ रहा था। यदि हम विमान से यहॉ आते तो बहुत

होता तो काबुल आते या एक-दो और भी बड़े नगरो मे आते! क्या उस समय अफगान-जीवन का यह सच्चा दर्शन मिल पाता ? कभी नहीं।

अफगानिस्तान दो करोड़ की आबादीवाला एक छोटा, परन्तु अत्यन्त सुन्दर देश है। गॉवो और नगरों की पदयात्रा के बाद मुझे लगा कि इस मनोरम देश को यदि कोई पिछड़ा हुआ, अविकसित देश कहता है, तो उसके देखने का नजरिया केवल ऊपरी है। यह सही है कि इस देश मे बड़े-बड़े उद्योग और कारखानो का अभाव है। यह भी सही है कि इस देश मे भारी मशीने और बिजली का उत्पादन अत्यल्प है। यह भी सही है कि यह देश अभी तक तथाकथित भौतिक, वैज्ञानिक एव औद्योगिक प्रगति की दौड मे यूरोप के देशो के साथ कदम नहीं मिला पा रहा है। परन्तु ये सारे लक्षण किसी देश को पिछड़ा हुआ या अविकसित कहने के लिए पर्याप्त नही है। आज औद्योगीकरण के कारण जिस तरह शहर खूबसूरत परिधान पहनकर गॉवो के शोषण पर इठला रहे है, वह कोई प्रगति का लक्षण नही। रेले, मोटरे, विमान, सडके, मशीने, कारखाने प्रगति के चिह्न माने जाते है, पर इन सबका आधार तो गॉवों का शोषण ही है!

व्यक्तिगत स्वामित्व तथा व्यक्तिगत पूँजीवाद के कारण थोड-से शहरो की चमक-दमक, प्रगति एवं आधुनिकता के पीछे हजारो छोटे-छोटे गॉवो का चीत्कार छिपा है। श्रमिक के श्रम का उपहास छिपा है।

अफगानिस्तान मे विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था का शास्त्र बड़ी आसानी से अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकता है। गॉवो मे आज भी चरखा जीवित है। हमने पदयात्रा के बीच गॉवो मे देखा कि स्त्रियॉ करघे पर कपड़ा तथा कंबल बुन रही है। उन्हे जब हम यह बताते थे कि हमने जो कपड़े पहन रखे है, वे भी हाथ से बनाये हुए है, तो ये ग्रामीण बहुत प्रसन्न होते थे और कहते थे कि "क्या आपके देश मे मशीन के कपडे से यह कपड़ा ज्यादा सस्ता है?" यह सवाल बाजार ने पैदा किया है। यद्यपि उनके जीवन मे बाजार बहुत कम है, फिर भी जो आदमी शहर

जाता है, वह अमेरिका से आया हुआ 'सेकण्डहैड' कपडा बहुत सस्ते मे ले आता है। इस 'सेकण्डहैड' कपडे ने लोगो को न केवल श्रम-विमुख बनाना शुरू किया है, बल्कि लोगो की रुचि को भी विकृत करना शुरू किया है। कपडे के बाजार पर अमेरिका व यूरोप के 'सेकेण्डहैड' कपडो का प्रभुत्व है। अभी अफगानिस्तान मे कपड़े की मिले ज्यादा नही है। आम तौर से भेड-पालन यहॉ के किसानो का प्रधान धन्धा है। अफगानिस्तान की भेड़े बहुत ऊँची, मोटी और घने ऊनवाली होती है। एक-एक आदमी हजार-हजार भेडे रखता है। अफगानिस्तान बहुत ठडा देश होने से इन भेडो से मिलनेवाले ऊन का महत्त्व इन किसानो के लिए सर्वाधिक है।

डॉ० काकार से भेट

अफगानिस्तान की यात्रा के बीच डॉ० काकार से हुई हमारी भेट को मै कभी भूल नही सकूँगा। ऊँचा ललाट, लम्बा कद, गम्भीर ऑखे, विनम्र और मिलनसार स्वभाव तथा विश्व-शान्ति के प्रयत्नो मे निरन्तर अभिरुचि रखनेवाले श्री काकार का व्यक्तित्व जितना सरल सीधा है, उतना ही आकर्षक है। काबुल विश्वविद्यालय के विज्ञान-विभाग के सचालक और अफगानिस्तान-अणुशक्ति-आयोग के अध्यक्ष होने के कारण मानव-जाति की वैज्ञानिक प्रगति मे उनका योगदान सहज ही हो रहा है, पर यह योगदान विज्ञान की शक्तियो पर राजनीतिज्ञो का प्रभुत्व होने के कारण गलत दिशा मे न चला जाय, इसका खतरा उन्हे भी है। वे अणुशक्ति-आयोग के अध्यक्ष के नाते इस दिशा मे पुरजोर प्रयत्न कर रहे है कि अफगानिस्तान आणविक शक्ति का इस्तेमाल मानव-जाति के विनाश के लिए नही, बल्कि उसकी शान्तिपूर्ण प्रगति के लिए करे।

मास्को शान्ति-सम्मेलन मे उन्हीं दिनो वे अफगानिस्तान की इस नीति को जोरदार शब्दो मे प्रस्तुत करके आये थे कि रूस और अमेरिका

मिलकर आज रोटी-कपड़े के लिए मुँहताज विश्व का करोड़ो-अरबो रुपया सामरिक तैयारियो पर और अणु-अस्त्रो की प्रतियोगिता पर खर्च कर रहे है, यह मानवता के साथ द्रोह है !

"शान्ति-यात्रियो, इस देश मे आपका स्वागत है !" ऐसा कहकर श्री काकार ने हमारे साथ बातचीत प्रारम्भ की। उन्हे हमारी इस पद-यात्रा के प्रति बड़ी उत्सुकता और दिलचस्पी थी। चूँकि भारत मे पद-यात्रा की बात अब नयी नही रह गयी है, लेकिन बाहर के देशों मे किसी खास 'मिशन' या विचार के लिए इस तरह पदयात्रा करना सर्वथा नवीन उपक्रम है। इसलिए "कैसे चलते है ? कहाँ ठहरते है ? लोगो का व्यवहार कैसा है ? आपको दिक्कत तो नहीं ? लोगो को आप क्या समझाते है ? गाँवो मे आपको भोजन मिलता है या नही ?" आदि अनेक प्रश्न श्री काकार ने हमसे पूछे।

हमने विस्तार से उन्हे जानकारी दी और बताया कि गाँवो के लोग यह जानकर बड़े प्रसन्न होते है कि भारत जैसे दूर देश के दो यात्री पैदल चलकर हमारे यहाँ आये है। इसलिए हमे सभी जगह खूब आतिथ्य मिलता है। हम जब लोगो को अपनी यात्रा के उद्देश्यो के बारे मे बताते है, तो प्रायः सर्वस्व हमे एक ही उत्तर मिलता है कि 'आप अपने उद्देश्य मे सफल हो। जंग की तैयारी बन्द हो। हमे बम नहीं चाहिए। हमे तो जीवन-यापन के साधन चाहिए। आप इस यात्रा के द्वारा मुल्क की बडी खिदमत कर रहे है।' इस तरह जनता हमे अपना पूरा समर्थन और हार्दिक सहयोग देती है।

यह सुनकर श्री काकार बोले : "यह बिलकुल सही है। दुनिया के लोग वस्तुतः शान्ति चाहते है। वास्तविकता तो यह है कि न केवल रूस-अमेरिका की जनता, बल्कि वहाँ के राज्याधिकारी भी हृदय से शान्ति चाहते है। परन्तु मुसीबत यह है कि वे एक-दूसरे पर मे विश्वास खो बैठे है ! अब सवाल यह है कि पहला कदम कौन आगे बढाये ? एक बात यह भी है कि अब यह निःशस्त्रीकरण का प्रश्न नहीं रह गया है, बल्कि

दोनो देशो की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है। किस देश का प्रस्ताव मान्य किया जाय, किसका तरीका अपनाया जाय, इसका झगडा चल रहा है। मास्को के शान्ति-सम्मेलन मे भी मैने यही महसूस किया।"

एक पर्वत-कुमारी ! एक पठान !

अफगानिस्तान के जीवन की निष्कपट बहार से दिल प्रभावित हुए बिना नही रहता। उस दिन हम चलते-चलते एक नदी किनारे पहुँचे। सुनसान और सूखी पहाडियो मे बहनेवाली यह नदी यात्रियो के लिए बहुत बड़ा सहारा है। ६-७ वर्ष की एक छोटी सी अफगान-बालिका का मनोहर रूप देखकर मै तो मुग्ध रह गया। उसके चॉद जैसे गोरे मुँह पर ऐसी भोली मुस्कान बिछी थी कि उसके सामने से हटने को मन नही कर रहा था। दुनिया की राजनीति, युद्ध की तैयारियाँ, ऐटम बमो के विस्फोट आदि दॉव-पेचो से इस बाला का कोई सम्बन्ध नही। वह स्कूल नही जायगी। वह देश-विदेश की यात्रा नही करेगी, वह जंगल के फूल की तरह जहॉ पैदा हुई, वही मुरझा जायगी। उसकी ऑखो मे भरा हुआ अनन्त गाम्भीर्य कभी भी परखा नही जायगा। उसकी पीठ पर एक टोकरी बँधी थी। उस टोकरी मे वह गोबर चुनती है। यही उसके लिए जिन्दगीभर का पेशा है। उसने काले रग की कमीज और सलवार पहन रखी थी। सिर पर गोल टोपी और उसके ऊपर से लाल ओढ़नी। १० हजार फुट ऊँचे पहाड़ पर रहनेवाली इस रूपवती पर्वत-कुमारी के लिए श्रम ही जीवन है। श्रम से ही जीवन प्रारम्भ हुआ और श्रम मे ही जीवन की समाप्ति होगी।

कुछ कदम आगे बढकर हम अपनी पानी की कुप्पी भरने के लिए नदी मे उतरे। वहॉ एक अफगानकोचीवाला पठान बैठा था। बिना रेजर के, खाली ब्लेड हाथ से पकडकर दाढ़ी बना रहा था। न साबुन, न ब्रुश, न आईना, न क्रीम।

"क्यो भाई, अगले गॉव तक पहुँचने मे कितना वक्त लगेगा ?" यहॉ दूरी जानने का यही तरीका है। न मील का पत्थर, न किलोमीटर का अन्दाज। उनका अपना एक नाम है—'फरसाक'—जो शायद साढ़े चार मील का होता है। हम अपना सामान पीठ पर लेकर प्रति घण्टे तीन मील की गति से चलते थे। सामान न हो तो चार मील चल सकते थे।

"डेढ-दो घण्टे का रास्ता है"— पठान ने कहा। "कहॉ से आये हो यात्रियो"—हमारा रग-ढंग और गले मे लटकता हुआ इश्तहार देखकर जवान ने पूछा।

"दिल्ली से आये है।" हमने अपनी यात्रा के उद्देश्य की उसे जानकारी दी।

"गजब की हिम्मत की है तुमने।" पठान बहुत खुश हुआ। "थोडी दूर पर मेरा खेमा है। चलो, वहॉ चाय बनायेगे। फिर आगे बढना।" हम खेमे की तरफ बढे।

"मै हर तीन महीने काबुल से तरह-तरह का सामान, कपडा आदि ऊँट पर लादकर लाता हूँ। इस क्षेत्र मे वह सामान वेचकर वापस जाता हूँ। सालो से यही क्रम चल रहा है। अगर पूरा जोड लगाऊँ, तो हजारो मील का सफर मैने किया है। आप दिल्ली से यहॉ तक आये, यह कुछ भी नही। किन्तु मेरा सफर मुझ तक सीमित है, आपका सफर हम सबके लिए है। मेरा सफर 'मतलब का सफर' है, लेकिन आपका सफर तो 'अमन का सफर' है।" एक सरल-हृदय पठान के मुँह से ऐसी तात्त्विक बाते सुनने को मिल रही थी। उसके कन्धे पर बन्दूक टॅगी थी। पर उसके व्यवहार पर बन्दूक का प्रभाव नहीं था।

थोडी देर बाद उस पठान ने एक दार्शनिक की भॉति कहा : "पता नहीं किसने इस बन्दूक को बनाया। अगर यह बन्दूक बनायी ही नहीं जाती तो हमारे मनो मे डर क्यो पैदा होता ? आदमी, आदमी की जान लेने को क्यो लपकता ? आज बन्दूक के बल पर आदमी, आदमी पर

हक चलाता है। बन्दूक न होती तो प्यार के बल पर हक चलता। जैसे बाप का बेटे पर चलता है, भाई का भाई पर चलता है, मित्र का मित्र पर चलता है, पति का पत्नी पर चलता है।" मै ताज्जुब मे डूबा जा रहा था। पहाडो मे सामान बेचनेवाला पठान इतनी बारीक बात करेगा, इसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी। इस एक बन्दूक रखनेवाले को प्यार के हक की ऐसी व्याख्या करते देखकर तो मैने दॉतो तले ॲगुली दबा ली। हमें काबुल मे कहा गया था कि कम-से-कम आत्मरक्षा के लिए ही कोई चाकू या पिस्तौल साथ मे रखिये। पर हमने इस सलाह को स्वीकार न करके अच्छा ही किया, क्योकि ये पठान तो हमारे साथ प्यार के हक की बाते करते है और हमारा आतिथ्य करते है, यह हमने अफगानिस्तान मे पख्तून-पठानों के साथ रहकर देखा। जब हम इस पठान के साथ उसके खेमे मे गये, तो उसने झोली भरकर बादाम, किसमिस और पिस्ते हमारे सामने रख दिये।

"गाधी कैसे है ?" पठान ने बीच मे ऐसे पूछा, जैसे वह नींद से जागा हो। "बहुत बडा आदमी है गाधी।" पठान ने आवाज धीमी करके कहा : "क्या आप मेरे सलाम गाधी के पास पहुॅचायेगे ?" उसे यह मालूम नहीं था कि गाधी अब जीवित नहीं है। हमारे लिए यह बताना बड़ा कठिन हो रहा था कि गाधी ने जीवनभर प्रेम और अहिसा की उपासना की, पर आखिर मे स्वयं ढाल बनकर, स्वय बलिदान होकर किस तरह धर्म और जाति के नाम पर फैली हुई हिसा को बन्द किया।

"गाधी तो अब जीवित नहीं है।" मैने धीरे से कहा।

"सच ?" पठान चौका। उसका चेहरा उदास हो गया। फिर हम लोग कुछ देर तक गाधी के बारे मे ही बाते करते रहे। गाधी ने इन पहाडों तक अपनी छाया डाली है।

"हमारे बीच भी एक गाधी है।" पठान ने कहा।

"कौन ?" मैने उत्सुकता मे पूछा।

"खान अब्दुल गफ्फार खान।" पठान तुरत बोला : "वह हम पख्तूनो की आजादी का पैगम्बर है। वह भी अमन और प्यार का पुजारी है। पर यह तो बताओ की अमन और प्यार की, इन्सानियत और आजादी की बात कहनेवालो को ये हुकूमतवाले लोग जेलो मे क्यो बन्द कर देते है बाबू ?" सरल-हृदय पठान की बाते भोली-भाली थी, पर उनमे तत्त्व गहरा था। हमने उसे कुछ कारण समझाये।

फिर हमने देखा पठान का सामान। अनेक अमेरिकी कोट, ब्रिटिश सेना के कपड़े, अमेरिकन स्त्रियो के 'फ्रॉक' इत्यादि उसके पास थे। ये सारे इस्तेमाल किये हुए पुराने कपड़े थे। बहुत सस्ते मे यूरोप और अमेरिका से ये कपड़े काबुल पहुँचते है और काबुल से यह जवान अपने ऊँट पर लादकर ये कपड़े यहाँ लाता है।

"अमेरिका से आया हुआ 'सेकण्डहैण्ड' कपड़ा पहनने के बजाय अपने घर पर, अपने देश का मोटा कपडा पहनना क्या बुरा है ?" मैने पूछा। "आप क्या कहते है जनाब ? काबुल का बड़ा व्यापारी इस धन्धे से काफी पैसा कमा लेता है। हमारे जैसे कुछ लोगो की भी गुजर हो जाती है। उसके आगे के नुकसान-फायदे की बात हम क्या जाने ?"

हमारे पास ज्यादा समय नही था। हमने पठान से विदा ली और आगे चल पडे। अफगानिस्तान के इस पहाडी रास्ते के कष्ट इन अनुभवो से भी ज्यादा दिलचस्प है। जब हमने काबुल से गजनी और कन्धार का लम्बा रास्ता छोडकर ऊँची पहाडियो का यह रास्ता अपनाया, तो भारतीय दूतावास के अधिकारी बहुत चिन्ता प्रकट कर रहे थे। कुछ महीनो पहले इस रास्ते से एक अमेरिकी दम्पति 'हिच हाइक' यात्रा पर गये थे, वे कभी वापस नहीं लौटे। इस घटना के कारण सभी परेशानी मे थे। अफगान सरकार ने पूरे रास्ते पर सरकारी कर्मचारियो के पास सूचना भेजी कि "शान्ति-यात्रियो को हर सम्भव मदद की जाय।" बीच-बीच मे भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव टेलीफोन करके जानकारी प्राप्त करते रहते थे। हमारे पास भी सरकार की तरफ से एक चिट्ठी थी

कि "भारतीय शान्ति-यात्री अफगानिस्तान के अतिथि होकर यात्रा कर रहे है।" इतना सारा प्रबन्ध होने से किसीके लिए भी कोई सन्देह की गुंजाइश नही थी।

काफिलेवाला पठान!

यह अफगानिस्तान के पहाडो की कहानी है। यहाँ ऐसी कहानियाँ रोज घटती हैं। उस दिन हम सूखी रोटी और बिना दूध-चीनी की काली चाय का नाश्ता करके सुबह छह बजे पदयात्रा पर रवाना हुए। अफगानिस्तान की सुपरिचित पर्वत-श्रेणी, कोहिबाबा के ऊपर से हम गुजर रहे थे। घाटियो के उतार-चढाव पार करते हुए हम आगे बढ रहे थे। ऐसा सुनसान रास्ता, जहाँ न बसे चलती है, न कारे। वायुयान या रेलो का तो सवाल ही नही। ऊँची, तगड़ी भेडो के झुण्ड शिकारी कुत्तों के साथ पहाडियो पर बिखरे हुए थे। ये कुत्ते हमारे लिए सदैव परेशानी के कारण बनते थे। जोर-जोर से भूँककर तंग कर डालते थे। हमे कई बार यह सलाह मिली कि हम हाथ मे लाठी लेकर यात्रा करे। पर यह सलाह मानने के लिए दिल ने गवाही नही दी। लोगो की सलाह तो यह भी थी कि अफगानिस्तान के भयंकर निर्जन रास्तो मे यात्रा करने के लिए हम साथ मे कोई छोटा-मोटा हथियार भी रखे, पर ऐसी सलाह पर ध्यान देने का तो कोई प्रश्न ही नही था। आदमी से डरकर आदमी के खिलाफ हम हथियार रखे, इस तर्क को तो मै स्वप्न मे भी नहीं समझ सकता, पर कुत्तों की करामात के आगे हमे कई बार परेशान होना पडा।

कोहिबाबा १० हजार फुट ऊँची पहाडी है। हम उसे पार कर रहे थे। रास्ते मे ऊँटो का एक लम्बा कारवाँ मिला। वैसे तो एकाध कारवाँ हमे रोज ही मिलता था, पर उस दिन का कारवाँ तो बहुत ही बडा था। ८०-९० के करीब ऊँट-ऊँटनियाँ और करीब ४०-५० स्त्री-पुरुष और बच्चे थे। उसके बाद और भी एक छोटा काफिला हमे मिला, क्योंकि

पहाड़ पर बहुत सर्दी पड़नी आरम्भ हो गयी थी। एक-दो महीने मे पूरा पहाड़ बर्फ से ढक जानेवाला था। इसलिए गॉव के गरीब किसान रोज-गार-धन्धे के लिए काबुल, जलालाबाद, कन्धार, पेशावर और कोई-कोई तो दिल्ली तक चले जाते है। ये लोग अपने साथ अपने बाग की उपज—बादाम, किशमिश, अखरोट आदि भी ले जाते है। सर्दियॉ बीत जाने पर ये लोग वापस अपनी जन्म-भूमि मे लौट आते है।

इन पठानो का अपना मकान तो कम ही के पास होता है। ये लोग अपने हाथ से तैयार किये हुए कबलों के खेमे तम्बू, गाडकर गर्मियो मे थोड़ी-बहुत खेती करते है। इनका जीवन बहुत कठिन और परिश्रमी होता है। पर ये लोग बड़े उदार दिल, साहसी और वीर होते है। हमारी पीठ पर लदा हुआ थैला एक पठान ने हमसे लेकर अपने ऊँट पर रख लिया। कहने लगा : "जब तक हमारा रास्ता एक है, तब तक आप क्यो बोझ उठाये?" फिर वह अपने जीवन की कहानियॉ सुनाता रहा। लम्बा, गठीला, चौडा ललाट, सिर पर सफेद पगडी, ढीला मैला-सा कुरता और उस पर छोटी-सी फटी जाकट, घेरदार सलवार, हाथ मे छोटी-सी छड़ी। बडा फुर्तीला जवान था वह। दिल्ली और कराची का सफर ऊँट पर कर चुका था। धडाके से हिन्दी बोलता था। कहने लगा : "मेरा घर और मेरी जमीन साल मे छह-सात महीने बर्फ से ढॅकी रहती है। हम गरीबो के लिए सर्दी का मौसम बहुत तकलीफदेह होता है। हमारे पास मकान के नाम पर एक छोटा-सा मिट्टी का झोपडा है। उसीमे मै, बीबी, बच्चे और बूढी मॉ—सब रहते है। उसीमे हमारी भेडे और गाये रहती है। सर्दी के पूरे मौसम के लिए २-३ बडी-बडी भेड हम रखते है। यही हमारा भोजन है। पूरे कपड़े हमारे पास नही होते, इसलिए लकड़ी जलाकर गर्मी प्राप्त करते है। पर इस साल तो कुछ भी नही रहा, अत मै पूरे परिवार के साथ निकल पडा हूॅ। पेशावर जाकर कुछ काम करूॅगा और सर्दी बीतने पर वापस आऊँगा।" हमने देखा कि वह अपने ऊँट पर पूरा घर लादे हुए था। बूढी मॉ और दो बच्चे

ऊँट पर थे। एक बड़ा बच्चा, पत्नी और खुद पैदल चल रहे थे। फिर उस जवान ने पूछा : "सुना है इस साल हमारी हुकूमत और पाकिस्तानी हुकूमत के बीच कुछ झगडा हो गया है और खैबर दर्रा का रास्ता बन्द कर दिया है। फिर आप लोग किस तरह आये?" मैने कहा : "रास्ता बन्द तो जरूर हुआ है, पर हम तो तीसरे देश से आये है। हमारे पास पासपोर्ट है। इसलिए हमे जाने-आने मे कोई दिक्कत नही है। पर भाईजान, आप कैसे जायेगे?" पठान बोला : "ये हुकूमते हम गरीब लोगो के गले मे रोज फन्दा लगाये रहती है। नित-नये झगड़े, नित-नये कानून! पर पेशावर हमारा है। पठानो का है। हम पीढियो से वहाँ जाते रहे है। हुकूमत किसीकी हो, वहाँ रहनेवाले पख्तून हमारे भाई है। हमे वहाँ जाने से कोई नही रोक सकता। मै तो पहाडियो के अन्दर से बीसो रास्ते जानता हूँ। अगर मुझे अपने पख्तून पठानो से मिलने के लिए कोई रोकेगा, तो बन्दूक मेरे कन्धे पर है।" यह था असली पठानी रग।

पर थोड़ी ही देर मे उसका दूसरा रंग सामने आया। उसने देखा कि बगल मे ठडे पानी का झरना बह रहा है। इसलिए उसने कहा : "क्या आप लोग थके नही है? क्या आपको भूख लगी है? झरना पास मे बह रहा है। कहिये तो चाय बनाऊँ? मेरे पास रोटी है।" बडा अप्रत्याशित निमन्त्रण था। इन सूखे पहाडो मे ऐसा हरे-भरे दिलवाला पठान मिला। वरना हमारे लिए अक्सर तो ठडा पानी और विटामिन की गोलियो का ही सहारा था। काबुल से रवाना होते समय हमारे मेजबान श्री रामलाल आनन्द ने विटामिन की गोलियाँ हमारे साथ दी थीं। ये गोलियाँ ही हमारा प्रमुख भोजन बनकर साथ देती रही। हम इन पहाडी चोटियो पर चढ़ते और हर चोटी पर चढ़कर १०-१५ मिनट विश्राम करते। दिनभर खाने-पीने का नाम नही। सुबह-शाम जो खाना मिलता, वह भी अपर्याप्त होता था। इस युवक के अप्रत्याशित निमन्त्रण को हमने स्वीकार किया। पर उसकी तीन इन्च मोटी,

ऊपर से जली, अन्दर से कच्ची रोटी हम खा नहीं सके। हमारे इस प्यारे मेजवान ने झरने से केतली मे पानी भरा और दो पत्थरो के बीच आग जलाकर पानी गरम किया। केतलीभर पानी मे चम्मच भरकर हरी चाय की पत्ती डाली। अफगानिस्तान मे यही चाय ज्यादा चलती है। पेट मे भूख जरूर थी, पर यह चाय और रोटी भायी नहीं। फिर भी १५-२० मिनट हमने अपने पठान साथी के साथ बिताये। फिर वह अपने रास्ते पर बढा। हमारा सामान हमारी पीठ पर आ गया।

गरीब गॉव : अमीर लोग

●

हम चलते रहे। घाटियो के अनेक उतार-चढाव थे, रास्तेभर मे कोई गॉव नही मिला। काफिलो का मिलना भी बन्द हो गया। हम दोनो बहुत थक गये। पर चारा क्या? तभी बहुत दूर पर एक बड़ा-सा मकान हमे दिखाई दिया। हालॉकि उस मकान तक पहुॅचने के लिए हमे लम्बा रास्ता पार करना था, फिर भी मन मे आशा का सचार हुआ कि निश्चित रूप से हम एक स्थान पर पहुॅचनेवाले है। झरने से हमने अपनी पानी की केतली भर ली थी। उस झरने से हम १५ मील चल चुके थे और सामने दीखनेवाला मकान करीब पॉच मील था। इस पॉच मील को हम दो घटे मे पार कर सके। सामान के साथ ऊॅची-नीची पहाड़ियो मे चलने की गति बहुत कम हो जाती है और थकान ज्यादा आती है। पर जब हम इस मकान के पास पहुॅचे, तो हमने देखा कि यह बडा-सा मकान केवल खॅडहर मात्र था। वह २८ अगस्त का दिन। दिन मे तेज धूप और रात मे तेज सर्दी का मौसम। इस धूप मे निरन्तर चलने के कारण शरीर पसीने से तरबतर हो रहा था। प्यास भी ज्यादा लग रही थी। हमने अपनी छोटी-सी केतली का सारा पानी पी डाला। इन सूखे-नगे पहाड़ो मे पानी भी तो हर जगह नही मिलता। थोडी देर आराम करके हम आगे बढे।

दो-तीन मील और चलने पर एक नदी मिली। यद्यपि इस छोटी-सी नदी का पानी बहुत साफ और पीने लायक नहीं था, फिर भी तेज प्यास के सामने हमने समझौता किया। थोड़ा और आगे बढने पर बाये हाथ की तरफ करीब एक मील दूर एक छोटी-सी बस्ती नजर आयी। यद्यपि हमे एक मील अपने रास्ते से हटकर जाना था, फिर भी सिवा वहाँ जाने के और कोई चारा नहीं था। इस गॉव मे जाने के लिए इस नदी को भी पार करना था। नदी मे घुटनो तक ही पानी था, यह गनीमत थी। आखिर हम २५ मील चलकर थके-मॉदे, भूखे इस छोटे-से गॉव मे पहुँचे। यह गॉव था—स्पिद्देवार किरमान! छोटा-सा गॉव। एक टूटी-फूटी-सी मस्जिद। मस्जिद के पास ही एक मुल्ला साहब बैठे मजहब की कोई किताब पढ रहे थे। पूरे गॉव मे यही एक आदमी थे, जो किताब पढना जानते हो। हमारे चेहरे थके थे। पैर और कन्धे दर्द कर रहे थे। शाम को ७ बजे हम मुल्ला साहब के पास पहुँचे। सामान उतारा। मुल्ला साहब ने बैठने का इशारा किया। हम बैठ गये। अपनी टूटी-फूटी फारसी मे हमने बातचीत शुरू की। दो अजनबी आगन्तुको को देखकर गॉवभर की स्त्रियाँ, बच्चे और पुरुष इकट्ठे हो गये।

मुल्ला साहब तथा अन्य ग्रामवासियो के लिए सचमुच यह समस्या थी कि [illegible]हॉ ठहराये? एक परिवार के लिए एक-एक मिट्टी की झोपड़ी थी। इन झोपड़ियो मे स्त्री, पुरुष, बच्चे, भेडे, गाय, मुर्गे—सभी रात मे पनाह पाते है। ऐसी स्थिति मे हमारे जैसे विदेश से आये हुए अतिथियो को कहॉ ठहराया जाय? फिर इतने गरीब लोग कि हम दो आदमियो के लिए भोजन जुटाना भी किसी एक आदमी के लिए कठिन था। आखिर तीन-चार घरो से थोडा-थोडा भोजन इकट्ठा किया गया। मुल्ला साहब ने कहा: "हम गरीब है। शायद हम अच्छी तरह से मेहमान-नवाजी नही कर सकेगे। पर जो कुछ हमारे पास है, आपके लिए हाजिर है।" रात को हम मस्जिद मे सोये। ५-७ घरो से एक-एक कम्बल लाया गया। ये कम्बल बहुत गन्दे, धूल से भरे हुए और

गन्धवाले थे। पर रात को सर्दी तेज हो जाती थी, इसलिए हमारे लिए ये कम्बल जरूरी थे। हमने अनुभव किया कि भले ही ये लोग गरीब थे, परन्तु दिलो से ये लोग अमीर थे। बार-बार वे हमारे पास आते। हमारी कुशल पूछते और अच्छी तरह मेहमान-नवाजी न कर सकने के लिए क्षमा-याचना करते। उनके लिए यह नयी और ताज्जुब की बात थी कि दो अमन के मुसाफिर उनके गॉव मे पहुॅचे है। वरना कहॉ कोई विदेशी मुसाफिर यहॉ पहुॅचता है! कैसा कष्टो से भरा परीक्षा का दिन था वह!

ऐसी थी हमारी अफगानिस्तान की यात्रा! फलो, फूलो और अगूरो के देश की यात्रा। जैसे मीठे खरबूजे, सरदे और अगूर अफगानिस्तान मे खाये, वैसे दुनिया मे कही नही मिले। अब कभी अगूर खाता हूॅ, तो लगता है मानो कोई नकली अगूर खा रहा हूॅ। वही हाल अनार का भी है। "जैसा खाओ अन्न, वैसा होगा मन" वाली कहावत के अनुसार इस देश के लोग भी अपने ढग के निराले है।

दिल्ली से चले। लाहौर-पेशावर से गुजरे। काबुल भी पीछे रह गया। 'चलता मुसाफिर ही पायेगा मजिल और मुकाम।' अब सामने है ईरान!

●
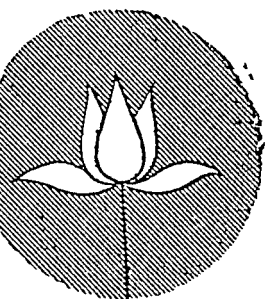
कला और कविता की भूमि-
ईरान में

तायाबात ! ईरान का पहला पड़ाव ! यह है अनजान देश और अनजान भाषा। चारों ओर रेगिस्तान और सॉय-सॉय करती हुई भयकर ऑधी। हम ढूँढ रहे थे कोई मेजबान। इतने मे एक युवक ने पूछा : "आप क्या चाहते है ?" हमने बताया : "हम रातभर ठहरने की जगह चाहते है।" बड़ा अजीब उत्तर था। अनेक होटल सामने है, फिर भी ठहरने की जगह चाहिए। वह बोला : "मै कुछ समझा नही। मेरे साथ चलिये, हम चाय पीयेगे और आपकी पूरी कहानी सुनेगे।" चाय के टेबल पर उसे मालूम हुआ कि हम केवल यात्री नही है, शान्ति के प्रचारक है, पैदल चलते है आदि। उसने शहर के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के बगीचे मे हमे ठहराया।

क्या हिन्दू मुसलमान के घर खायेगा ?

ईरान कला, कविता और संस्कृति का देश है, यह पहले ही दिन लोगों के जीवन तथा रहन-सहन से मालूम हुआ। हम ठहर गये। शाम

कोई क्षोभ नही। हमने विनम्र भाव से 'खुदा-हाफिज' किया और तीसरे गॉव मे जाकर पनाह पायी।

कष्टभरा मार्ग : सुखभरा आतिथ्य

●

हम एक रात सिसाब मे ठहरे थे। वहॉ रात को एक सरकारी अधिकारी श्री फरीदून किरमानी भी रुके। वे जीप से आये थे। अचानक परिचय हुआ।

बोले : "मेरी जीप खाली है। चलिये, मेरे घर पर अतिथि बनिये।"

"हम तो केवल पैदल ही चलते है। हमे न बस चाहिए, न कार; न जीप, न साइकिल, न घोडा।" इस वाक्य से हमने अपनी कहानी प्रारम्भ की और "आणविक हथियारो के खिलाफ हमारा यह सक्रिय विरोध है" इस वाक्य के साथ हमने अपनी कहानी समाप्त की।

फरीदून बोले : "अच्छी बात है, मै आपके इस विचार से पूरी तरह सहमत हूँ। कल जब आप बोजनूर्द आये, तो मेरे अतिथि बनने का सौभाग्य मुझे प्रदान करे। आप मेरे अजीज मेहमान है। आपको मै अपनी ऑखो पर बिठाऊँगा।" वे बड़ी भावुकता मे भरकर बोल रहे थे। फारसी भाषा कितनी मीठी, कितनी कोमल और कितनी ललित है, यह हमे उनके एक-एक वाक्य से महसूस हो रहा था।

दूसरे दिन २५ मील का रास्ता हमने पार किया। दिनभर वर्षा होती रही। हमारे जूतो मे सेर-सेरभर मिट्टी लिपट गयी। सारा रास्ता कीचड़मय हो गया था। हम उस दिन जितना थके, उतना शायद उससे पहले किसी दिन नही थके होगे। दिनभर कुछ भी खाने को नही मिला। रास्ते मे ही रात पड गयी। दूर से जब बोजनूर्द शहर की चमकती हुई बिजली हमे दीख पडी, तो लगा अभी भी हमे घंटाभर चलना होगा। ठण्डी हवा की धार और अन्धेरी रात की वर्षा मे चल रहे दो यात्रियो को देखकर सरसर करती हुई एक कार हमारे पास रुकी।

"बैठियेगा कार मे ? कहाँ जाइयेगा ?" एक साथ दो प्रश्न । अन्धेरी और वर्षा । उसके बीच ठण्डी हवा के झोके ।

हमने उत्तर दिया : "हम बोजनूर्द जा रहे है ।"

"गाडी मे बैठिये । शहर अभी दो तीन मील है ।"

"आप चलिये । हम पैदल चलकर आयेगे ।" हमारा उत्तर सुनकर कारवाला मन-ही-मन शायद हमे पागल समझकर आगे बढ़ गया । हमने सोचा कि क्या इस कठिन समय मे यह कार हमारी परीक्षा करने आयी थी ।

बहुत थककर जब हम बोजनूर्द पहुँचे, तो हमारे मेजबान आँखे फाड़े बेताबी से हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे । हम पहुँचे कि उन्होने फारस के बेहतरीन गलीचो से सजे कमरे मे हमारे ठहरने का प्रबन्ध किया । बेहतरीन शराब मँगायी । पर जब हमने बताया कि हमने शराब कभी नही पी और न पीते है, तो वे बहुत चकित हुए । बोले : "इस ठण्डे देश मे यह बहुत जरूरी है । खैर, आप नही पीयेगे तो आज मै भी नही पीऊँगा । पर बिना इसके काम चलेगा आपका ? खास तौर से रूस मे तो वोदका बहुत जरूरी है ।" खैर, दिनभर की बेतहाशा थकान और भूख के बाद जब हम भोजन करके गरम लिहाफ मे सोये, तो पलभर मे सुखभरी नींद आ गयी ।

अणुबम और विवाह

●

हम गोबद-ए-काबूस शहर के एक अवकाश-प्राप्त कप्तान और बहुत धनी सज्जन श्री हुनरवर के घर पर मेहमान बने थे । रातभर उनके साथ विभिन्न विषयो पर हमारी चर्चा होती रही । प्रातः जब हम चलने लगे, तो वे बोले : "आप मुझे अपना भाई समझिये । यह घर आपका घर है । आप अभी गाँवो मे पैदल जायेगे । कोई आपके 'मिशन' को समझेगा, कोई नही भी समझेगा । अतः आप कुछ पैसे पास रख लीजिये ।

संकोच की बात नही। यदि आप यह स्वीकार करेगे तो मै अपना सौभाग्य मानूँगा। मै तो अपने शिकार के शौक पर ही हजारो खर्च कर देता हूँ। इस पुण्य-कार्य मे भी मेरा कुछ सहयोग हो जायेगा, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।" पर हमने उन्हे अपने 'मिशन' की बात समझायी कि "आणविक हथियारो और तैयारियो के विरोध के प्रतीकस्वरूप हमने पैसा न रखने और पैदल चलने का तय किया है। फिर आप जैसे लोग सर्वत्र हमे अपना प्रेम प्रदान करेगे। आप चिन्ता न करे। आप जैसे बुजुर्गो का आशीर्वाद ही हमारा सबसे बडा धन और पाथेय है। हमे और कुछ नही चाहिए।"

उनसे विदा लेकर हम निकल ही रहे थे कि मोटर पार्ट्स की एक बडी दुकान मे बैठे एक युवक की नजरो से हमारी नजरे टकरायी। वह युवक अपने चश्मे के पीछे से हमारी ओर देखकर कुछ सोचने लगा कि निरन्तर आगे बढने के अभ्यस्त हमारे कदम उस दुकान से कुछ आगे बढ गये। इतने मे पीछे से एक आदमी साइकिल पर आया और उस दुकान पर चलने का आग्रह करने लगा। हम उस युवक के प्रथम दर्शन से ही इतने प्रभावित थे कि तीन सौ कदम वापस जाकर उससे मिलने का लोभ सवरण न कर सके।

दुकान के द्वार पर प्रतीक्षा करनेवाले उस युवक से हम मिले तो हमे लगा, मानो हम सदा के मित्र है। यह युवक गाधी का भक्त था और आणविक हथियारो का दुश्मन। उसने अपने विवाह न करने का कारण बताते हुए कहा : "इस असुरक्षित विश्व मे मै सन्तान उत्पन्न करना नही चाहता।" हमने श्री मानुचेर नाम के इस युवक के साथ दो घटे बिताये। श्री मानुचेर ने हमे कहा कि "मै आपके साथ ही चल पडूँ, ऐसा जी चाहता है। पर कुछ जिम्मेदारियो और परिस्थितियो मे उलझा हूँ। आपका हर तरह मे सहयोग करना हमारा कर्तव्य है। आप जो काम कर रहे है, वह किसी एक देश, एक वर्ग या जाति के लिए नही, सबके लिए है। आप केवल भारत के प्रतिनिधि नही, बल्कि हम

सबके है।" उस युवक की तीव्रता और जागरूकता ने हमे मोह लिया। ऐसे युवक किसी भी दिन सब कुछ छोडकर कार्यक्षेत्र मे उतर सकते है।

शाकाहार या दिल की हिंसा!

●

शाहपसन्द मे हम एक बहुत ही साधारण मध्यवित्त परिवार के अतिथि थे। उन्हे हमारे आने की इतनी प्रसन्नता थी कि वे हर तरह से हमे आराम पहुँचाने और आतिथ्य करने की कोशिश मे थे। हमारे मेजबान की पत्नी तो हमारे पहुँचने के क्षण से ही हमारी सेवा मे जुटी थी। उसने अपनी सारी कला सँजोकर हमारे लिए एक खास तरह का ईरानी पुलाव तैयार किया। उस पुलाव मे उसने सुगन्ध और स्वाद के लिए मास के कुछ टुकडे भी डाले। हार्दिक श्रद्धा और उमड़ते हुए प्यार से उसने हमारे सामने पुलाव परोसा। हमने देखा कि उसमे गोश्त के कुछ टुकड़े पड़े है। हमने उन्हे बताया कि "क्षमा करे, हम शाकाहारी है। अतः यह पुलाव नही खा सकेगे।" बस, हमारा यह कहना था कि मेजबान की पत्नी का चेहरा उतर गया। बेचारी निराश हो गयी। हम भी बडे धर्म-सकट मे थे। उस बहन का उतरा हुआ चेहरा देखकर मुझे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि हमारा शाकाहार उसके दिल पर गहरा आघात लगा रहा है। कभी-कभी अहिसा मे से कैसे असन्तोष पैदा होता है, इसका अनुभव मिला। हमने आखिर पुलाव नहीं खाया। दूध चीनी के साथ रोटी और उसके बाद गहरे लाल रग की गिरीवाला मीठा तरबूज खाकर हमने उनसे क्षमा माँगी। रह-रहकर उसका निराश मुँह सामने आ रहा था। बहन तो हमारे साथ ठीक वैसा ही बर्ताव कर रही थी, मानो कोई सालो से बिछुडा भाई उसे मिल गया हो। उसने कहा: "अच्छा, आप मास नही खाते तो ठीक है, इन मास-खण्डो को अलग कर दीजिये। पुलाव खाने मे क्या आपत्ति है?" फिर कहने लगी: "आपको इतना लम्बा सफर करना है। दुबला-पतला-सा शरीर है। कैसी-

कैसी भयकर सर्दी का सामना करना है। यह कठिन व्रत क्यो ले रखा है ?" पर हमने विस्तार से, अहिसा की बात समझाते हुए शाकाहारी रहने का कारण बताया।

बिस्कुट का डिब्बा

●

हम चल ही रहे थे कि धीरे से एक जर्मन कार हमारे पास आकर रुकी। उसमे से एक ३५ साल का आकर्षक व्यक्तित्ववाला युवक निकला और पूछा : "आपको कहाँ जाना है ? क्या आप यात्री है ?"

हमने बताया : "हम पदयात्री है और पैदल गोरगान जा रहे है ।"

"पैदल क्यों ? हमारी गाड़ी मे बैठिये।"

उसके इस निवेदन पर हमने कहा : "हमे खेद है कि आपके इस निमन्त्रण को स्वीकार करने की स्थिति मे हम नही है। दिल्ली से यहाँ तक आप जैसे अनेक बन्धुओ के निवेदन को अस्वीकार करके हम पैदल आये है और इसी तरह अभी दूर तक चलते रहना है।"

बड़ी दिलचस्पी हुई, उन्हे हमारी बातो मे। बोले : "आपके साथ कुछ समय बिताने को जी चाहता है। क्या गोरगान मे आप हमारे अतिथि बनेगे ?"

हमने कहा : "यह स्वीकार है।" वे अपने घर का पता देकर चले गये।

हम अगले दिन पहुँचे गोरगान। हम उक्त युवक श्री कताची के घर अतिथि बने। अगले दिन प्रातः चलने की तैयारी की, तो उनकी पत्नी ने अपना नया आग्रह पेश कर दिया। बोली : "आपके आने का लाभ ही क्या, यदि आप मेरे हाथ का भोजन करके न जायँ। दोपहर तक तो रुकना ही होगा।" चूँकि पिछली शाम को बहुत देर हो जाने से हमने होटल मे भोजन किया था, इस बहन के आग्रह को हम टाल नही सके। सुबह चलने का कार्यक्रम स्थगित किया। उन्होने अपने

अनेक मित्रो को भी हमसे मिलाने के लिए भोजन के समय आमन्त्रित किया। बहन बोली : "कहाँ भारत, कहाँ ईरान। उसमे भी गोरगान, एक कोने पर। लेकिन फिर भी हम कितने भाग्यशाली है कि आप आये। यह मित्रता का प्रारम्भ चिरस्थायी हो। आप अपने पवित्र उद्देश्य को पूरा करके भारत पहुँचे।" वह न जाने इसी तरह कितनी देर गदगद होकर हमे देखती रही और कुछ-न-कुछ कहती रही। जब दोपहर बाद हम चलने लगे, तो श्री कताची ने धीरे से हमारे कान मे आकर कहा : "आप मेरे भाई के समान है। कतई सकोच न करे। ये कुछ तुमन (रुपये) साथ रख ले।" हम उनका यह हार्दिक प्यार और भोला अपनत्व पाकर धन्य हो रहे थे। उनकी यह सहानुभूति उस सारे 'मिशन' और आन्दोलन के प्रति थी, जो युद्ध और आणविक आयुधो के विरुद्ध चल रहा है तथा जिसके हम अग है। हमने उन्हे समझाया कि "क्या आपके इस अमित प्यार से बढकर भी कोई धन हो सकता है? आपकी सहानुभूति का धन ही हमे आगे बढ़ने की ताकत देगा।" पर वे बड़े चिन्तित थे। न जाने हमे रास्ते मे भोजन मिले न मिले। कोई दिक्कत हो। उनका हृदय आश्वस्त नही हो रहा था। आखिर चलते समय दो पाउड बिस्कुट का एक डिब्बा जबरन हमे दे ही दिया और वह हमने स्वीकार किया। ओह, सब जगह प्यार की कैसी गगा बह रही थी!

जूतो की भेट और पुत्री की मॉग

●

पिछले दिन के पड़ाव पर हमे श्री अब्बास खियानी और उनके भाई मिले थे। वे अपने घर आने का निमन्त्रण दे गये थे। एक ओर मध्य एशिया का सबसे ऊँचा देमावंद शिखर १८ हजार फुट की ऊँचाई पर आसमान से बात कर रहा है, दूसरी ओर समुद्र सतह से भी ५० फुट नीचे संसार की सबसे विशाल झील 'कास्पियन सी' हिलोरें ले रही है। इन दोनो के बीच बसे हुए रूस के सरहदी नगर बेहशहर मे लगभग दो

घंटे के लिए हम अब्बास खियानी के अतिथि थे। बैठे-बैठे उनकी नजर गयी हमारे घिसे जूतों की तरफ। न जाने उनके मन मे क्या आया कि अचानक उठे और पास की ही दुकान से दो जोडी नये जूते ले आये। हमने कहा : "अभी इनसे काम चल रहा है, आप चिन्ता न करे।" तो बोले : "मुझे भी तो कुछ सेवा करने का अवसर दीजिये। आप तो किसी-न-किसी मित्र से कही तो जूते लेगे ही। फिर इतनी सेवा मेरी भी लीजिये।" वे किसी तरह न माने। हमने भी उनका आग्रह स्वीकार किया। हमे इस यात्रा मे जूता ही सबसे ज्यादा जरूरी, सहायक और उपयोगी चीज थी। पर एक जूता एक हजार मील से ज्यादा नहीं चलता। दिल्ली से लिया हुआ जूता काबुल मे समाप्त और काबुल का जूता यहाँ समाप्त। हम तो पूरी तरह जनाधारित थे। हमे भोजन चाहिए, या कपडे, जूता, साबुन, पोस्टेज, कलम-कागज, कुछ भी चाहिए—सारी चीजे सीधी वस्तु के रूप मे ही हम लोगो से प्राप्त करते थे।

अब्बास खियानी के एक मित्र भी वही बैठे हमारे साथ बाते कर रहे थे। हमारी बातचीत पहुँची व्यक्तिगत जीवन तक और उन्होने पूछ डाला : "क्या आपने शादी की है?" प्रभाकर तो अविवाहित थे, पर मैने कहा कि "मै अपनी पुत्री को घर छोडकर आया हूँ, जो अब करीब छह महीने की होगी।" इस पर ये भाई बोले : "मेरी पहली सन्तान एक पुत्र है, जिसका नाम है—हमीद। उसकी उम्र भी सालभर से कम है। अन्तर्राष्ट्रीय मित्रता और भारत-ईरान-मित्रता को दृढ करने के लिए क्या आप अपनी पुत्री का मेरे पुत्र के साथ विवाह करेगे?"

गजब का प्रस्ताव था। मैने कहा, "मेरी पुत्री और आपका पुत्र अपने विवाह के बारे मे स्वय ही निर्णय करेगे, मेरी तरफ से कोई बाधा खडी होने का सवाल ही नहीं।"

"क्या नाम है आपकी पुत्री का?" उस भाई ने पूछा।

"साधना" मैने बताया। परन्तु इस भाई को 'साधना' नाम का उच्चारण कठिन मालूम दे रहा था। अतः उसने कहा कि "यदि आप

एतराज न करे, तो मै उसके लिए एक नया नाम भी सुझाना चाहता हूँ और उसने साधना का नाम 'पाकीजा' रख दिया। कितना भावुक ज्वान था वह और कितना स्नेह था उसके मन मे भारत के प्रति !

'भाईजी' के साथ

●

तेहरान मे १६ दिन का हमारा प्रवास हमारे लिए एक मधुर यादगार बनकर रहेगा। भारत मे बैठकर हम यह कल्पना भी नही कर सकते थे कि तेहरान जैसे अति आधुनिक नगर मे हम अपनी जेब मे एक भी पैसा रखे बिना एक लम्बे समय तक रह सकेगे। पर ऊँचे विचार और आचार से परिपूर्ण एक आदर्श जीवन व्यतीत करनेवाले भाई मक्खनसिंह जैसे मेजबान के मिलने पर यह आसानी से सम्भव हो सका।

सफेद पगडी और लम्बी दाढी के बीच सदैव मुस्करानेवाला चेहरा और गम्भीर ऑखे 'भाईजी' के व्यक्तित्व को समझने मे पर्याप्त मदद करती है। हॉ, वे तेहरान मे 'भाईजी' के नाम से ही पहचाने जाते है। तेहरान मे सैकडो भारतीय व्यापारी हैं और उनके लिए भाईजी, सचमुच भाईजी ही है। कोई भी भारतीय किसी भी कठिनाई मे भाईजी की सहायता सहज प्राप्त कर लेता है। कोई बीमार है या किसीके घर के लोग भारत गये हुए है या किसीको और किसी तरह की सहायता चाहिए, वह भाईजी से मिलेगी।

भाईजी सायकाल अपने घर से कार मे निकलेगे और ऐसे घरो का एक चक्कर लगाकर उनसे पूछेगे कि "सब कुछ ठीक है ? और क्या आवश्यकता है ?" इत्यादि। सेवा का ऐसा आदर्श व्यवहार देखकर कोई भी उनके प्रति सहज नतमस्तक हो जाता है।

तेहरान के व्यापारी भारतीयो मे वे शायद सबसे अधिक धनी हैं। पर धन का गर्व उन्हे छू भी नही गया है। उन्हे देखकर किसीको यह अनुमान भी होना कठिन है कि वे एक धनवान् व्यक्ति है ! बहुत सादा

भोजन, बहुत सादा लिबास और बहुत सादी रहन-सहन। प्रतिदिन अपने हाथ से कपड़े धोते देखकर सब लोग कहते हैं : "विदेश में आप जैसा धनी व्यक्ति अपने हाथ से कपड़े धोये, यह शोभा नहीं देता।" पर भाईजी के अपने मूल्य ही उनकी शोभा है। "धन का उपयोग मैं अपने निजी सुख और भोग के लिए करूँ, यह मेरा अधिकार नहीं।" —इस तरह वे कहते हैं और सचमुच समाज के एक ट्रस्टी की तरह सँभलकर धन का उपयोग करते हैं। सामाजिक कामों में वे मुक्तहस्त से धन देते हैं और आज के सामाजिक कानून द्वारा मान्यता प्राप्त साधनों से दूर हटकर अनैतिक उपायों द्वारा धनोपार्जन का प्रयत्न नहीं करते।

क्षण-क्षण का पूरा उपयोग करनेवाला ही समय की पाबन्दी भी निभा सकता है। भाईजी का पूरा दिन व्यस्त रहता है। सारा कार्यक्रम बँधा हुआ रहता है। वे किंचित् मात्र समय व्यर्थ नहीं खोते। उनका दिन प्रातः चार बजे प्रारम्भ होता है और रात १० बजे समाप्त होता है। जब तक हम उनके साथ रहे, प्रतिदिन ठीक सात बजे वे अपने हाथ से नाश्ता तैयार करके हमें खिलाते थे। हमें बड़ा सकोच महसूस होता था कि भाईजी हमारे लिए इतने सवेरे नाश्ता तैयार करते हैं, पर भाईजी ने कहा : "आप अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिए जीवन खपा रहे हैं, मैं यदि आपकी थोड़ी-सी सेवा कर लूँ, तो इसमें कौन बड़ी बात है। यह तो मेरा कर्तव्य ही है।"

भाईजी के निरीक्षण में एक भारतीय स्कूल भी चलता है। भाईजी अपने व्यापार-धन्धे से छुट्टी लेकर प्रतिदिन एक घंटा वहाँ पढ़ाते हैं। तेहरान जैसे नगर में उन्होंने भारतीय बालक-बालिकाओं के लिए बहुत ही उत्तम शिक्षा का प्रबन्ध किया है। भाईजी गुरु नानक के सच्चे भक्त हैं और अपने जीवन में गुरु नानक के सिद्धान्तों को उतारने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। वे समाज के एक ऐसे सेवक हैं, जो सेवा के बदले समाज से किसी तरह का प्रतिदान नहीं चाहते, यश नहीं

चाहते। 'सेवा, सेवा के लिए हो' यह उनका जीवन-सूत्र है। उनके जीवन मे सादगी और नम्रता का सुन्दर समन्वय हुआ है।

भाईजी के साथ रहने का हमे अवसर मिला, यह हमारा ही सौभाग्य था। भाईजी कहने लगे कि "आप जैसे युवक अहिसा और शान्ति का मंत्र लेकर निकल पडे है, यही इस बात का प्रमाण है कि अहिसा मे कितनी बडी शक्ति है। भले ही आज ससार मे युद्ध और शस्त्रास्त्रो की होड हो और आपकी बात कोई न सुने, पर आपके प्रयत्न कभी व्यर्थ नही जायेगे।"

शिक्षित किसान के घर पर

●

तेहरान से ४० मील दूर एक गॉव है, कमालाबाद, और कमालाबाद मे ८ लाख वर्गमीटर भूमि का एक बड़ा फार्म है। यद्यपि ईरान के लिए, जहॉ जनसख्या कम और भूमि अधिक है, यह कोई बडा कृषि-फार्म नही, फिर भी हम इसे एक अच्छा, बडा फार्म कह सकते है। इस फार्म को चलानेवाले श्री रजा के साथ हम एक दिन रहे। यह दिन हमारी ईरान-यात्रा का एक स्मरणीय दिन रहेगा।

जब हम श्री रजा से पहली बार मिले, तो हमे यह किसी तरह अनुमान नही हो सकता था कि यह व्यक्ति इस बडे फार्म का मालिक है। तेहरान मे इनका एक बड़ा मकान है और घर पर दो कारे है। इस तरह के धनी व्यक्ति तो बड़ी शान-शौकत के साथ रहना पसन्द करते है, जब कि श्री रजा घुटनो तक का रबड का जूता पहने मिट्टी मे काम कर रहे थे। कीचड के अनेक निशान लगे थे। श्री रजा कहते है : "हर इन्सान को पूरी मेहनत करने के बाद ही खाने का हक है। मिट्टी में काम करना हो या दफ्तर मे, काम तो काम ही है।" कृषि-कालेज से डिप्लोमा लेकर तथा यूरोप और एशिया के अनेक देशो का भ्रमण करने के बाद एक युवक इस दृढता के साथ सुबह से शाम तक कडी मेहनत करता हो, ऐसे उदाहरण बहुत कम ही मिलेगे। श्री रजा ने कहा :

"ईरान के पढ़े-लिखे लोगो मे भयकर वेकारी है, क्योकि वे श्रम करना नहीं चाहते, बल्कि दफ्तरो मे बैठनेवाले बावू बनना चाहते है।" बातचीत के प्रसग मे हम श्री रजा के प्रगतिशील विचारो की सुगन्ध अनुभव कर रहे थे। वे एक किसान है, श्रमिक है, पर गाधी, टालस्टाय और हेमिग्वे की पुस्तको से उनका कमरा सजा है। फारसी गलीचो से श्री रजा को जितना प्यार है, उतना ही इस विचारक-त्रयी की पुस्तको से भी प्यार है। इसीलिए उनका घर इन दोनो की सजावट का एक नमूना है। वे केवल उन किताबो को पढते ही नहीं है, बल्कि अपना और अपने परिवार का जीवन उसी बुनियाद पर खडा कर रहे है। श्री रजा ने हमे बताया कि "तेहरान मे मेरी एक बहुत सुन्दर कोठी है, पर मेरा वहाँ मन नही लगता। बड़े शहर मे विलास और ऐयाशी के वातावरण के बीच अनेक दोष तथा दुर्गुण पैदा होते है, आलस्य बढता है, शान-शौकत बढती है। तेहरान की जिन्दगी नाच, सिनेमा, काफी हाउस और क्लबो के इर्द-गिर्द घूमती है। यह सब मुझे पसन्द नही। बच्चो को भी वहाँ बुरे संस्कार मिलते हैं। इसलिए इतनी दूर आकर जगल मे रहता हूँ, श्रम करता हूँ और अपने परिवार के साथ आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करता हूँ। दिनभर खेती आदि कामो मे व्यस्त रहने से मुझे शहर की याद भी नही आती।"

धर्म के बारे मे भी उनका दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट और सन्तुलित था। उनके ख्याल से भूत, भविष्य और वर्तमान के लिए किसी एक ही नियम को अपरिवर्तनीय और अतिम नही माना जा सकता। मजहब अपरिवर्तनीय बना, इसीलिए वह आज के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मेल नही खाता। उन्होने कहा कि "मै इन्सान हूँ और इन्सानियत के अलावा मेरा कोई मजहब नही।"

श्री रजा की तरह ही श्रीमती रजा भी बहुत प्रगतिशील और मधुर स्वभाव की महिला है। उनके प्रेमपरिपूर्ण व्यवहार और आतिथ्य से हमे ऐसा लग रहा था, मानो यह पूरा परिवार हमारा बहुत पुराना मित्र है।

श्री रजा के एक पुत्र है सईद, दो पुत्रिया है जिनके नाम उन्होने सीमा और शीला रखे है। सस्कृत नाम ! श्री रजा अपनी पुत्र-पुत्रियो का निर्माण अत्यन्त मुक्त, प्राकृतिक और श्रम-परायण वातावरण मे कर रहे है। बच्चो के जीवन मे मानवीय मूल्यो का अवतरण हो, यही उनका प्रयत्न है। श्री रजा अपने बच्चो से बेहद प्यार करते है। वे सही अर्थ मे इन बच्चो के लिए नयी तालीम के शिक्षक है।

श्री रजा ने हमे अपनी शुभ कामना देते हुए कहा : "यदि हम इस धरती पर सुन्दर, बुद्धिमान और स्वस्थ मानव को देखना चाहते है, तो अविलम्ब आणविक प्रयोगो पर प्रतिबन्ध लगाना होगा। जब मै अपने इन तीन सुकुमार बच्चो के भविष्य को आणविक प्रयोगो की अवस्थिति के साथ मिलाकर देखता हूँ, तो मेरा हृदय कॉप उठता है। आणविक अस्त्रो के खिलाफ ऐसे तीव्र जन-आदोलन की जरूरत है, जिससे कि बड़ी शक्तियो को बाध्य होकर इन हथियारो का विसर्जन करना पड़े।"

कार मे चलो न, यहाँ कौन देखता है ?

●

एक ठडी सुबह ! बादलो से भरा हुआ आकाश और शीतलहरी से भरी हुई धरती। हम दो यात्री सिर से पैर तक सारे शरीर को गरम कपडो से ढँककर सड़क पर चल रहे थे। उस ठंडी मे सड़क पर चलनेवाला शायद ही कोई दीख पड़े। पर हम चल रहे थे। जब सॉय-सॉय करती हुई हवा रुकने का नाम नही लेती, तो हम ही क्यो रुके ? इतने मे एक छोटी जर्मन कार का हॉर्न हमारे कान मे पड़ा। हमने देखा कि एक पुरुष और एक स्त्री हमसे पूछ रहे है कि "कहाँ जायेगे ?"

"हम गाजविन जा रहे है, वहाँ से आगे रूस की तरफ जायेगे।" हमारा यह उत्तर सुनकर महिला ने बहुत मधुर स्वर मे कहा : "हम भी गाजविन जा रहे है। बहुत तेज सर्दी है, कार मे बैठ जाइये।"

हमने बताया : "हम भारत से यहाँ तक करीब पचीस सौ मील पैदल चलकर आये है और मास्को तथा वाशिगटन तक पैदल ही जायँगे, ऐसा हमारा प्रण है।"

"ओह, हमने अखबार मे आपके बारे मे पढा था। आप अणुअस्त्रो के विरोधी है और मास्को तथा वाशिगटन जा रहे है।"—पुरुष यह कहते-कहते कार से बाहर निकले।

ये थे श्री रहीमी रजावी। गाजविन शहर के प्रतिष्ठित नागरिक।

श्री रहीमी ने कहा : "आपकी बात ठीक है, पर कार मे चलो न, किसीको पता नही चलेगा। यहाँ कौन देखता है? मै भारत के लोगो से जाकर यह कहूँगा नही कि आपने पदयात्रा भंग कर दी थी। अभी गाजविन पचीस मील दूर है। घटेभर मे पहुँच जायेगे, वरना इस सर्दी मे दो दिन चलना पडेगा!" उनकी बात पर हमे हँसी आयी।

"दो दिन नही, हमे तो दो साल इसी तरह चलना है। फिर किसी देखनेवाले के लिए हम पैदल नही चलते! स्वयं हमने यह निर्णय किया है। यदि हम आपकी कार मे चले, तो हमे कोई रोकनेवाला भी नही। पर जब तक जनता का शान्ति-सन्देश हम रूस और अमेरिका तक नहीं पहुँचायेगे, तब तक यथासम्भव पैदल चलने का हमारा निर्णय है। यह पैदल यात्रा अणुअस्त्रो के विरुद्ध एक सघर्ष है।"

उनसे काफी देर बाते हुई। उन्होने पूछा : "आप लोग कौन है? भारत मे क्या करते है?"

हमने बताया : "हम गाधी के सिपाही है और भारत मे समाज-सेवा का काम करते है।"

श्री रहीमी ने तुरन्त अपनी पत्नी से कहा : "ओह, ये उस गाधी के सिपाही है, जिन गाधी ने भारत की आजादी के लिए सप्ताहो तक अन्न नही खाया। ये किसी तरह कार मे नही चलेगे।"

उनकी पत्नी ने कहा : "अच्छा, कल गाजविन मे आप आयेगे तो हमारे अतिथि रहेगे।"

श्री रहीमी ने कहा : "मुझे तो सर्दी लग रही है। कल आप हमारे घर आयें, वही ठहरे। विस्तार से बाते होगी।"

जब हम श्री रहीमी के सदैव प्रसन्न वातावरण मे रहनेवाले घर पर पहुँचे, तो वे सायकाल की नमाज पढ़ रहे थे। उनका सिर नीचे झुका हुआ था। नमाज मे खलल न पड़े, इस खयाल से हम बाहर बरामदे मे ही खडे हो गये। ज्योंही श्री रहीमी ने सिर ऊपर किया कि खिड़की मे से हम उन्हे दिखाई पडे। न जाने उन्हे कैसा भावोद्रेक हुआ कि नमाज को बीच मे ही छोड़कर वे बाहर आये और उन्होंने हमे अपनी बॉहो मे भर लिया। हमने जब उनसे क्षमा मॉगी कि आपकी नमाज मे हमारे कारण व्यवधान हो गया, तो कहने लगे : "हमारे पैगम्बर ने सत्य पर चलनेवालो को खुदा का बन्दा कहा है। जब हमने पिछले दिन आपसे कहा था कि कार मे हमारे साथ चलिये। किसीको पता नही चलेगा। फिर भी आप कार मे नही आये। आप सत्य पर चलनेवाले है। अतः आपको अतिथि के रूप मे स्वागत देना ही सच्ची नमाज है।"

श्री रहीमी अत्यन्त विनोद-प्रिय और अतिथि-प्रेमी है। वे अपने बालबच्चो को जितना प्यार करते है, उतना ही उनका आदर भी करते है। शहनाज और महनाज नाम की दोनो पुत्रियॉ और श्रीमती रहीमी हमारे आतिथ्य मे जुट गयीं। बादाम, अखरोट, किसमिस, पिस्ता और सेब-सतरो का हमने नाश्ता किया। हमारे लिए कुछ विशिष्ट प्रकार का ईरानी ढग का मास पकाने की योजना बन रही थी। पर हमने बताया कि "हम तो मासाहार से पूर्णतः परहेज करते है।" इस पर सभी घर-वालो को बडा आश्चर्य हुआ। श्री रहीमी अपने बच्चो की तरफ मुखा-तिब होकर कहने लगे : "ये गाधी के सिपाही है। एक पवित्र मिशन के लिए घर-द्वार से दूर कितने कष्ट उठा रहे है! पैदल चलना, पैसा साथ न रखना, सिगरेट नहीं, शराब नहीं, मास नही। ऐसे युवको की भावना और उनका प्रयत्न अवश्य सफल होगा।" फिर हमसे कहने लगे : "आप जैसे नये ढंग के अतिथियो की सेवा का अवसर मेरे लिए एक,

ऐतिहासिक महत्त्व की घटना है। मै हृदय से कामना करता हूँ कि आप अपने उद्देश्य मे सफल हो।"

घर क्या था, स्नेह का दरिया था! दूसरे दिन प्रातः हमारे विदा होने का समय आया, तो श्रीमती रहीमी बोली : "कल शाम को आये और आज सुबह चल दिये! ऐसी भी क्या जल्दी है! कम-से-कम एक दिन तो रहिये।" हमारे बहुत अनुनय-आग्रह के बाद प्यारभरे दिल से श्रीमती रहीमी और पूरे परिवार से आज्ञा मिली। लग रहा था, मानो हम अपनी माँ से और अपने घर से बिदा ले रहे है। हमारी इस माँ ने हमारी जेबो मे सन्तरे और सेब भर दिये। "रास्ते मे कही भूख लग जाय तो!" और तब तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना ही नही रहा, जब करीब १२ बजे पूरे परिवार के साथ श्री रहीमी अपनी कार मे आकर गाजविन से आठ मील दूर मिले। बोले : "आज के रास्ते पर आपके लिए कोई गॉव नही है। दोपहर को आप भोजन कहॉ करेगे, इसकी मुझे चिन्ता हुई। सोचा, क्यो न आपके साथ रास्ते पर ही पिकनिक का आयोजन हो?" हम कुछ न कह सके। लगा, मानो हम अपनत्व और प्यार की गंगा मे पिकनिक कर रहे थे। कहॉ भारत और कहॉ ईरान! पर मानवीय स्नेह की धारा सर्वत्र समान है।

यों बादशाह से मिले

●

"आपको हमारे बादशाह से भेट करने के लिए काला सूट पहनकर आना होगा। यह शाही दरबार की परम्परा है!" ईरान के वजीरे-दरबार ने हमारे पास यह खबर भारतीय दूतावास की मार्फत भिजवायी। हम इससे पहले वजीरे-दरबार से रूबरू मिल चुके थे। उस समय ऐसी कोई बात नही आयी थी। हम अपना सादा कुरता-पाजामा पहनकर ही गये थे। शाह से मिलने के २४ घण्टे पहले जब हमे यह खबर मिली, तो हमने भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव से कहा कि "हम भारत से

पैदल चलकर इस खूबसूरत नगरी तेहरान तक यही कुरता-पाजामा पहन-कर पहुँच गये। हजार-हजार ईरानी जनता से हम इसी वेश मे मिले है। ईरान के बादशाह के दरबार मे भी हम अपनी इसी वेशभूषा मे जायेंगे। बादशाह से मिलने 'हम' जा रहे है, हमारा 'वेश' नही।" हमारी यह बात सुनते ही हमारे पास बैठे एक भारतीय मित्र ने कहा : "आप क्यो चिन्ता करते है, मै आपके लिए और आपके साथी के लिए काले सूट का प्रबन्ध कर दूँगा।"

मैने तुरन्त प्रतिवाद किया : "नही ! सवाल काले सूट के प्रबन्ध का नही। सवाल तो विचारो और सिद्धान्तो का है। हम एक भी पैसा जेब मे रखे बिना दिल्ली से यहाँ तक पहुँच गये। हमारा यह भी निश्चय है कि हम अपनी पूरी शान्ति-यात्रा पैदल और बिना पैसे के करेंगे। फिर हम बादशाह से मिलने के लिए आपसे ब्लैक सूट खरीदने के लिए कहे, क्या यह उचित है ?" मेरे साथी प्रभाकर ने भी कहा : "बापू जब गोलमेज कान्फ्रेन्स मे भाग लेने लन्दन गये थे, तो अपनी धोती और चद्दर मे ही गये थे !" आखिर दूतावास के सचिव को भी, जो बहुत खूबसूरत सूट पहने हुए थे, हमारी बात ने प्रभावित किया। वे बोले : "आप लोग ठीक कहते है। आप जो कपडे भारत मे पहनते है, वही कपडे पहनकर बादशाह से मिले, यह बात वजीरे-दरबार को स्वीकार होनी चाहिए।"

हमने अपने मन मे यह तय किया था कि यदि दरबार की तहजीब के नाम पर हमे फिर भी काले सूट मे ही आने के लिए कहा जायगा, तो हम शाह से मिलने का विचार ही छोड देंगे, लेकिन किसीसे सूट की भीख नही माँगेंगे। दूतावास के सचिव ने सारी बात वजीरे-दरबार के सामने रखी। अजीब मामला था। इस तरह की बात शायद ही पहले कभी उठी हो। बहुत सोच-विचार के बाद हमे यह सूचना दी गयी कि हम अपना कुरता-पाजामा पहनकर बादशाह से मुलाकात कर सकेंगे। हमारे मेजबान ने उसी दिन हमारे कपडे 'लाण्ड्री' मे धुलवाये। मेरा

कुरता तो कमर के पास से थोडा फट भी गया था, पर मेरे पास वही एक कुरता था। फटा कुरता पहनकर मिलने जाना अच्छा नहीं लग रहा था, पर मेरे सामने तो मजबूरी थी।

ईरान के गरीब लोगो की झोपड़ियो मे हम अपनी राते गुजारते थे। हमने थोडा-थोडा फारसी बोलना भी सीख लिया था। उमर खैयाम, शेख सादी और फिरदौसी जैसे कवियो को जन्म देनेवाली ईरान की धरती ने हमे बड़ी प्रेरणा दी। फारसी गलीचो की कला ने हमारे मन मे चेतना का सचार किया। इस काव्य भूमि मे स्वय ईरान के शाह ने अपने दरबारी नियमो के प्रतिकूल कुरता-पाजामा पहनकर आनेवाले हम दो भारतीय युवको का अपने महल मे स्वागत किया।

"इस जमाने मे भी आप जैसे जवान एक ऊँचे मक्सद को लेकर दुनिया की पैदल यात्रा कर रहे है, यह बड़ी बात है। इसलिए बहुत व्यस्त होते हुए भी मै आप लोगो से मिलने के प्रसंग को टाल नही सका। आप एटमी हथियारो के खिलाफ और निःशस्त्रीकरण के लिए जो काम कर रहे है, उसमे मै और मेरा पूरा देश हमेशा आपके साथ है।" शाह ने बहुत धीमे शब्दो मे, पर मुस्कराते हुए हमे अपनी शुभ कामना दी। उसके बाद उन्होने हमारी यात्रा के अनुभव सुने। खासतौर से ईरान मे हमारी यात्रा के लिए किसी भी तरह का सहयोग चाहिए, तो वह जुटाने की तैयारी बतायी। हमे शाह के व्यक्तित्व ने प्रभावित किया। उनके किसी भी तौर-तरीके से पलभर को भी यह नही टपकता था कि वे एक शाह है। उन्होने कहा कि हमे भूमि-सुधार तथा अन्य सामाजिक प्रगति के कामो मे चाहे जितनी दिक्कते हो, पर भूमि का बँटवारा युग की माँग है। और इसलिए मै अपने देश मे यह सुधार लागू करने के लिए कटिबद्ध हूँ।" उन्होने भारत मे चलनेवाले भूदान-ग्रामदान आन्दोलन के बारे मे जानने की उत्सुकता प्रकट की। बोले : "विनोबाजी एक जबरदस्त काम कर रहे है। उनके इस काम ने हमे बड़ी प्रेरणा

दी है। मैंने अपनी हजारो एकड जमीन का बँटवारा उन लोगो मे कर दिया, जो उस पर काम करते थे।"

हमारी इस पूरी बातचीत मे कुरता-पाजामा कही बाधा पैदा नही कर रहा था। कुरता-पाजामा पहननेवाले हमारे बहुत-से मित्र जब विदेश जाते है, तो नये सूट सिलवाने मे सैकडो रुपया खर्च करते है। पर हमने यह अनुभव किया कि भले ही कुरता-पाजामा सूट की भाँति बहुत 'भाग्य-शाली' न हो, पर बुरा नही है। मास्को, बर्लिन, पेरिस, लन्दन, न्यूयार्क, टोकियो आदि शहरो की सडको पर कुरता-पाजामा पहनकर धडल्ले से हम घूमते थे। वहाँ के लोग इस वेशभूषा को बहुत पसन्द करते थे। हमारा अपना ही 'हीन-भाव' हमे सूट की तरफ ले जाता है। मई से अक्तूबर तक एक ऊनी कुरता और उस पर बण्डी (जाकिट) पहनकर यूरोप मे अच्छी तरह काम चलता है। विशेष ठण्डी नही रहती। नवम्बर से अप्रैल तक ओवरकोट जरूरी है। ओवरकोट के नीचे कुरता-पाजामा (ऊनी) कोई तकलीफ नही देता!

यो रूस का वीसा मिला

●

ईरान के शाह से मिलने के बाद हमारा लक्ष्य था रूस की यात्रा करने का, पर रूस का वीसा ? वह हमारे पास नही था। विदेशो की यात्रा पर जाने के लिए अपनी सरकार से 'पासपोर्ट' लेना पडता है और जिन-जिन देशो मे जाना हो, उन देशो की सरकारो से वीसा लेना पड़ता है। जब से हम पदयात्रा पर निकले, हमारे सामने यह प्रश्न खडा था। दिल्ली से हमने केवल पाकिस्तान, अफगानिस्तान और ईरान का वीसा प्राप्त किया था। पर रूस का वीसा मिलना क्या आसान है खासतौर से हमे, जब कि हम रूस की जनता के बीच अणु-अस्त्र-नीति के विरोध मे प्रचार करने के लिए वीसा माँग रहे थे। एक कम्युनिस्ट देश जिस पर तथाकथित 'लौह-पर्दा' (आयरन कर्टेन) लगा है, क्या हमे गाँव-गाँव

मे पैदल घूमने और अहिंसा तथा निःशस्त्रीकरण के अपने विचारो का प्रचार करने की अनुमति देगा ? हमारा मस्तिष्क सन्देहो से भरा था। पर इन सब सन्देहो के ऊपर खडा था दृढ निश्चय और आत्म-विश्वास। हर कीमत पर हमे रूस की पैदल यात्रा करनी है।

पहले हमने सोचा था कि काबुल से हिन्दूकुश पर्वत लॉघते हुए हम ताशकन्द के पास सोवियत सघ मे प्रवेश करे। ताशकन्द से मास्को की पदयात्रा बहुत लम्बी होती। जब हम काबुल मे सोवियत दूतावास मे वीसा के लिए गये तो हमे कुछ निराशाजनक उत्तर मिला। हमने तत्का-लीन काबुल स्थित भारतीय राजदूत श्री जगन्नाथ धामीजा से बात की। श्री धामीजा को हमारी यात्रा के कार्यक्रम मे बेहद अभिरुचि थी। उन्होने रूसी राजदूत से खुद बात की। दोनो राजदूतो की बातचीत के परिणामस्वरूप ताशकन्द का रास्ता न चुनकर ईरान होते हुए सोवियत सघ मे प्रवेश करने की हमे सलाह दी गयी। हालॉकि इस सलाह के कारण हमे कई सौ मील का रास्ता अधिक चलना पड़ा। इस कारण हमे ईरान मे लम्बा समय बिताने का अवसर भी मिला। परन्तु हमारे मन मे यह सवाल बराबर बना ही रहा कि कही हमे यो ही टाल तो नही दिया गया है। हमे काबुल मे वीसा न देकर तेहरान मे देने का आश्वा-सन तो मिला, फिर भी चित्र साफ नही था।

तेहरान का सोवियत दूतावास एक बडे गढ के समान है। दूतावास के चारो ओर बडा परकोटा बना हुआ है। अफगानिस्तान के पहाडो और ईरान के रेगिस्तानो की पैदल यात्रा हमारे लिए ज्यादा आसान थी, पर इस परकोटे के अन्दर रहनेवाले सोवियत अधिकारियो से वीसा प्राप्त करना कही कठिन प्रतीत हो रहा था। परन्तु हम जिन रूसी अधिकारी महोदय से मिले, उन्होने पहली ही मुलाकात मे हमे बेहद प्रभावित किया। "आप लोगो ने रूस की यात्रा के लिए जो समय चुना है, वह भयकर सर्दी और बर्फीली ऑधी के लिए मशहूर है। जनवरी से अप्रैल तक का समय सब से खतरनाक समय है। ऐसे मौसम मे पैदल यात्रा

करने की इजाजत किसी हालत मे नही दी जा सकती।" एक रूसी युवक ने शुद्ध हिन्दी मे अपने अधिकारी की बात का अनुवाद किया। हमे इस युवक ने आश्चर्य मे डाल दिया। तेहरान स्थित सोवियत दूतावास मे ऐसी अच्छी हिन्दी जाननेवाला दुभाषिया !

"आप सर्दी की चिन्ता न करे। हमारे पास कपडो का पूरा प्रबन्ध है"—हमने कहा।

"पूरा प्रबन्ध ?" अधिकारी ने रूसी वोदका (मदिरा) का प्याला हमारे सामने उपस्थित करते हुए पूछा। जब हमने वोदका न पीने की बात उन्हे समझायी तब तो वे और भी आश्चर्य से बोले : "बिना वोदका पिये क्या आप रूसी सर्दी का मुकाबला करना चाहते है ? यह असम्भव है ! जिस बर्फ मे नेपोलियन और हिटलर की सेना ने भी घुटने टेक दिये, वहाँ आपकी क्या चलेगी ?" इस तरह हमारी बहस चलती रही। हम अपनी झोली मे निराशा लेकर वापस लौट आये। समस्या कठिन थी। पर रूसी अधिकारी के मीठे व्यवहार ने हमारा उत्साह ठण्डा नही होने दिया। हमने दूसरे दिन फिर सोवियत दूतावास जाकर अधिकारी से मुलाकात की। फिर वही बर्फ और सर्दी का पुराना तर्क सुनने को मिला। किन्तु अधिकारी ने दुभाषिया युवक से कहा : "कार बुलाओ। भारतीय दूतावास चलेगे।" मै कुछ समझा नही। मेरे साथी प्रभाकर ने मुझसे कहा : "पता नही, भारतीय अधिकारी से क्या पूछेगे !' खैर, हम सब भारतीय दूतावास पहुँचे और प्रथम सचिव श्री चन्द्रभान से मिले।

"ये दो युवक, जिनके पास भारतीय पासपोर्ट है, ऐसी भयंकर सर्दी के मौसम मे रूस की यात्रा करना चाहते है, निःशस्त्रीकरण का सन्देश लेकर। आपकी क्या सलाह है ?" रूसी अधिकारी ने सीधा सवाल किया, भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव से।

"हम इतना जानते है कि ये दोनो दिल्ली से पैदल चलकर यहाँ तक पहुँच गये है। इनके पास केवल भारतीय पासपोर्ट ही नही, बल्कि प० नेहरू और डॉ० राधाकृष्णन की चिट्ठियाँ भी है। परन्तु भारत सरकार

इनके विचारो के लिए, इनकी निःशस्त्रीकरण आन्दोलन सम्बन्धी प्रवृत्तियो के लिए कतई जिम्मेदार नहीं है। यह इनका व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है। वीसा देना न देना आप पर निर्भर है। यदि आप वीसा दे और ये लोग रूस की यात्रा करते समय किसी दैहिक कष्ट मे हो, तो हमारा मास्कोस्थित दूतावास इनकी मदद अवश्य करेगा।" भारतीय अधिकारी ने अपनी स्थिति स्पष्ट की।

हम वापस सोवियत दूतावास आये। "अगर आप इस मौसम मे रूस की यात्रा करने पर तुले ही हुए है, तो मै २० दिन का वीसा दे देता हूँ। पर गॉव-गॉव मे पैदल चलने की आज्ञा नहीं मिलेगी।" रूसी अधिकारी ने नया प्रस्ताव उपस्थित किया। "आप मास्को, लेनिनग्राड आदि शहरो मे जाइये। निश्चय ही किसी-न-किसी वाहन का उपयोग आपको करना होगा। आप जिस नि शस्त्रीकरण की बात लोगो तक पहुँचाना चाहते है, उसके लिए २० दिन काफी है। आप इस अर्से मे जितने चाहे, उतने भाषण कर सकते है।" रूसी अधिकारी ने अपनी बात जारी रखी। "यह २० दिन का वीसा भी तब मिलेगा, जब आप यहाँ पर हमारी यात्रा कम्पनी 'इण्टूरिस्ट' के प्रतिनिधि के पास यात्रा का पूरा खर्च जमा करवाकर रसीदे प्राप्त कर लेगे।"

"कृपया हमे ठीक से समझने का कष्ट कीजिये" हमने नम्रतापूर्वक पर स्पष्ट शब्दो मे अपनी बात रखी। "पहली बात, हम 'टूरिस्ट' नही है। इसलिए 'इण्टूरिस्ट' से हमारा मतलब नही। दूसरी बात, हम पैदल और केवल पैदल ही चलेगे। जब तक दुनिया मे एटम बम कायम है, हम अपनी इस पदयात्रा द्वारा उन बमो के खिलाफ अपना प्रदर्शन जारी रखेगे। हॉ, अगर आपकी सरकार हमे यह वचन दे कि इसके बाद सोवियत संघ सभी एटमी हथियारो को नष्ट कर देगा, तो हम अपनी पदयात्रा बन्द करने को तैयार है और बिना सोवियत संघ की यात्रा किये, सीधे हम अमेरिका, फ्रान्स और ग्रेट ब्रिटेन का रास्ता पकड़ेगे। तीसरी बात, हम दिल्ली मे गाधीजी की समाधि से यह निश्चय करके चले हैं कि

हमारी सम्पूर्ण यात्रा जनाधारित चलेगी। हम यहाँ तक बिना एक भी पैसे के पहुँचे है। सर्वत्र लोगो के आतिथ्य पर रहे है। अफगानिस्तान के दुरूह पहाडो मे बसनेवाले गरीब पठानो की झोपड़ियो मे भी हमने आतिथ्य पाया है और वही आतिथ्य रूसी जनता से भी मिलेगा, यह हमारा भरोसा है।" हमने अपनी बात मे अन्तिम वाक्य यह भी जोड़ा कि "हम सम्पूर्ण विश्व को एक ही मानते है। हम विश्व-नागरिक है। राष्ट्रीय सीमाओ मे हमारी श्रद्धा नही। पासपोर्ट, वीसा भी विश्व की निर्बाध एकता मे बाधक है। उनपर हम ज्यादा भरोसा नही रखते। हम आपसे वीसा प्राप्त करके, आपके नियमो को सन्तुष्ट मात्र करना चाहते है। किन्तु हमारी रूस-यात्रा का निर्णय अपरिवर्तनीय है।"

हमारे इस लम्बे वक्तव्य को सुनकर रूसी अधिकारी के चेहरे पर मुस्कान बिछ गयी। वे बोले : "युवको, आप दोनो गान्धी के देश से आये है। भारत के युवको मे ही ऐसी बिना पैसे की विश्वयात्रा करने का साहस हो सकता है। वह भी पैदल और निःशस्त्रीकरण के सन्देश के साथ। रूस, शान्ति के लिए काम करनेवाले आप जैसे साहसी युवको का सदैव स्वागत करता है। पर हमे कुछ औपचारिक नियमो का पालन करना होता है। मेरे सामने ऐसा प्रश्न शायद पहली ही बार आया है। खैर, मुझे थोडा समय दीजिये और कल आने की कृपा कीजिये।"

हम दूसरे दिन पहुँचे। वीसा अधिकारी ने अपने सहायक से कहा : "इनका मामला बिल्कुल अपवादस्वरूप है। इन्हे वीसा देने का हमने निश्चय किया है।" सहायक अधिकारी ने रजिस्टर मे हमारे पासपोर्ट का नम्बर लिखा और हमारे पासपोर्ट मे वीसा की मुहर लगा दी। न हमे कोई फार्म भरना पडा, न फोटो की जरूरत पड़ी। हिन्दी बोलने-वाले दुभाषिया ने कहा : "आप लेनिन के देश मे जा रहे है। लेनिन की जीवन-कथा का हिन्दी अनुवाद आपको भेंट कर रहा हूँ। आपकी यात्रा सुखद हो।" यो हम चार महीने की पदयात्रा के लिए वीसा लेकर सोवियत दूतावास से विदा हुए।

१०० दिनों की यात्रा

इस तरह उमर खैयाम और फिरदौसी की धरती पर हमने १०० दिन की यात्रा का खूब आनन्द उठाया। उमर खैयाम की समाधि पर अपनी श्रद्धा के फूल चढाने के लिए हम मशेद से नैशाबूर गये थे। हम भयंकर रेगिस्तानी इलाको को पार करते हुए ईरान के उत्तरी हिस्से को पूरी तरह देख सके। परन्तु शिराज तथा इस्फहान जैसे ऐतिहासिक स्थानों को देखने के लिए हम नहीं जा सके। ईरान मे शहरो की सडके
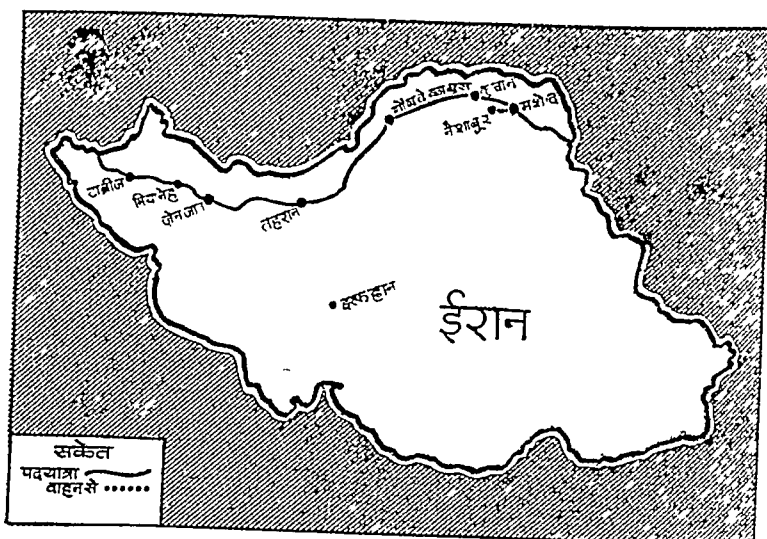
तो पक्की है, पर बाकी की सडके कच्ची है। इसलिए कारो के या ट्रको के आने-जाने के समय पैदल चलनेवालो को धूलि-स्नान हो जाता है। परन्तु कारो मे जाने-आनेवाले अनेक यात्री सुविधा के साथ यात्रा कर सकते है। दिल्ली से लेकर काबुल तक खूब अच्छी सडके है। काबुल से तेहरान और टाब्रीज तक की सड़के कच्ची पर मोटर-यातायात के लायक है। रूस की सीमा से मास्को तक और मास्को के बाद तो पूरे यूरोप मे कोई दिक्कत है ही नही। अगर कोई चाहे तो भारत से चलकर बस अथवा रेल द्वारा एशिया और यूरोप का भ्रमण आसानी से कर सकता है। इन सड़कों ने देशो की दूरी को निश्चय ही कम कर दिया है।
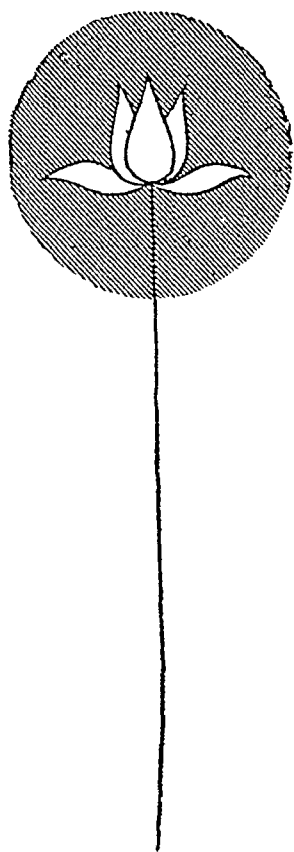
श्रमिकों की क्रांति के देश

सोवियत संघ में

पहली जनवरी !

नये वर्ष का नया सवेरा ! एरास नदी के तट पर बसा हुआ जुल्फा नगर !! सात महीने मे सत्ताईस सौ दस मील की थका देनेवाली पदयात्रा के बावजूद हम एक नयी स्फूर्ति, नयी ताजगी और नया आकर्षण अनुभव कर रहे थे। सोवियत जुल्फा के रेल्वे स्टेशन से इजन की तेज आवाज सुनाई दी। मानो सोवियत धरती शान्ति-यात्रियो को आमत्रण दे रही हो। इस देश के बारे मे कभी जब किताबो मे पढा करते थे, तब सपना लगता था कि कभी उस देश मे जाने का अवसर भी आयेगा। टॉलस्टॉय द्वारा लिखित 'युद्ध और शान्ति' तथा 'हम करे क्या ?' पुस्तके पढते समय मन मे बडी गुदगुदी होती थी कि कभी इस महान् लेखक को पैदा करनेवाली धरती की हम यात्रा कर सकेगे। गोर्की, चेखव, पुश्किन, दोस्तोव्स्की आदि अनेक लेखको ने अप्रत्यक्ष रूप से इस भूमि को देखने का हमे निमत्रण दिया था। मार्क्स, एगेल्स और लेनिन की क्रान्तिकारी विचारधारा को क्रियान्वित करनेवाले सोवियत-संघ की सीमा पर अपने आपको पाकर यदि हमारा मन आकर्षण से भर जाय तो इसमे आश्चर्य भी क्या ?

हाथो मे दूरबीन और पीठ पर बन्दूक लिये सीमा के पहरेदार सैनिक दोनो ओर बडी सजगता से खडे थे। ईरान की सीमा से सूचना-ध्वज लहराया गया। सूचना-ध्वज देखकर सोवियत सेना के अधिकारी, जहाँ द्वार बन्द था, उस सीमा पर आये। सोवियत सीमा का द्वार खुला और दूसरे ही क्षण हमने अपने आपको एक नये देश मे पाया। एक ऐसे देश मे, जो दूसरे देशो से सर्वथा भिन्न है। जहाँ की समाज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था अलग तरह की और नयी समाजवादी प्रणाली पर आधारित है। हमे इस भिन्नता का दर्शन जगह-जगह पर हो रहा था। खास तौर से हमारे लिए इस देश मे एक विशिष्ट प्रकार की भिन्नता थी। अब तक हमने जिन देशो की यात्रा की, उनके पास आणविक हथियार नहीं थे। वे छोटे और अल्प-विकसित देश युद्ध की तैयारी के विरोध मे और आणविक अस्त्रो के खिलाफ हमारे साथ सहमति प्रकट करे, यह स्वाभाविक ही था। सोवियत सघ अणुशक्ति-सम्पन्न बडा देश है। इसलिए इस देश मे हमारे प्रति जनता का और सरकार का क्या रुख रहता है, यह हमारे लिए विशेष महत्त्व की बात थी।

मैत्री-परिषद् और शान्ति-परिषद् के अनेक कार्यकर्ताओ ने हमारा स्वागत किया। आरमीनियन मैत्री-परिषद् के उपाध्यक्ष श्री मारथीरोश आन्द्रोनिक ने स्वागत-भोज की टेबिल पर हमारी यात्रा और हमारे शान्ति-मिशन का पूरा समर्थन करते हुए कहा : "हमारे लिए यह आश्चर्य और प्रसन्नता की बात है कि लगातार सात महीने पैदल चलकर, गरमी, सर्दी, वर्षा, भूख, जगल, पहाड़ आदि के साथ सघर्ष करते हुए आप शान्ति के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर रहे है और वही मिशन लेकर आप इस देश मे आये है। सोवियत सघ पिछले महायुद्ध मे शामिल था और वह युद्ध के भयंकर परिणामो से अच्छी तरह परिचित है। युद्ध के लिए किये जानेवाले प्रचार के खिलाफ सबसे पहले हमने आवाज उठायी थी और आज हम शान्ति-स्थापना के लिए हर तरह का सघर्ष करने मे आपके साथ है। जो युद्ध चाहता है, वह या तो मूर्ख है या

पागल है। भारत मे गाधी जैसे शान्ति के मसीहा हुए। आप उसी देश से आये है। नये वर्ष के इस शुभ अवसर पर हम भारत के दो युवक शान्ति-वादियो का स्वागत करते है।"

सैनिक और शांति

इस स्वागत-भोज मे सीमा की सुरक्षा के लिए तैनात सेना के कमाडर भी थे। उन्होने हमारे स्वागत मे कहा कि "किसी जमाने मे हमारे देश का एक यात्री अफनासी निकितन पैदल भारत गया था। अब भारत के दो यात्री शाति का पैगाम लेकर सोवियत धरती पर आये है। मै एक सैनिक कमाडर होकर भी उनका स्वागत करता हूँ। ऊपर से देखने मे किसी शाति-यात्री का स्वागत एक कमाडर करे, यह बड़ी असगत बात लगती है। क्योकि ये यात्री बन्दूक के, शस्त्रो के, बमो के और सेना के विरोधी है, जब कि मै इन चीजो को ही सुरक्षा के साधन के रूप मे इस्तेमाल करता हूँ। पर मुझे यह कहने मे कोई संकोच नहीं है कि ज्यो-ज्यो मानव प्रगति करेगा, त्यो-त्यो शस्त्रो द्वारा अपनी रक्षा करना व्यर्थ तथा पाशविक होता जायगा। देशो की सीमाएँ टूटकर विश्व-एकता की तरफ हम बढ़ेगे। सेना और बमो की जरूरत कम होती जायगी। उस समय हम भी इस सैनिक वर्दी को छोड़कर शाति की उपासना करेगे। इसी भावना से मै इन शाति-यात्रियो का स्वागत करता हूँ।" उस सैनिक कमाडर की बात सुनकर मेरा हृदय गद्-गद् हो गया। मैने अपने जीवन मे पहली बार किसी सैनिक के मुँह से ऐसी बाते सुनी थी।

हमने सोवियत सघ मे पहली जनवरी को प्रवेश तो कर लिया, परन्तु हमारी व्यवस्थित पदयात्रा ५ जनवरी से ही प्रारम्भ हुई। जुल्फा से येरेवान तक वर्जित-सीमा-क्षेत्र होने से १२५ मील हम कार मे आये और तीन दिन येरेवान मे रहे। येरेवान आरमीनियन रिपब्लिक की राजधानी

है, और बड़ा औद्योगिक नगर है। स्वाभाविक रंग के पत्थरो से बने हुए सुन्दर भवनो का तेजी के साथ निर्माण हो रहा है। प्राचीन आरमीनियन साहित्य की अनेक कलापूर्ण पाण्डुलिपियों को देखने के लिए हम यहाँ की प्रसिद्ध सस्था 'मदिनादारान' मे गये। आरमीनियन लिपि के आविष्कारक श्री मेसरोप मास्टोलिय सोलह सौ वर्ष पहले हुए थे। उस समय से लेकर आरमीनियन साहित्य के विकास की पूरी कहानी हमे इस सस्था मे समझने को मिली। हमने देखा कि जब आरमीनिया मे प्रकाशन की व्यवस्था नही थी, तब इस भाषा के साहित्य का प्रकाशन भारत मे हुआ करता था। मद्रास मे प्रकाशित एक पुस्तक हमने देखी। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत के साथ इस देश का कितना पुराना सम्बन्ध है। कलकत्ता जैसे शहरो मे 'आरमीनिया स्ट्रीट' का होना, इस बात का सबूत है। येरेवान की अन्य अनेक संस्थाएँ हमने देखी। यहाँ के साहित्यिको से, युवको से तथा मैत्री-परिषद् और शान्ति-परिषद् के सदस्यो से हम मिले।

आरमीनिया की हमारी यात्रा अविस्मरणीय है। आरमीनिया के एक ओर 'अरारोट' पर्वत-शिखर है। यह वही 'अरारोट' है, जिसकी कहानी बाइबिल मे हमने पढी थी। दूसरी तरफ काकेशस की ऊँची चोटियाँ है। इसके बीच फैला हुआ यह सुन्दर मनोहारी प्रदेश अगूरो, सेबो और अन्य फलो से भरा है। हर किसान के घर मे अपने अगूर है और अपनी ही मदिरा। दसियो मदिरा-घट, अन्न, मास आदि सामग्रियों का ये किसान इसलिए सग्रह करके रखते है, ताकि जाड़ो मे जब चारो ओर बर्फ ही बर्फ फैल जाय, कुछ भी उत्पादन न हो, बाहर अधिक आना-जाना भी सम्भव न हो, तब घर मे बैठे आराम से कई महीने खा-पी सके। लकडी के बने हुए मकानो के नीचे तहखाने होते है और वहीं पर यह सामग्री सुरक्षित रहती है। हम साधारण जन-जीवन से परिचित होने के लिए ऐसे तहखानो मे भी गये। हम जिन दिनो आरमीनिया की यात्रा कर रहे थे, वह जनवरी का सर्द महीना था। धरती ने, पेडो ने

और मकानो ने सफेद बर्फ से शृंगार कर रखा था। हर घर को बडी-बडी बुखरियो से गरम करके रखा जाता था।

आरमीनिया और आजरबाईजान रिपब्लिक की यात्रा के बाद जोर्जिया रिपब्लिक मे हमारी यात्रा चली। जोर्जिया बहुत सुन्दर और सम्पन्न रिपब्लिक है। काकेशस की पर्वत-श्रेणियो तथा काले सागर की उत्ताल लहरो के बीच फैले हुए इस प्रान्त ने ग्यारहवी सदी मे शोता रुस्तावेली जैसे महान् कवि को पैदा किया और अठारहवी सदी मे स्टालिन, चोल्कित्ज आदि अनेक अद्वितीय क्रान्तिकारियो को पैदा किया, जिन्होने पूँजीवादी समाज-व्यवस्था से जबरदस्त संघर्ष किया और शोषण के आधार पर खड़े महलो की बुनियादे खोखली कर दी। कूरा नदी के तट पर बसी हुई जोर्जिया की राजधानी त्बीलीसी मे हम तीन दिन रहे और वहाँ की अनेक सस्थाएँ हमने देखी। शहर के अलावा गाँवो मे हमे वास्तविक जीवन के दर्शन करने का अवसर मिलता था। लोगो का रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज आदि देखने और समझने का मौका मिलता था। हम इन गाँवो मे कभी कलेक्टिव-फार्म के अध्यक्ष के घर ठहरते, कभी कम्युनिस्ट पार्टी के मत्री के घर ठहरते, कभी किसी शिक्षक या किसान के घर ठहरते और गहराई से उनके जीवन का और उनके विचारो का अध्ययन करते थे।

हमारी पदयात्रा जेट और स्पुतनिक विमानो का निर्माण करनेवाले देश मे चलने से मन मे कई तरह की बाते उठती थी। एक ओर गति का धीमापन चरमोत्कर्ष पर तथा दूसरी ओर गति की तीव्रता चरमोत्कर्ष पर। शान्ति का मन्त्र लेकर चलनेवाले हमारे जैसे यात्रियो के लिए धीमी गति ही अधिक लाभप्रद सिद्ध हो रही थी। शान्ति-परिषद् के केन्द्रीय कार्यालय, मास्को से टेलिफोन पर हमे यह सन्देश मिला कि "सोवियत रूस की भयंकर तथा ससार प्रसिद्ध सर्दी मे पदयात्रा करना बहुत कष्ट-दायक होगा। आप किसी तरह की चिन्ता न करे। सारा प्रबन्ध और सारा खर्च शान्ति-परिषद् करेगी। आप विमान द्वारा मास्को आ जायॅ।"

पर यदि हम विमान द्वारा सीधे मास्को पहुँच जाते, तो जिन हजारो लोगो से हम प्रति दिन मिलते थे और उनका शान्ति-सन्देश प्राप्त करते थे, वह कैसे मिलता ? इसलिए हमने यह जानते हुए भी कि रूस की सर्दी बहुत भयकर होती है, पैदल चलने का अपना निश्चय ही दृढ रखा। शान्ति-परिषद् हमारी यात्रा का पूरा प्रबन्ध कर रही थी और इस पद-यात्रा द्वारा शान्ति का वातावरण निर्माण करने मे अधिक-से-अधिक उपयोग हो, इस ढंग से उसने यात्रा का संयोजन किया था। हर जिले मे शान्ति-परिषद् के प्रतिनिधि है। वे प्रतिनिधि अपने जिले मे हमारे साथ रहते थे और अधिक-से-अधिक जनता हमारे सम्पर्क मे आ सके, इसका आयोजन करते थे। आरमीनियन, जोर्जियन और रशियन अखबारो और रेडियो द्वारा प्रचार हो जाने से आम जनता को हमारी यात्रा के बारे मे पूरी जानकारी थी। हम जब अपने पड़ाव पर पहुँचते, तो कभी सैकडो और कभी हजारो लोग हमे घेर लेते थे। छोटे गॉवो मे तो पूरा-का-पूरा गॉव, विदेशी मेहमानो को देखने और उनका स्वागत करने के लिए उमड पड़ता था। सडक पर जब हम चलते होते, तो कारवाले, ट्रकवाले, बसवाले लोग बीच मे रुककर हमे बधाई देते। जब हम किसी स्कूल के पास से गुजरते, तो सारे विद्यार्थी क्षणभर मे एकत्र हो जाते और १०-१५ मिनट के लिए हमे रोक लेते। कारखाने के सामने से जब हम गुजरते, तो मजदूर लोग एकत्र होकर हमसे कुछ देर बात-चीत करते। जब हम किसी बड़े गॉव से गुजरते, तो सैकड़ो लोग एकत्र होकर कुछ देर हमारा भाषण सुनते। इस प्रकार गॉव-गॉव मे, घर-घर मे और सडको पर, चौराहो पर हम अपनी बात सुनाते थे और लोग "मिर ! मिर !" यानी 'शान्ति', 'शान्ति' के नारे लगाते थे। एक पडाव से दूसरे पडाव तक कई बार कुछ युवक या कुछ युवतियॉ हमारे साथ आती। वे हमे रूसी भाषा सिखाती। रूसी गीत सिखाती और हमसे हिन्दी गीत सुनती थी।

हमने देखा कि मजहब, पूँजी, भगवान् आदि बन्धनो को तोडकर सोवियत देश मे मानवीय-श्रम की प्रतिष्ठा हुई है और उसके आधार पर

दिल्ली
शांति
निशस्त्रीकरण

वारसॉ

बर्लिन
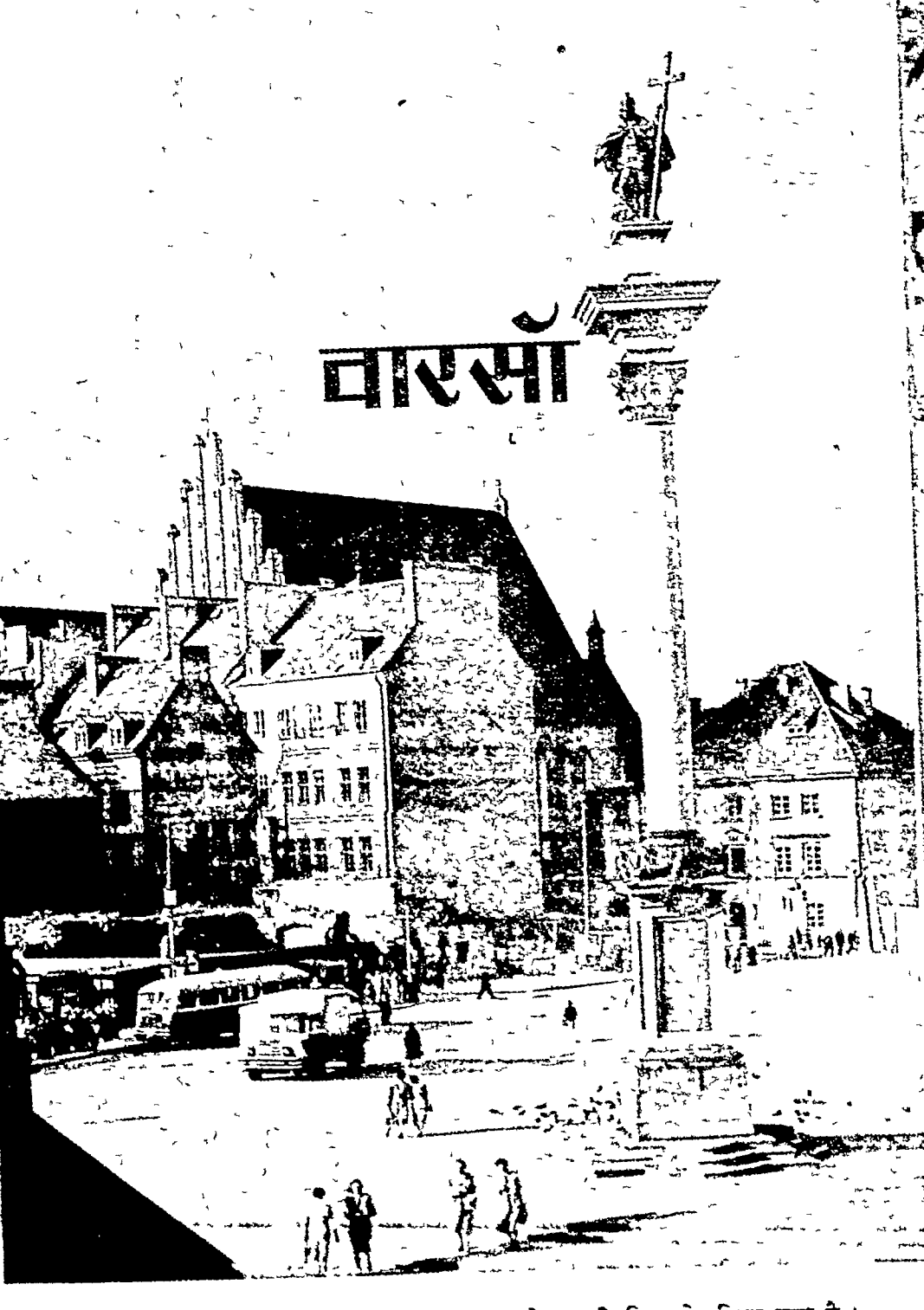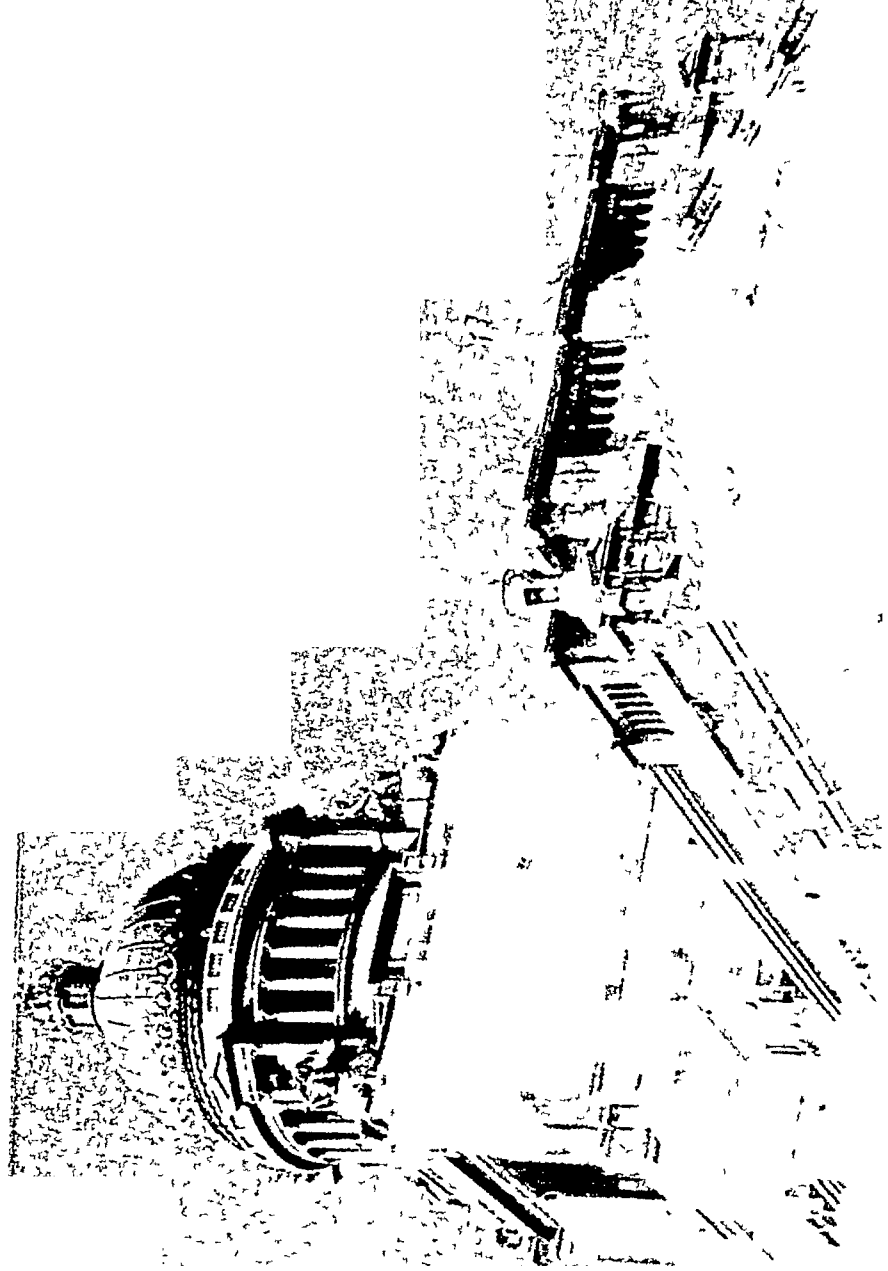
पेरिस के मध्यमे सुन्दर, सुहावनी, सरिता : सेन ।
किनारे पर विश्व-विश्रुत एव अद्भुत स्थापत्य सम्पन्न कैथिड्रल नोट्रदाम ।

पेरिस मे अणुशस्त्र-विरोधी प्रदर्शन के पूर्व पत्रकार गोप्ठी में ।
बीचमें हैं : फ्रास के कर्मठ शातिवादी, जो पिरोने ।

एक जाग्रत तथा सुखी समाज का निर्माण हो रहा है। साथ ही युद्ध के खिलाफ यहाँ एक जबर्दस्त हवा है। हर तरफ से शान्ति के समर्थन मे दृढ़ आवाज सुनाई पडती है। यदि हम किसीके हाथ मे बँधी घडी पर देखते, तो पाते थे—मिर! (शाति) यदि हम किसी बस या ट्रक पर नजर डालते, तो वहाँ भी पाते थे—मिर! मिर! यदि हम किसी गाँव के प्रवेश-द्वार पर लिखी पक्तियाँ पढते, तो वहाँ भी हमे मिर! मिर! ही लिखा मिलता था। इस तरह वहाँ के जन-मानस मे युद्ध के प्रति घृणा है।

काले सागर के किनारे हम बढ रहे थे। सोवियत-सघ की पूरी धरती पर स्वास्थ्य, सौन्दर्य और बहार के स्थानो मे काले सागर का यह कमनीय किनारा अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। जब सोवियत-धरती का कण-कण श्वेत, शीतल बर्फ से ढँक जाता है, पेड़-पौधे शान्त और निर्जीव बनकर वसन्त के आगमन की प्रतीक्षा करते है, जन-जीवन का उल्लास, प्रमोद बर्फ के साथ खेलना ही बन जाता है, खेती-बाड़ी के काम से मुक्त होकर लोग बन्द कमरो मे बुखारी के पास दुबके बैठे रहते है, तब भी काले सागर के इस तट पर सारा जीवन-क्रम वैसा ही चलता रहता है, मानो इस देश मे न कही बर्फ है, न कही भयंकर सर्दी है। बस, सर्वत्र वसन्त ही वसन्त के दर्शन होते है। हम धीरे-धीरे इस काले सागर के मनमोहक वातावरण मे यात्रा करने लगे।

सुखुमी, गुदाउता, गागरा और सोची जैसे नगर यात्रियों के लिए विशिष्ट आकर्षण के स्थान है। ये नगर काले सागर के ऐसे मोड पर बसे है, मानो इन नगरो के लिए ही समुद्र ने अर्धचन्द्राकार जैसा घुमाव ले लिया हो। एक तरफ काकेशस पर्वत की गगनचुम्बी चोटियाँ और दूसरी तरफ काले सागर की अतल गहराइयाँ। इन दोनो के बीच बसी हुई छोटी-मोटी सुन्दर बस्तियाँ। रात को बिजली के चमचमाते हुए आलोक मे यह लम्बा प्रदेश और ये नगर किसी सजी हुई रानी से कम प्रतीत नहीं होते। समुद्र के किनारे-किनारे घने वृक्षो की छाया, ठंडे और टेढे-मेढ़े आरोह-अवरोहो मे भरी सडक और सम्पूर्ण वातावरण

की शान्त छटा ने हमे इतना मोहित किया कि मन मे आया कि इस सुन्दर प्रकृति की गोद मे क्यो न लम्बे समय तक खेलते रहे !

यह सम्पूर्ण सागर-तट सुन्दर से सुन्दर 'सेनिटोरियमो' से सजा है। आपको जो भी आकर्षक और भव्य भवन दिखाई पडे, समझ लीजिये कि जरूर वह 'सेनिटोरियम' ही होगा, आपका अनुमान अस्सी प्रतिशत सही होगा। अकेले सोची शहर मे एक सौ से अधिक 'सेनिटोरियम' और स्वास्थ्य-सुधार केन्द्र है। ऐसे हर 'सेनिटोरियम' मे चार सौ से लेकर एक हजार लोगो के ठहरने की व्यवस्था होती है। उनके लिए हर प्रकार की चिकित्सा और व्यायाम, मनोरंजन, खेल, अध्ययन आदि की विशिष्ट सुविधा होती है।

चाय पीकर अणुबम का बटन दबायें !

हमे इस क्षेत्र मे ऐसे अनेक छोटे गॉव मिले, जहॉ के लोगो ने पहली बार किसी विदेशी को और किसी भारतीय व्यक्ति को देखा था। "विदेश के पर्यटक तो मास्को, त्बीलीसी, लेनिनग्राड, ताशकन्द आदि बडे शहरो मे जाते है," ऐसे उद्गार कई बार कई ग्रामीणो ने हमारे सामने प्रकट किये। चाय के एक कारखाने के मजदूर हमे रास्ते से गुजरते देखकर एकत्र हो गये और हमारा हाथ पकडकर आग्रहपूर्वक हमे अपने कारखाने मे ले गये। "ओह, अखबारो मे आपके चित्र देखे, समाचार पढे, आप शान्ति के दूत है। लीजिये, हमारे कारखाने की चाय के ये चार बण्डल! ख्रुश्चेव, केनेडी, देगाल और मेकमिलन, इन चारो को एक-एक बण्डल दीजिये और कहिये कि जब आपको अणुबम के उपयोग करने की आज्ञा देने का समय हो, तब कृपया यह ताजा चाय पीजिये। हम श्रमिकों को याद कीजिये। आपको अवश्य सुबुद्धि मिलेगी। और तब आप अणुबम का प्रयोग नहीं करेंगे। हम कारखाने के मजदूर शस्त्रास्त्र-विहीन

युद्ध-विरत विश्व का सपना देख रहे है। हम श्रमिक है। दुनियाभर के श्रमिकों का हित शान्ति और केवल शान्ति मे है।"

स्कूलों के बच्चे और अध्यापक रास्ते पर चलते हुए हमे घेर लेते। अपने स्कूल मे ले जाते। हमारी यात्रा की पूरी कहानी सुनते। वे कहते : "हमारा भविष्य तभी सुरक्षित और उज्ज्वल हो सकेगा, जब संसार पर से युद्ध तथा आणविक हथियारो की काली छाया दूर होगी। जनता का शत-प्रतिशत विश्वास शान्ति मे है। निहित स्वार्थवाले चन्द लोगो के व्यापार को चलाये रखने के लिए ही आज सामरिक हथियार बनाये जा रहे है। अतः अब वह समय आ गया है जब कि निहित स्वार्थ के विरुद्ध आम जनता की शान्ति-भावना को प्रतिष्ठित किया जाय।"

हमारी सुविधा के लिए सोवियत शान्ति-परिषद् ने प्रारम्भ मे हमारे साथ एक दुभापिया रखा था। इस वजह से हम सोवियत जनता के बीच गहराई से घुल-मिल सके। उनके विचार, रीति-रिवाज, राज्य-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था, कृपि-उद्योग-व्यवस्था, शिक्षा-व्यवस्था, कानून, पुलिस, धर्म, जाति आदि के सम्बन्ध मे हम बारीकी से अध्ययन कर सके। सोवियत संघ के ग्रामीण-जीवन के बारे मे गहराई से जानने की उत्सुकता हमारे मन मे थी, वह पूरी हुई। जिसके भी घर ठहरते, हम सीधे रसोई मे पहुँच जाते थे। माताएँ और घर के बच्चे हमे घेर लेते थे। वे कैसे भोजन पकाते है, कैसा जीवन जीते है और किस तरह परिवार-व्यवस्था है, यह हम देखते थे। हम जिस किसीके घर मे ठहरते, उस दिन के लिए ऐसे घुल-मिल जाते मानो उस परिवार के ही सदस्य हो।

बर्फ और विमान

०

शान्ति-परिषद् हमारी यात्रा के बारे मे और यात्रा-मार्ग के बारे मे बराबर जानकारी लेती रही। हमे कभी-कभी तेज सर्दी का सामना करना पडा, पर वह असहनीय नही थी। २० दिन की हमारी यात्रा के बाद ४ फरवरी को मास्को मे शान्ति-परिषद् ने अपना एक विशेष

प्रतिनिधि भेजा। ये भाई—श्री एलेक्जेंडर इवानोविच पलादिन—हमारे साथ दो दिन रहे। वे यह जानकारी लेकर आये थे कि सोची के आगे काकेशस पर्वत पर इतनी तेज घनी बर्फ पड़ी है कि रास्ते भी बन्द हो रहे है और बर्फ के साथ तूफान भी है। इसलिए आप यहॉ से सीधे मास्को चले, यही सुविधाजनक होगा। "लेकिन सोची तो अभी एक सौ मील दूर है। हम वहॉ तक तो जायेगे ही।"—हमारा उत्तर था।

ये भाई कहने लगे : "मैं मास्को से विशेष रूप से इसके लिए आया हूॅ। आप इस बारे मे ज्यादा आग्रह न रखे। अपने देश मे हम अतिथियो को बर्फ और तूफान मे छोडकर निश्चित नहीं बैठ सकते।" बहुत बातचीत हुई। हमारा मन किसी भी तरह तैयार नही हुआ। आखिर उन्हे कुछ असन्तुष्ट करके भी हमने पदयात्रा जारी रखी। एक सप्ताह के बाद हम सोची पहुॅचे। सोची मे वे भाई फिर हमसे मिले। हमने स्थानीय लोगो से भी इस सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी प्राप्त की। हमे पता चला कि मास्को से करीब चार सो मील पहले वोरोनेज शहर है। वहॉ तक रास्ता ज्यादा भयंकर है। साइबेरिया की तरफ से बर्फीली ऑधी चल रही है। सड़के भी बन्द है। रेले भी बन्द है। चारो ओर की धरती घनी बर्फ से ढॅकी हुई है। एक लम्बे विचार-विमर्श के बाद हमने यह सोचा कि शान्ति-परिषद् के लोगो को और सरकार को ज्यादा चिन्ता मे डालकर हम इस तरह आगे बढेगे, तो वह भी ठीक नही होगा। इसलिए हमे इतना समझौता कर लेना चाहिए। आखिर हमने सोची से वोरोनेज तक का टिकट लेकर विमान-यात्रा प्रारम्भ की। ज्यो ही विमान वोरोनेज के निकट पहुॅचा कि अधिकारियो से सूचना मिली : "अचानक मौसम के ज्यादा खराब हो जाने से वोरोनेज मे विमान का उतारना असम्भव हो रहा है, इसलिए वोरोनेज के यात्रियो को भी मास्को ही जाना पड़ेगा।" और इस सूचना के एक घण्टे बाद हम मास्को के हवाई अड्डे पर थे। इस तरह ३४०४ मील की पद-यात्रा के बाद प्रकृति के आगे हमे हार माननी पडी और पदयात्रा खण्डित करके हम मास्को पहुॅच गये। काश'

काकेशस पवत ने हमारा साथ दिया होता ! सन् १९४५ के बाद इस वर्ष सर्वाधिक तेज सर्दी, तूफान और बर्फ ने रूस की भूमि को ग्रस्त किया था और हम भी उसी चपेट मे आ गये।

मास्को मे

●

१३ फरवरी !

हम मास्को पहुँच गये। सोवियत देश की राजधानी मास्को ! ससार के प्रमुख नगरो मे से एक मास्को ! सुन्दर तथा वैज्ञानिक साधनो से सम्पन्न मास्को ! ऊँचे-ऊँचे, आकाशचुम्बी भवनोवाला मास्को !

"साठ लाख की आबादी ! डेढ सौ से अधिक म्यूजियम । तीस थियेटर। सत्तर से अधिक प्रकाशनगृह। हजार से ज्यादा पुस्तकालय। उच्च-शिक्षा के लिए छियासी सस्थान।" यह है ससार के आधुनिकतम नगरो मे से एक मास्को। मास्को मे हमारा एक महीना निश्चय ही हमे सदा याद रहेगा। चौड़ी तथा खूबसूरत सडको या लम्बे-चौड़े बगीचो या बेहतरीन होटलो आदि के कारण ही नही, बल्कि वहाँ के लोगो के स्नेह, आतिथ्य एव उच्च जीवन के कारण।

एक दिन हम मास्को का विश्वप्रसिद्ध विश्वविद्यालय देखने के लिए निकले। मास्को मे हम जब तक रहे, श्री स्लावा नाम का एक युवक-दुभाषिया हमारे साथ था। हम बस-स्टैण्ड पर पहुँचे। मुझे प्यास लगी। मैने अपने दुभाषिया साथी से पूछा कि यहाँ कहाँ पानी है क्या ? वे मुझे एक जगह ले गये। एक छोटी-सी दुकान थी। दुकानदार कोई नहीं। मेरे साथी ने पाँच कोपेक (रूसी सिक्का) एक छेद मे डाले। फलो के रस से तैयार किये हुए पानी के दो ग्लास भर गये। मैने मन-ही-मन सोचा, "यहाँ सब कुछ ऑटोमेटिक है।" इतने मे बस आ गयी। मै इस बात पर चकित हुआ कि बस-ड्राइवर एक महिला थी। हम बस मे बैठ गये। बस मे कोई कण्डक्टर नही था। टिकट

के पैसो के लिए एक छोटी-सी पेटी बस मे रखी थी। हमारे साथी ने उस पेटी मे पैसे डाले और टिकट फाडकर खुद ले लिया। "यदि कोई पैसे डाले बिना ही टिकट ले ले तो ?"—मेरे मन मे ऐसा सवाल उठा। पर मैने बडे गौर से देखा, ऐसा किसीने नही किया।

"मास्को मे कई हजार बसे होगी। यदि प्रत्येक बस मे एक कण्डक्टर हो तो कई हजार कण्डक्टर चाहिए। आखिर किसलिए ? इसीलिए न कि हम टिकट के बिना, चोरी से यात्रा न करे। यदि सब लोग यात्रा के नियमों का स्वय पालन करे, तो इन हजारो व्यक्तियो का ठीक तरह से दूसरे आवश्यक कामो मे उपयोग हो सकता है।"—ऐसा श्री स्लावा ने कहा। यही तो यहॉ हो रहा है। केवल बसो मे ही नही, मास्को नगर की भूगर्भ रेलो मे भी हमने कोई कण्डक्टर नहीं देखा। पूरे मास्को नगर के नीचे रेलवे लाइन बिछी है। यह दुनिया की सबसे सुन्दर भूगर्भ-रेलवे मानी जाती है। एक कोने से दूसरे कोने तक कही भी जाइये। जाते समय स्टेशन के दरवाजे पर ५ कोपेक का एक सिक्का एक पेटी मे डालिये और चले जाइये। इन सब कामो के लिए, टिकट बेचने और जॉचने के लिए एक लम्बे-चौड़े दल की क्या जरूरत ?

हम विश्वविद्यालय पहुॅचे, लुमुम्बा विश्वविद्यालय ! इसे यहॉ के लोग मैत्री-विश्वविद्यालय भी कहते है। ससार के ८० देशो के विद्यार्थी वहॉ पढ रहे है। विश्व-मैत्री और विश्व-बधुत्व की बुनियादो को मजबूत बनाने मे इस विश्वविद्यालय का अपूर्व स्थान है। विश्व मे इस तरह की शायद यह एकमात्र सस्था है, जहॉ अलग-अलग भाषाओ और सस्कृतियो मे पले हुए युवक मिलकर रहते है और मैत्री के वातावरण मे विद्या हासिल करते है। हमने अपना पूरा एक दिन इस मैत्री के अद्वितीय मन्दिर मे बिताया।

इस भयकर सर्दी मे मास्को के पेड़, पौधे, सडके और मकानों की छते सुन्दर सफेद सुहावनी अत्यन्त शीतल बर्फ से ढॅकी थीं। सफेदी की

इस चादर मे लिपटा हुआ मास्को सचमुच कितना मोहक, कितना लुभावना और कितना आकर्षक था।

मास्को पहुँचनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को पहली आकाक्षा रहती है कि वह लेनिन की समाधि पर जाकर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करे। मानव-समाज के इतिहास मे पहली बार समाजवादी समाज की स्थापना करने मे लेनिन सफल हुए। उन्होने न केवल सिद्धान्तो का निर्माण किया, बल्कि उन सिद्धान्तो के आधार पर एक समाज का निर्माण किया। आज सोवियत-देश के लिए सर्वाधिक प्यारा और आदरणीय व्यक्ति लेनिन है। हर दफ्तर मे लेनिन का मुस्कराता हुआ चित्र हमने देखा। हमने इस देश मे अक्सर यह बात सुनी कि जो आदर्श लेनिन ने हमारे सामने रखा है, उसी पर हमे आगे बढना है। सारा देश लेनिन के बताये हुए मार्ग पर दृढता और तेजी के साथ आगे कदम बढ़ा रहा है। इस देश मे लेनिन का वही स्थान है, जो भारत मे महात्मा गाधी का है।

उस दिन सवेर हल्की बर्फ पड रही थी। मौसम मे तेज सर्दी बसी हुई थी। हम अपने निवास-स्थान से चलकर क्रेमलिन के सामने फैले हुए विशाल लाल प्रागण (रेडस्क्वायर) मे पहुँचे। क्रेमलिन का अर्थ है: किला। मास्को नदी मे झाँकता हुआ, आठ सौ वर्ष पुराना क्रेमलिन, प्राचीन रूसी इतिहास की सबसे बडी स्मृति है। सन् १९१८ से इसी क्रेमलिन मे सर्वोच्च सोवियत तथा अन्य प्रमुख सरकारी दफ्तर स्थित है। क्रेमलिन के ठीक सामने लाल प्रागण मे एक लम्बी कतार खडी थी। देश-विदेश के हजारो नर-नारी प्रतिदिन इसी भाँति यहाँ लाइन बाँधकर सोवियत-क्रान्ति के पिता की समाधि पर पहुँचते है। समाधि-स्थल वैसा ही आडम्बर-हीन और सादा है, जैसे स्वय लेनिन थे। हम समाधि के अन्दर पहुँचे। रासायनिक तत्त्वों से सुरक्षित लेनिन का शरीर आज भी आश्चर्य-जनक कान्तिमान् है। चेहरे पर एक गम्भीर मुस्कान बिछी है। वे नयन मूँदकर ऐसे सोये है, मानो कुछ थककर विश्राम कर रहे हो और थोडी देर बाद उठकर हमारे साथ बातचीत करनेवाले हो।

हम क्रेमलिन के अन्दर भी गये, जहाँ लेनिन सोवियत-शासन के सूत्रधार बनकर रहते थे, जहाँ बैठकर सोवियत-सघ के भविष्य की योजना बनाते थे, जहाँ बैठकर श्रमिको और किसानो की समस्याएँ सुलझाते थे, जहाँ अपनी पत्नी क्रूसकाया के साथ बैठकर भोजन करते थे, जहाँ बैठते थे, सोते थे उस स्थान को हमने देखा। जो चीज लेनिन के समय जैसी थी, आज भी वह चीज वैसे ही रखी है। कितना सीधा-सादा जीवन! कितनी थोड़ी-सी साधारण चीजो से वे अपना काम चलाते थे। उनका निवास-स्थान देखकर यह सोचना कठिन होता है कि यह स्थान सोवियत-सघ जैसे विशाल देश के शासक का निवास-स्थान रहा है। एक साधारण मानव का जीवन जीकर भी अपने त्याग और बलिदान की बदौलत लेनिन महामानव बन गये और उन्होने ससार के इतिहास को एक नया मोड़ दे दिया। सोवियत-सघ का आज जो भी रूप है, उसकी बुनियाद स्वयम् लेनिन ने डाली थी।

हमने लेनिन-सग्रहालय भी देखा। रूस से बाहर, स्विट्जरलैण्ड, जर्मनी इत्यादि देशो मे रहकर किस प्रकार उन्होने क्रान्ति की मशाल जलायी, कैसे इस्क्रा, प्रावदा आदि पत्र निकाले, कैसे जनता को सघर्ष के लिए न केवल जगाया, बल्कि शिक्षित भी किया और किस तरह यातना भोगते हुए सम्पूर्ण देश मे उन्होने विद्रोह की लहर फैला दी, इसकी एक सजीव झाँकी हमने इस सग्रहालय मे देखी। श्रमिको और किसानो की दयनीय अवस्था ने लेनिन के हृदय मे एक भयंकर वेदना उत्पन्न कर दी और उन्होने अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य इन श्रमिको और किसानो को जीने का समान अधिकार दिलाना ही माना। जब सोवियत-क्रान्ति सफल हुई, तब उन्होने श्रमिको और किसानो के लिए जीवन के समस्त साधनो की उपलब्धि का मार्ग ढूँढा। सोवियत-क्रान्ति का पहला परिणाम था : उत्पादन के साधनो पर व्यक्तिगत स्वामित्व की समाप्ति और व्यापार-व्यवसाय के माध्यम मे होनेवाले उत्पादक तथा उपभोक्ता के शोषण का अन्त। जो खाता है, उसे अवश्य काम करना चाहिए और जो काम

करता है, उसे पर्याप्त भोजन उपलब्ध होना चाहिए, यह लेनिन का पहला विचार था। संग्रहालय को देखते समय हम यह समझ पाये कि सोवियत-देश को विकास की सबसे ऊपरी मजिल तक पहुँचाने के लिए उनके मस्तिष्क मे कैसी योजनाएँ थीं।

लेनिन एक व्यक्ति नहीं, विचार है। उस विचार को अपनाने का परिणाम होगा : शान्ति, श्रम और समानता। उनकी समाधि पर जाकर हम शान्ति, श्रम और समानता का पाठ सीखे, यही उनके प्रति सबसे बडी श्रद्धाजलि है।

मास्को नगर हमारी पहली मंजिल थी। दिल्ली से चले—मास्को और वाशिंगटन के लिए। पहली मजिल पर पहुँचने की विशेष प्रसन्नता हमारे हृदय मे उभर रही थी। मास्को मे हमारे मिशन के अनुसार कार्यक्रम चला। सोवियत-शान्ति-परिषद् के अध्यक्ष, मन्त्री और सदस्यो के साथ दो दिन हमारी चर्चाएँ हुई। हमने अपनी यात्रा की योजना, सस्मरण आदि बताये। निःशस्त्रीकरण और आणविक प्रयोगो के बारे मे हमारी जो दृष्टि है, वह भी हमने पेश की। "हर हालत मे आणविक प्रयोगो पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगे, सोवियत सरकार उसके लिए पहल करे और अविलम्ब इस समस्या का कैसे समाधान हो सकता है, इस बारे मे विचार हो। हम इस काम के लिए अपनी शक्ति और सामर्थ्य की अन्तिम कसौटी तक पहुँचकर भी शान्ति के लिए किये जानेवाले सघर्ष मे अपना जीवन अर्पित करने को तैयार है।"—इस तरह हमने अपना पक्ष रखा।

विश्वविद्यालय के छात्र हो या किसी कारखाने के श्रमिक। गाँवो के किसान हो या शहरो के बुद्धिजीवी। प्रयोगशाला का वैज्ञानिक हो या होटल मे खाना परोसनेवाली महिला। यहाँ सबके मन मे समान रूप से शान्ति की आकाक्षा है और युद्ध से घृणा है। चार घरो की बस्तीवाले गाँव से लेकर मास्को जैसे शहर तक सभी जगह वे लोग हमसे बार-बार एक ही सवाल पूछते थे : "किसके लिए पैदल चलते हो?" हमारा उत्तर भी

एक ही होता था : "शान्ति के लिए।" लोग तुरत कह उठते थे, हम भी "शान्ति के लिए" है। सभी "शान्ति के लिए" है, फिर भी शान्ति नही होती। जो "शान्ति के लिए" है वे ही "युद्ध के लिए" तैयारी कर रहे है। कोई नहीं जानता कि यह तैयारी क्यो चल रही है ?

मास्को संसार का वह स्थान है, जहॉ युद्ध और शान्ति के प्रश्न पर निरन्तर चर्चा होती रहती है। मास्को विश्व के उन दो नगरो मे से एक है, जहॉ से युद्ध और शान्ति के सवाल पैदा होते है और जहॉ उन सवालो का समाधान ढूंढा जाता है। जब हम ३२ मजिल के भव्य विश्व-विद्यालय मे छात्रो की सभा मे युद्ध और शान्ति के प्रश्न पर भाषण देने गये, तो हमे लगा कि वहॉ के कण-कण मे युद्ध और शान्ति का प्रश्न समाया हुआ है। २२ हजार छात्रों को ज्ञान-विज्ञान तथा कला की शिक्षा देनेवाला यह स्थान एक विचित्र हलचल से भरा हुआ था। वियतनाम और ईराक जैसे देशो मे हुई घटनाओ के चित्रो से सजी हुई दीवारो के पास जोर-जोर से युद्ध और शान्ति के प्रश्न पर वहस हो रही थी। हमने विश्वविद्यालय के युवक विद्यार्थियों के साथ कई घण्टे विताये और यह पाया कि वे सब केवल एक ही प्रश्न का समाधान ढूंढ रहे है। उनका प्रश्न है : "जब सभी शान्ति के उत्सुक है, तो युद्ध के लिए क्यो तैयारी चल रही है ?"

मास्को विश्वविद्यालय चेतनशील, प्राणवान् और जाग्रत विद्यार्थियो की विद्या-भूमि है। वे केवल अपनी पुस्तको मे ही बॅधे नहीं रहते। वे ससार की हर समस्या से परिचित है और उसका समाधान ढूंढ़ते है। उस समाधान के लिए वे हर तरह की कुर्बानी करने को भी तैयार रहते है। हमारे साथ चर्चा करने के बाद ऐसे विद्यार्थियो का तॉता लग गया, जो अपनी पढ़ाई छोडकर, घर-परिवार की चिन्ता छोड़कर हमारे साथ पदयात्रा मे आने के लिए भी प्रस्तुत थे। उन्हे खाना नहीं मिलेगा, तो कोई चिन्ता नहीं। उन्हे किसी देश की सरकार जेल मे बन्द कर देगी, उसकी भी परवाह नहीं। उन्हे सरकार की नीति के विरोध मे बोलना पडे, तो उसके लिए भी उन्हे कोई हिचक नही। उनके मन मे एक आग थी, एक साहस था, एक

तड़प थी। हम उनकी तीव्रता पर मुग्ध हो गये। ऐसे चार विद्यार्थी, जो हमारे साथ आना चाहते थे, रात-रातभर हमारे साथ बातें करते रहते थे। वे पूरे तौर से हमारे साथ आना चाहते थे, पर सरकारी आज्ञा के अभाव में आ नहीं सके।

मास्को विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच हम पहुँचे

मास्को के राजपथ, मास्को के भवन और मास्को के लोग हमारे लिए चिर-परिचित से हो गये। मास्को ने हमें इतना समा लिया कि जब हम उसे 'दास्वीदानिया' (विदा के समय का रूसी नमस्कार) कहने लगे, तो ऐसा आभास हुआ मानो हम यहीं के बाशिंदे हैं। मास्कोवासियों की सरल सहज स्वाभाविकता, उनका चरित्र और उनके बर्ताव ने हमारे मन-मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव डाला जो अमिट है। वह पुनः पुनः मास्को जाने के लिए हमें प्रेरित करता है। बिना दुकानदार की दुकान में, या बिना कण्डक्टर की बस में भी साधारण मास्कोवासी नागरिकों को आप उतना ही नैतिक तथा जिम्मेदार पायेंगे, जितने जिम्मेदार वे अपने घर में अपने परिवार के प्रति होते हैं। मास्को अपने आस-पास के उपनगरों को मिलाकर बहुत लम्बा-चौड़ा है। वह निरन्तर बढ़ता जा रहा है। भवन

इतनी शीघ्रता से निर्माण हो रहे है कि एक सप्ताह पहले जहाँ कुछ भी नही था, वहाँ दूसरे सप्ताह भवनो की कतार देखने को मिलेगी। बनती हुई इमारते और उनके लिए गगनचुम्बी क्रेने आँखो को बरबस खीच लेती है। पिछले दो वर्षो मे ६८ लाख वर्गमीटर जमीन मे इमारते खडी हो चुकी हैं। मास्को के शिल्पियो ने वहाँ के भवनो को एक विशिष्ट शिल्प प्रदान किया है। क्रेमलिन और विदेश मन्त्रालय से लेकर उक्राइन होटल और विश्वविद्यालय के भवन तक एक विशिष्ट कला दृष्टिगोचर होगी। इन भवनो के ऊपरी शिखर पर, जो कि पतले से गगनचुम्बी गुम्बद के रूप मे होते है, शान्ति और मित्रता का प्रतीक सितारा चमकता रहता है।

मास्को में हमारी मुलाकात सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष श्री स्पिरिदोनोव से हुई और क्रेमलिन मे उनके सामने हमने रूस द्वारा एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण किये जाने की माँग पेश की। डेढ घण्टे की हमारी बातचीत मे उन्होने विस्तार से हमे सोवियत नीति की जानकारी दी।

टालस्टाय के घर पर

●

यह १९५५ की बात है। मैने प्रतिदिन तीन-चार घण्टे खेत पर काम करना प्रारम्भ किया था। पुरातन संस्कारो के कारण मन मे कभी-कभी सोचता था कि "इस तरह खेती मे जो हिंसा होती है, उसमे प्रवृत्त होना क्या मेरे लिए उचित है ?" इस अन्तर्द्वन्द्व की चर्चा अपने मित्रो के साथ करता रहता था। एक दिन मेरे आत्मीय मित्र श्री द्वारकोजी ने टाल्स्टाय की एक पुस्तक मुझे पढने के लिए दी—"हम करे क्या ?" पुस्तक के नाम ने ही मुझ पर जादू कर दिया। समाज के बारे मे गहराई से सोचनेवाले हर जवान के दिमाग मे यह सवाल चक्कर काटता रहता है। मेरे दिमाग पर भी दुनियाभर की उलझने सवार थी। मैने एक सप्ताह मे

इस पूरी पुस्तक को पढ डाला । श्रम-जीवन की ओर आकृष्ट करने के लिए यह पुस्तक मेरे लिए गुरु साबित हुई । मन मे आया कि और सब धन्धे छोड़कर खेती के काम मे ही लगूँ । फिर जो समय बचे, उसमे इस पुस्तक का प्रचार करूँ । मै मानता हूँ कि यदि हर तरुण इस पुस्तक का अध्ययन कर ले, तो समाज मे आर्थिक-क्रान्ति की बुनियाद बहुत मजबूत हो जायगी । जिस दिन से मैने यह पुस्तक पढ़ी, उसी दिन से मेरे हृदय मे एक तूफान उठ खड़ा हुआ । तभी से मैने अपने दिमाग मे एक आन्दोलन और जीवन मे एक नयी प्रेरणा का दर्शन किया ।

टाल्स्टाय के जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि "युद्ध और शान्ति" नाम का उपन्यास जब मैने पढ़ा, तब से तो दिमाग मे एक ऐसी खिडकी खुल गयी कि जिसके अन्दर से छन-छनकर प्रकाश की किरणे भरने लगी । युद्ध के खिलाफ शान्ति-आन्दोलन मे अपना जीवन खपाने तक की मेरी जो तैयारी है, उसकी बुनियाद का पत्थर यह महान् उपन्यास ही था । राजघाट पर बापू की समाधि से जब हम पैदल यात्रा पर निकले, तो पल-भर विचार-तरगे राजघाट से यास्नायापोल्याना तक पहुँच गयी । एक स्थान से अहिसा और विश्व-शान्ति का सक्रिय आदर्श मिला, दूसरे स्थान से वैचारिक बुनियाद ।

१७ फरवरी जीवन का एक अविस्मरणीय दिन बन गया । १२ फरवरी को हमने बापू की याद की और उस याद ने हमे आणविक अस्त्रो के विरुद्ध तीव्र-से-तीव्र संघर्ष करने का बल दिया । ठीक चार दिन बाद बापू के बहुत बडे वैचारिक साथी श्री टाल्स्टाय की समाधि पर हम पहुँचे, तो कुछ देर के लिए ऐसा लगा, मानो ये दोनो विभूतियाँ एकाकार होकर ससार को मैत्री और सत्य की प्रेरणा प्रदान कर रही है ।

५० वर्ष से भी पहले की बात है । एक लम्बी और सफेद दाढीवाला विचारक बर्फ से ढँके और ऊँचे-ऊँचे वृक्षो से घिरे एक छोटे-से मकान मे कुछ सोच रहा था और कुछ लिख रहा था । दूसरी ओर मिट्टी की एक छोटी-सी झोपडी मे घुटनो तक की लँगोटी पहननेवाला अपने

मस्तिष्क मे सामाजिक-क्रान्ति का एक चित्र खींच रहा था। एक का विचार और दूसरे का चित्र ! दोनो ने एक दूसरे को कभी देखा नही, एक दूसरे से कभी मिले नही, परन्तु दोनो ने जीवन के सत्य को पहचाना और दोनो एक ऐसे सिरे पर जाकर मिल गये, जहाँ सचमुच मानव की मंजिल है।

हम जब टाल्स्टाय के घर पहुँचे, तो हमने सबसे पहले वह स्थान देखा, जहाँ पर सन् १८२८ मे इस विवेक-पुरुष का जन्म हुआ था। पहले इस स्थान पर एक बड़ा मकान था, पर आज तो एक शिलालेख मात्र है। उसके बाद हम उस ऐतिहासिक वृक्ष की छाया मे पहुँचे, जहाँ पर टाल्स्टाय आसपास के दीन-हीन, गरीब किसानो के साथ मिलते थे, उनकी समस्याएँ सुनते थे और उनकी माँगे पूरी करते थे। टाल्स्टाय के व्यक्तित्व को चित्रित करनेवाला उनका एक वैचारिक नाम रखा जाय, तो उन्हे 'करुणा की विभूति' कहना अधिक उपयुक्त होगा। उस युग मे, जब इस देश के ग्रामीण किसान तो उपेक्षित थे ही, पर उनकी सन्ताने तो बहुत ही बुरी हालत मे थी, तब टाल्स्टाय ने अपने फार्म का एक मकान उन बच्चो की शिक्षा-दीक्षा के लिए खोल दिया और स्वय अपना समय उन नन्हे पौधो की देख-भाल मे व्यतीत करने लगे। सन् १८२८ से १९१० तक का उनका सम्पूर्ण जीवन एक करुणामय हृदय की मोहक कहानी है।

पत्नी और १३ बच्चो के वृहत् परिवार के साथ टाल्स्टाय जिस कमरों-वाले सुन्दर घर मे निवास करते थे, उस घर मे जब हमने कदम रखा और एक-एक वस्तु को ध्यानपूर्वक निहारा, तो हमे ऐसा अभास होने लगा, मानो टाल्स्टाय अभी-अभी यहीं थे, कुछ देर पहले कहीं गये होगे। इस घर की प्रत्येक चीज, प्रत्येक सामान और प्रत्येक सजावट ठीक उसी तरह से अभी भी सुरक्षित है, जैसी कि टाल्स्टाय के जीवित रहने के समय थी। लकड़ी के ग्रामोद्योगी चम्मचो से लेकर बड़े पियानो तक, बड़ी मौन भाषा मे टाल्स्टाय के जीवन की कहानी कह रहे थे। जिन कुर्सियो पर वे

बैठते थे, जिस टेबल पर वे लिखते थे और जिस शैया पर वे सोते थे, वे सब सचमुच हमारे मस्तिष्क मे एक ऐसा प्रभाव उत्पन्न कर रहे थे, जिसका शब्दाङ्कन असम्भव प्रतीत होता है। दोनों पियानो मानो बता रहे है कि टाल्स्टाय केवल विचारक, लेखक या क्रान्तिकारी ही नही थे, बल्कि वे एक महान् सगीत-प्रेमी भी थे। उन्होने अपने लिखने के कमरे मे हेनरी जॉर्ज और चार्ल्स डिकन्स के सुन्दर चित्र टॉग रखे थे। यह इस बात का प्रमाण है कि टाल्स्टाय को ये दोनो विभूतियॉ अत्यन्त प्रिय थी।

आर्थिक क्रान्ति का जो सूत्र टाल्स्टाय ने व्यक्त किया, उस सूत्र मे से सबसे पहला परिणाम निकला : शरीर-श्रम। बिना श्रम किये आदमी को जीने का और खाने का हक नही है, इस क्रान्तिकारी विचार ने टाल्स्टाय के अपने जीवन को भी बदल दिया। करीब एक हजार एकड़ (३८४ हेक्टर) का बहुत बड़ा फार्म होते हुए भी उन्होने जूते सीने का काम शुरू किया। कन्धे पर फावड़ा रखकर वे स्वयं अपने फार्म पर निकल पडे और यही सबसे बड़ी क्रान्ति थी। उन्होने अपने उपन्यासो मे केवल उच्च आदर्शवादी नायक चित्रित करके ही अपने कार्य की समाप्ति नही समझी, बल्कि उन आदर्शों को अपने जीवन मे क्रियात्मक रूप दिया।

अहिसा और प्राणीमात्र के प्रति प्रेम की भावना ने टाल्स्टाय को शाकाहारी बना दिया। उस युग मे रूस जैसे देश मे शाकाहार की कल्पना भी विचित्र वस्तु थी, परन्तु टाल्स्टाय की करुणा का स्रोत केवल मनुष्यो तक सीमित न रह सका। उनके सबसे प्रिय मित्र श्री मैकोवीत्स्की उनके ही घर मे छह वर्ष रहे। उस अन्तिम रात्रि को जब वे बाल-बच्चो को घर मे सोये छोडकर अपनी प्यारी पुत्री के साथ महाभिनिष्क्रमण पर निकले, तो डॉ० मैकोवीत्स्की उनके सबसे बड़े सहायक थे। उस रात की हृदयद्रावक कहानी सब जानते है। वृद्ध टाल्स्टाय के मस्तिष्क मे उस रात जो तूफान चल रहे थे, वे स्वय अपने-आपमे एक बड़े उपन्यास की भूमिका थे, पर वह उपन्यास लिखा नही गया।

बाईस हजार पुस्तको की ज्ञान-विज्ञानमय परिधि के बीच टाल्स्टाय ने अपने विचारो को पकाया। हम यह देखकर सचमुच चकित थे कि १५ भाषाओ के इस पण्डित ने कितनी कुशलता से इन हजारो पुस्तको का अवगाहन किया। न केवल उन्होने उसका अवगाहन किया, प्रत्युत उस सारे ज्ञान को अपने मानस मे पचाकर उन्होने विश्व-साहित्य को जो गम्भीर नेतृत्व प्रदान किया, वह शताब्दियो तक ससार को सत्य का मार्ग दिखलाता रहेगा।

सोवियत-शान्ति-परिषद् ने हमारी इस यात्रा का प्रबन्ध किया। उन्होने हमारे लिए एक विशेष कार भेजी। हम सुबह आठ बजे चले। तीन घण्टे मे मास्को से दो सौ किलोमीटर पर टाल्स्टाय की चिरस्मरणीय भूमि पर हम पहुँचे। ५ घण्टे तक घूम-घूमकर हमने इस भूमि की पूरी परिक्रमा की और उसी दिन सायंकाल ७ बजे हम मास्को की बिजली से चमचमाती हुई लम्बी-चौडी सड़को पर वापस पहुँच गये।

प्रणाम मेरे टाल्स्टाय!

टाल्स्टाय, ओ टाल्स्टाय!!

तुम्हारा दूसरा नाम है—मानवता

और मेरे लिए तुम्हारे नाम का अर्थ है. सत्य!

क्योकि तुमने सत्य की खोज की, सत्य को पाने के लिए लिखा

तथा जिस सत्य को तुमने पाया उसके लिए अपना जीवन

अर्पित कर दिया।

तुम्हे टाल्स्टाय कहूँ?

या मानवता का प्रतिबिम्ब कहूँ?

या केवल सत्य कहूँ?

क्योकि मेरे लिए तुम एक व्यक्ति नहीं, एक विचार हो।

फिर रूसी गॉवों मे

●

मास्को नगर की आकाशचुम्बी अट्टालिकाओ के घेरे से निकलकर जब हम छोटी-छोटी बस्तियो मे बसनेवाले ग्रामीण किसानो के बीच पहुँचे, तब हमे एक नयी धरती के दर्शन हुए। यह ऐसी धरती थी, जहॉ अनेक युद्ध खेले गये। यहॉ का हर ग्रामीण जानता था कि युद्ध क्या है ? हमारे साथ कोई दुभाषिया या 'गाइड' नही रहता था। जहॉ भी हमे जाना हो, जहॉ भी ठहरना हो, जिससे भी हमे मिलना हो, हम पर कोई प्रतिबन्ध नही था। हमने एक-एक आदमी से पूरी आजादी के साथ खुलकर बातचीत की। हमने देखा कि युद्ध के प्रति इन ग्रामीण भाइयो के मन मे घोर नफरत है। ये किसान और मजदूर उस धरती का निर्माण कर रहे थे, जिस धरती को दूसरे महायुद्ध मे हिटलर की सेना ने क्षत-विक्षत कर दिया था। वहॉ का सब कुछ मिट्टी मे मिल गया था। वहॉ नये-नये घर बन रहे थे। गॉव बस रहे थे। बस्तियॉ आबाद हो रही थी। कारखाने खडे हो रहे थे। सडके, स्कूल और दवाखाने बन रहे थे। उस धरती का निर्माण करनेवाले किसान और मजदूर हमसे कहते थे : "आप अमेरिका जा रहे है। अमेरिकन मित्रो को हमारी तरफ से यह सन्देश दीजिये कि हम यह सब निर्माण-कार्य इसलिए नही कर रहे है कि कोई अणुबम इन पर गिरे और पलभर मे सब कुछ स्वाहा कर दिया जाय। हम अमेरिकनो के साथ शान्ति और मैत्री से रहना चाहते है।"

एक दिन हम एक छोटे-से गॉव मे ठहरे थे। एक किसान हमारे पास आया। अपनी नीली ऑखो से उसने हमे सिर से पैर तक देखा। फिर हमारे कन्धे पर हाथ रखकर बोला : "मैने सुना है कि आप शान्ति के दूत है। भारत से आये है। यहॉ से अमेरिका जा रहे है। क्या यह सच है ?" हमारे 'हॉ' कहने पर वह किसान बोला : "आप अमेरिकन मित्रो को मेरा एक सन्देश दीजिये। उनसे कहिये कि आपके देश मे युद्ध नही लडा गया। आप नही जानते कि युद्ध का जहर कितना भयकर

होता है। उसे हम जानते है। हमारे अनुभव से नसीहत लीजिये। युद्ध की कल्पना से भी हमारे रोंगटे खड़े हो जाते है। इसलिए युद्ध की तैयारियाँ बन्द करने के एकमात्र मार्ग पर हम दोनो देशों के लोगो को कदम मिलाकर बढने का समय आ गया है।" वह किसान बहुत तीव्रता से बोल रहा था। उसने अपनी बात कही और हमे अपनी बाहो मे भरकर चूम लिया। इसी तरह के प्रसंग कई बार हमारे सामने आते थे।

"युद्ध मे मेरा भाई मारा गया। मेरा पिता मारा गया। मै अकेला बच गया हूँ।"—एक कहता था।

"युद्ध मे मेरा पैर ही खतम हो गया। मै लँगडा हो गया।"—दूसरा कहता था।

"युद्ध मे मेरी ऑख गयी। मेरा हाथ गया। मुझे निकम्मा बना दिया युद्ध ने।"—तीसरा कहता था।

और इस तरह के युद्ध-पीड़ित लोगो से प्रतिदिन हमे युद्ध की कहानियाँ सुनने को मिलती थी। एक छोटे-से गॉव मे हम ठहरे थे। जिस घर मे हम थे, उस घर मे केवल दो वृद्धाएँ थीं। उनके परिवार के सभी पुरुष युद्ध-कवलित हो गये थे। एक दूसरे गॉव मे वृद्ध पति-पत्नी अपने जवान पुत्रो को युद्ध मे समर्पित करके किसी तरह दुःखी जीवन बिता रहे थे। इन गॉवो मे बसनेवाले लोगो के साथ समय बिताने, बातचीत करने और अनुभव प्राप्त करने से हमे मानव-जीवन के सच्चे दर्शन होते थे। रूसी गॉवो मे बसनेवाले श्रमिको की एक ही इच्छा है कि किसी भी मूल्य पर फिर से युद्ध की आग न भडके।

हम किसी भी गॉव मे पहुँचते थे, तो रूसी ग्रामीण हमे चारो ओर से घेर लेते थे। हमारे ठहरने का, खाने का, आराम का और हर प्रकार की सुविधा का प्रबन्ध पलभर मे हो जाता था। हम किसीका भी द्वार खटखटाते, हमारे लिए वह घर अपना ही बन जाता था। भारत को और भारतवासियो को ये लोग बेहद प्यार करते है।

हमने मास्को से अपनी पदयात्रा शून्य से ३० डिग्री नीचे की भयंकर सर्दी मे प्रारम्भ की थी। सोवियत शान्ति-परिषद् के मित्र इस सर्दी से बहुत भयभीत थे। इस सर्दी मे चल पडने की सलाह देने के लिए वे कतई तैयार नहीं थे। उन्होने मास्को से वारसा तक हमारे लिए विमान मे स्थान सुरक्षित करवाया और विमान के टिकट हमे दिये। हमने वे टिकट अस्वीकार करके अपनी पदयात्रा प्रारम्भ की। हमे विश्वास था कि जिस सर्दी मे रूसी लोग पूरा जीवन-क्रम चलाते है, सब काम करते है, वहॉ हम भी जीवित रह सकते है। इसमे कोई सन्देह नही कि साइबेरिया की ओर से आनेवाले तेज बर्फानी तूफान मे हमारे हाथ-पैर अकड़ने लगे। मुँह लाल होने लगा। नाक से पानी बहने लगा और वह पानी मूँछ तथा दाढ़ी मे ही अटककर बर्फ बनने लगा। यह कष्टदायक जाड़ा हमारे लिए एक नया अनुभव था। जिस सर्दी मे हिटलर की सेना को घुटने टेक देने पडे, उस विश्वप्रसिद्ध रूसी सर्दी का हमने प्रत्यक्ष दर्शन किया। जब मकानो की छते बर्फ से लदी हो, रास्ते बर्फ से भरे हो, पेड़-पौधे बरफ से ढॅके हो और सम्पूर्ण पृथ्वी जब बर्फ के परिधान मे लिपटी हो, तब प्रकृति के अञ्चल मे श्वेत-शीतल मोहकता को निहारते हुए मुक्त-सचार करना कितना मधुर होता है, यह कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। हमने अपने जीवन मे इतनी और ऐसी बर्फ का पहली बार दर्शन किया।

काश ! हम शान्ति-यात्रियो के साथ-साथ कोई चित्रकार भी होता, जो इन सुन्दर गॉवो के चित्र उतार सकता, यद्यपि ये चित्र हमारे मानस-पट पर बखूबी चित्रित हो गये है। ये सोवियत गॉव वैसे ही छोटे-छोटे है, जैसे भारत के गॉव होते है। छोटे-छोटे लकडी के घर। मिट्टी, ईट, पत्थर, चूने के नहीं, बल्कि लकडी के घर ही यहॉ के मौसम मे अधिक सुविधापूर्ण और अनुकूल रहते है। इन घरो मे रहनेवाले किसान भी भारतीय किसानो की भॉति सरल स्वभाववाले होते है। पर भारत के गॉवो की तरह बेकारी, अशिक्षा, बीमारी और गरीबी का साम्राज्य यहॉ नहीं है। आपको बाहर से दीखनेवाला एक साधारण झोपड़ा अन्दर से

वेहतरीन ढंग से सजा हुआ मिलेगा। आराम-देह पलंग और सोफा प्रायः हर घर की सामान्य आवश्यकता है। एक कोने मे लेनिन के चित्र के नीचे पुस्तको से भरी अलमारी, उसके पास मे ही आधुनिक क्रोकरी से भरी हुई दूसरी अलमारी तथा सुन्दर फरनीचर सजा होगा। शरीर से बलवान् और स्वभाव से मेहनती सोवियत किसान ससार की राजनैतिक और आर्थिक गतिविधियो से परिचित रहते है। हर घर मे अखवार, पत्र-पत्रिकाएँ निश्चित रूप से मिलती थी। 'क्रेमलिन' और 'ह्वाइट हाउस' के दैनन्दिन समाचारो का विवरण सुनने के लिए हर किसान अपने घर मे रेडियो रखता है। गॉव-गॉव मे टेलीविजन का विस्तार व्यापक रूप से है। सिनेमा भी गॉव-गॉव मे देखने को मिलते है। इस प्रकार सोवियत गॉवो के लोग आधुनिक और भौतिक जीवन की दिशा मे प्रगति कर रहे है।

५० फुट चौडी और क्षितिज के अन्त तक दिखती हुई सीधी और लम्बी सडक को नापते हुए हम बढते चले जा रहे थे। 'चरन् वै मधु-विन्दति।' का प्रत्यक्ष अनुभव हमे प्रतिदिन हो रहा था। हमारा एक ही प्रेरणा-सूत्र था : 'चरैवेति ! चरैवेति !'

रूस मे जब वीसा रद्द हो गया

●

मास्को मे एक दिन पता चला कि हमारे वीसा की अवधि रद्द कर दी गयी है। मगर वीसा रद्द हो जाने के बाद भी हम यात्रा करते रहे। यह थी गैर-कानूनी यात्रा। जी हॉ, सोवियत-सघ मे हम ४५ दिन तक गैर-कानूनी यात्रा करते रहे ! हमारा पासपोर्ट इस बात का प्रमाण है कि हमे १ जनवरी '६३ से ३० अप्रैल '६३ तक का वीसा तेहरान के सोवियत-दूतावास से प्राप्त हुआ। लेकिन मास्को मे हमारे पासपोर्ट पर यह नोट लिखा गया कि हमे १४ मार्च के पहले मास्को हवाई अड्डे से विदा हो जाना होगा। हमारा पासपोर्ट इस बात की साक्षी देता है कि

१ मई '६३ को हमने पोलैण्ड मे प्रवेश किया और उसके पहले हम रूस की धरती पर ही यात्रा करते रहे।

हमारा 'वीसा' क्यो रद्द किया गया ? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका स्पष्ट उत्तर स्वय हमारे पास भी नही है। सोवियत-सरकार की तरफ से हमारी यात्रा को पूरा समर्थन मिला। प्रधान मन्त्री ने स्वय हमे लिखा कि आप जैसे व्यक्तियो की ये शान्ति-यात्राएँ निःशस्त्रीकरण के लिए अनुकूल वातावरण बनाने मे असाधारण रूप से सहायक होगी। सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष के साथ हमने जब बातचीत की, तब वे हृदय से हमारे साथ थे। हमारे विचारो से मतभेद होना अलग बात है, पर हमारी यात्रा के लिए सरकार की पूरी सहानुभूति थी। हम प्रतिदिन सैकडो और कभी-कभी हजारो सोवियत-किसानो और श्रमिको से मिलते थे और उनसे असाधारण स्वागत और आतिथ्य प्राप्त करते थे। कम्युनिस्ट पार्टी के दैनिक पत्र 'प्रावदा' और सरकारी दैनिक 'इजवेस्तिया' से लेकर पचासो छोटे-बडे अखबारो ने हमारी यात्रा के समर्थन मे लेख, कहानियाँ और फोटो प्रकाशित किये थे। इन सबके बावजूद हमारा वीसा क्यो रद्द कर दिया गया ?

हम वहाँ सोवियत शान्ति-परिषद् के अतिथि थे। शान्ति-परिषद् के अध्यक्ष श्री टीखोनोव अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त बुजुर्ग कवि है और अद्भुत व्यक्तित्व के धनी है। सोवियत शान्ति-परिषद् ने हमारी यात्रा मे हर तरह से मदद की। जब हम रूसी भाषा नही जानते थे, प्रतिदिन अंग्रेजी पढानेवाले स्कूल मास्टर को हमारे साथ भेजा जाता था। छोटे-छोटे गाँवो मे हमारे लिए सभाएँ करना और ठहरने आदि का प्रबन्ध करना सोवियत शान्ति-परिषद् ने किया। जब हम मास्को पहुँचे, तो वहाँ की भयंकर सर्दी का सामना करने के लिए ओवरकोट और गरम कपडे भेट किये। हालॉकि हमसे शान्ति-परिषद् को कोई अपेक्षा नहीं, फिर भी उन्होने हमारे लिए उत्कृष्ट आतिथ्य उपलब्ध किया। लेकिन शान्ति-परिषद् मे कुछ अधिकारी ऐसे भी थे, जो किसी भी तरह पद-यात्रा का

महत्त्व नहीं समझ पा रहे थे। वे बार-बार हमसे कहते कि "आपकी पदयात्रा से क्या शान्ति स्थापित होनेवाली है ? फिर, सोवियत सरकार और सोवियत जनता तो शत-प्रतिशत शान्ति के लिए तैयार है। हमें कुछ समझाने की जरूरत नहीं। जर्मनी जाइये, अमेरिका जाइये। वहाँ के युद्ध-पिपासु पूँजीवादियों को समझाइये।" यह बात सिवा इन शान्ति-कार्यकर्ताओं के और किसीसे भी हमने नहीं सुनी। इन महाशयों ने हमसे यह भी कहा कि "आपको हमारे देश में ढाई महीने हो गये हैं। इतना समय काफी है। मास्को से वारसा तक के लिए हम आपकी हवाई यात्रा का प्रबन्ध कर रहे हैं। असली मोर्चा तो जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन और अमेरिका है, जहाँ की सरकारें निःशस्त्रीकरण के लिए हृदय से प्रयत्न नहीं करतीं। यहाँ पैदल चलकर समय नष्ट करने से क्या लाभ ?"

हमने कहा : "हम केवल एक ही शर्त पर अपनी पदयात्रा छोड़कर विमान से जा सकते हैं। अगर आपकी सरकार यह घोषणा करे कि अब आगे से एक भी नया एटम बम नहीं बनाया जायगा। जब तक हमें यह वचन नहीं मिलता, तब तक हम किसी भी सवारी से नहीं जायेंगे।" हमारी इस साफ बात से वे कुछ नाराज हुए। तेहरान में हमें जिस वीसा अधिकारी ने पहली मुस्कान् में जीत लिया और उसके बाद हजारों रूसी लोगों ने अपने स्नेह और आतिथ्य से गद्गद कर दिया, उनसे सर्वथा भिन्न ये कार्यकर्ता थे। उन्होंने आखिर अपनी मनमानी की। हमारा पासपोर्ट होटल-मैनेजर के पास था। वहाँ से पासपोर्ट लेकर यह महाशय वीसा-विभाग में गये। हमारे वीसा में रद्दोबदल करके हमें पास-पोर्ट दिया गया। साथ ही अगले दिन के विमान के लिए मास्को से वारसा तक के दो टिकट भी दिये गये। हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। हमने कहा कि "आप हमारी इजाजत के बिना ऐसा परिवर्तन करें, यह मुनासिब नहीं। हम यह विमान-टिकट स्वीकार नहीं कर सकते। हम पैदल और केवल पैदल ही जायेंगे।" इस पर हमारे सामने वही पुराना तर्क उपस्थित किया गया : "इस समय भयंकर सर्दी है। आप इस सर्दी

के अभ्यस्त नही है। तापमान शून्य से भी नीचे है। तीन-चार फुट वर्फ मैदानो मे पडी है। ऐसे समय आपके स्वास्थ्य को खतरे मे डालने की राय हम कभी नही दे सकते।" इस उत्तर के बाद हम खुद वीसा-विभाग मे गये। वीसा अधिकारी से जब हम मिले, तो उसने कहा कि "हमे तो शान्ति-परिषद् से एक पत्र मिला है कि आप मास्को से विमान द्वारा जा रहे है। इसलिए हमने आपके वीसा मे परिवर्तन किया। यदि आप फिर से वीसा को यथावत् कराना चाहते है, तो शान्ति-परिपद् की मार्फत एक पत्र लिखवाइये। आसानी से पुनः परिवर्तन कर दिया जायगा।" बात तो ठीक थी। लेकिन शान्ति-परिपद् के ये महाशय, जो हमारे वीसा की कार्रवाई कर रहे थे, इस निर्णय पर दृढ थे कि मास्को से पदयात्रा पर निकलना व्यर्थ है। आखिर हमने शान्ति-परिपद् को पत्र लिखा: "चूँकि हम सोवियत-संघ मे निःशस्त्रीकरण की मॉग को लेकर पद-यात्रा कर रहे है और अभी तक हमारा उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ है, इसलिए हम अपनी पदयात्रा बन्द नही कर सकते। हमारे पास तेहरानस्थित सोवियत दूतावास द्वारा दिया हुआ चार माह का अनुमति-पत्र है। बीच मे जो नया परिवर्तन अनुमति-पत्र मे किया गया है, उसकी पूरी जिम्मेदारी शान्ति-परिषद् की है। हम अपनी यात्रा पर यथावत् निकल रहे है।"

१४ फरवरी ६३ की सन्ध्या को हम कभी भूल नही सकते। हमारे मस्तिष्क मे एक जबरदस्त सघर्ष चल रहा था। हमने अपने कपड़ो की गठरी पीठ पर लादी और होटल से चल पड़े अपने लम्बे मार्ग पर। समूचे मास्को नगर मे नीचे सफेद वर्फ की चादर बिछी थी। ऊपर काली रात्रि का पर्दा पडा था और इस काले-सफेद के बीच चमचमाते हुए बिजली के बल्ब हमे रास्ता दिखा रहे थे। बस-स्टेशन पर काम करने-वाली महिला के मदद से हमने पहली रात—यूरोप के सबसे बडे होटल, 'होटल उक्राइना' मे मास्को मे ही बितायी। घुटनों से नीचे तक लटकते हुए मोटे, काले, फरदार ओवरकोट और भारी भरकम टोप पहने हुए रूसी सिपाही कहीं-कहीं दिखाई पड़ते, तो हमारे मन मे सन्देह होता कि

इनमें से कोई-न-कोई सिपाही हमारा पासपोर्ट देखेगा, वीसा न होने से हम गिरफ्तार किये जायेंगे। पर वे हमें नमस्कार करते, किसी मदद की जरूरत हो तो पूछते, हमें रास्ता बताते, कभी-कभी ठहरने का भी प्रबन्ध करते। हम रूसी भाषा में उनसे बातें करते। एक दिन बीता, एक सप्ताह बीता, एक महीना बीता, हमें कोई परेशानी नहीं हुई। नगर-पालिकाओं के अध्यक्ष, सामूहिक कृषि-फार्मों के संचालक, खानों या कारखानों में काम करनेवाले श्रमिक हमें अपना अतिथि बनाते। शान्ति-परिषद् ने भी समझ लिया कि गाधी के देश के ये लोग ऐसे कानूनों को स्वीकार नहीं करते, जो कानून उनकी आत्मा की आवाज को सुनने में बाधक बनते हो। हमारा सविनय कानून-भग पूरी तरह सफल रहा।

४५ दिन की यात्रा के बाद जब हम पोलैण्ड की सीमा पर पहुँचे, तो सीमा के रूसी कमाण्डर ने हमारा पासपोर्ट देखकर कहा : "आपका वीसा तो डेढ़ महीने पहले ही समाप्त हो चुका। अब तक कहाँ थे आप? कैसे इतने दिन बिना वीसा के रहे?" हमने संक्षेप मे कहानी बतायी। सैनिक कमाण्डर ने कहा : "यह सफाई पर्याप्त नही है।" और उसने कहीं से टेलीफोन पर बात की। फोन पर बात करते ही कमाण्डर ने कहा : "सब कुछ ठीक है। आइये, कुछ नाश्ता करें, चाय पियें। आप अपनी यात्रा की कहानी सुनाइये। यह आपका अन्तिम दिन है हमारे देश मे।" और उसके बाद खुद कमाण्डर हमारे साथ सीमा तक आये और 'अवैधानिक' यात्रियों को विदा किया। डेढ महीने की हमारी यह यात्रा हमारे लिए बडी फलदायी हुई। हमारे साथ कोई तीसरा आदमी नहीं था। हम अधिक निकटता से रूसी जीवन के अनुभव पा सके। हम नही जानते कि रूसी सरकार ने हम 'अवैधानिक' यात्रियों को गिरफ्तार क्यों नहीं किया? अथवा हमारे वीसा की अवधि क्यों नहीं बढा दी? यह घटना दिल्ली से वाशिंगटन तक की हमारी यात्रा में अकेली और अद्भुत है। शायद सरकार ने सोचा होगा कि शांति के प्रचारकों को 'मिशन' ही सबसे बड़ा वीसा है।
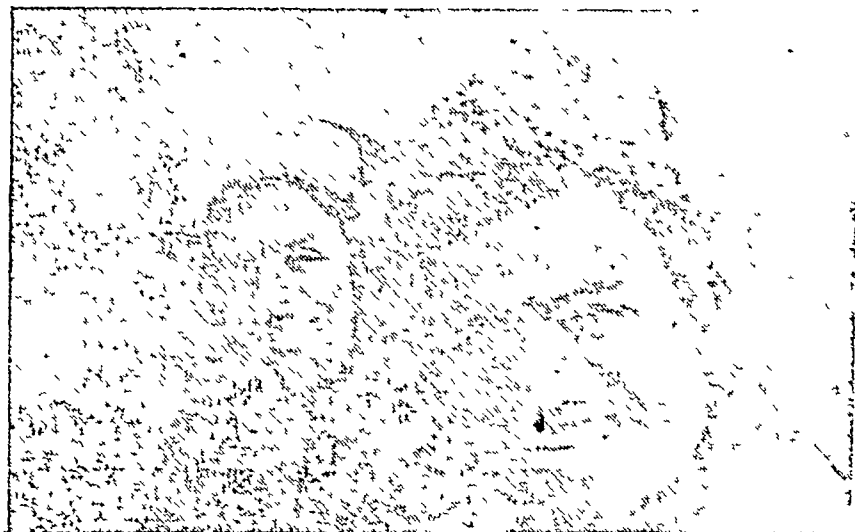
आरमेनिया की टोपी पहनकर हम आरमेनियन बन गये

पति ने मेहमान बनाया, पत्नी ने घर से निकाल दिया

'क्या सोने की लंका में गरीब नहीं बसते ?' ऐसी कहावत है। इस कहावत का अनुभव हुआ हमें अतिथि-परायण सोवियत संघ के एक छोटे-से गॉव स्लावादा में। यह गॉव मिस्क से १५ मील पूर्व की तरफ सडक के किनारे पर है। अप्रैल का महीना बडा विचित्र होता है रूस में। कमर तोड देनेवाला भयानक जाडा विदा लेता है और सुहावनी गरमी का मौसम आता है। रूसी लोग गरमी के मौसम की प्रतीक्षा उसी बेताबी के साथ करते है, जिस बेताबी के साथ हम भारतीय, बेचैन कर देनेवाली उमसभरी गर्मियो के बाद वर्षा की बहार का इन्तजार करते है। रूस में अप्रैल का महीना कीचड़-पानी का महीना होता है। ऐसे अप्रैल महीने में स्लावादा जैसा छोटा-सा देहात हमारे लिए एक संस्मरणीय देहात बन गया।

१४ अप्रैल का दिन रूसी लोगो के लिए प्राचीन परम्परा के अनुसार एक त्यौहार का दिन है। वैसे ही रूसी लोग खाने-पीने मे बहुत बढ़े-चढे होते है, फिर त्यौहार के दिन तो कहना ही क्या! प्रसिद्ध रूसी वोद्का की वोतले जब खुलनी शुरू होती है, तो उनकी गिनती करना मुश्किल हो जाता है। और तो और, स्त्रियाँ भी मदिरा तथा वोदका पीने मे पुरुषो का साथ देती है। स्लावादा के लोग त्यौहार की रगरेलियो मे व्यस्त थे कि शाम के वक्त दो भारतीय शान्ति-पदयात्री 'मी जा मिर' (हम शान्ति के लिए) का ध्वज लिये, पीठ पर बोझ लादे उनके गाँव मे पहुँच गये। गाँव मे दो नये लोग, वे भी बहुत दूर देश के। हवा के साथ हमारे पहुँचने की सूचना गाँवभर मे फैल गयी। देखते-देखते पचासो बालक हमारे साथ हो लिये। अच्छा खासा जुलूस बन गया। हमने नारा लगाया : 'मी जा मिर'। बच्चो के कण्ठ आसमान मे गूँज गये। स्त्रियाँ घरो के दरवाजे पर पहुँचकर हमे देखने लगी। सबको आश्चर्य! इस छोटे-से गाँव मे पहली बार कोई भारतीय पहुँचा था। हमे सब लोग 'ग्राम क्लब' मे ले गये। वहाँ एक हिन्दी फिल्म चल रही थी। कैसे आश्चर्य की बात! मुश्किल से १०० घरो की बस्ती का गाँव, पर वहाँ चल रही थी एक हिन्दी फिल्म। हिन्दी सिनेमा, रूसी अनुवाद के साथ, सोवियत-संघ मे बहुत लोकप्रिय है। नरगिस और राजकपूर का नाम गाँव-गाँव मे प्रसिद्ध है। हमने अपनी सोवियत-यात्रा के दौरान आठ-दस हिन्दी फिल्म देखे। 'आवारा' तथा 'श्री ४२०' के गीतो के रिकार्ड तो पचासो बार हमे सुनने को मिले। "नरगिस अपने माथे पर बिन्दी क्यो लगाती है?" यह सवाल हमसे सैकडो बार पूछा गया। 'आवारा हूँ' गीत का रूसी अनुवाद सुनकर तो हम अचम्भे मे पड़ गये। 'आजारा या' यह उसका पहला पद है। वही राग, वही धुन, हिन्दी का ठीक रूसी अनुवाद।

ऐसा कार्यक्रम चला कि रात के नौ बज गये। उसके बाद एक किसान के घर पर हम ठहर गये। किसान की पत्नी घर पर नहीं थी।

किसान ने बड़ी तत्परता के साथ स्वयं हमारे लिए मेज पर भोजन लगाया। पलग पर बिस्तर बिछाया।

"आप पैदल चलकर आये है। थके है। भोजन कीजिये और विश्राम कीजिये।"—किसान ने कहा। उसका रोम-रोम पुलकित था। इस गॉव मे वही इतना भाग्यशाली है कि और किसीके घर मे नही, बल्कि उसके घर मे परदेश के अतिथि आकर ठहरे है।

"मेरे घर मे २-३ माह का बच्चा है। उसका रोना आपके आराम मे बाधक तो नही बनेगा ?" किसान के मन मे हमारे आराम की बड़ी चिन्ता थी।

इतने मे किसान-पत्नी भी आ गयी। परिचय हुआ। किसान ने रसोई-घर मे जाकर अपनी पत्नी को बताया कि आज रात के लिए ये दो भारतीय यात्री हमारे घर पर मेहमान होगे। यह बात पत्नी को गवारा नही हुई। हम उनकी बातचीत सुन रहे थे।

"जिसे भी चाहो, गली चलते हुए को मेहमान बना लिया करो। यह घर है, सराय नही।" उसने इस तरह हमे ठहराने से साफ इनकार कर दिया।

पति ने बहुत प्रेम और नम्रता से सब समझाया कि "घर आये अतिथि को बाहर निकालना अच्छा नही।" पर पत्नी कुछ भी मानने और सुनने को तैयार नहीं थी। हमे भी कुछ ताज्जुब हुआ, क्योंकि पूरे सोवियत-सघ मे हमे उत्कृष्ट आतिथ्य के दर्शन हुए थे। फिर महिलाएँ तो पुरुषो से अधिक अतिथि-परायण और कोमल-हृदया होती है। हमने देखा कि बातचीत झगडे का रूप ले रही है। समस्या उलझती ही जा रही है।

"मेहमान यहीं रहेगे।"—पति ने चुनौती दी और वे हमारे पास बैठकर बातचीत करने लगे। इस पर तो पत्नी का क्रोध और भी उमड पडा।

"आप चिन्ता न करे"—मैने कहा। "हम किसी दूसरे घर जाकर ठहर जायेगे।"

"नही! नही!!" पति ने हमे वही रुकने का आग्रह किया।

पत्नी को शायद लगा कि यह उसका अपमान है। 'नारीणा रोदन बलम्!' भारत की स्त्रियॉ ही नही, रूस की गृहिणियॉ भी अपने क्रोध, दुःख और असन्तोष को प्रकट करने के लिए रोने का सहारा लेती है। मेरी माताजी कहा करती थी कि रोना तो स्त्री के पल्ले बॅधा होता है। मैथिलीशरण गुप्त ने "ऑचल मे है दूध और ऑखो मे पानी।" कहकर नारी के साथ ऑसू को एक ही धागे मे पिरोया है। हमारा मन विचलित हो उठा।

इतने मे किसान-पत्नी ने जोर से रोते हुए कहा : "या तो इस घर मे मै रहूॅगी या तुम्हारे मेहमान।"

पत्नी की चुनौती के सामने पति ने घुटने नही टेके : "जाओ, तुम्हे जहॉ भी जाना हो।" पत्नी ने चुनौती स्वीकार कर ली। हमारे देखते-देखते पत्नी ने छोटे शिशु को अपनी गोद मे उठाया और निकल पडी घर से बाहर!

"हम शान्ति की बात करने आये और गृह-कलह पैदा कर दिया।" मैने कहा प्रभाकर से।

प्रभाकर ने किसान को समझाया : "घरवाली को नाराज करके घर मे रहने की अपेक्षा यही अच्छा होगा कि हम किसी दूसरे घर मे जाकर ठहरे।"

पर किसान ने कहा : "आप रात को १० बजे कहॉ जायेगे? गलियॉ कीचड से भरी है। अन्धेरी रात है। किसका द्वार जाकर खटखटायेगे आप?" फिर थोड़ी देर सोचकर किसान बोला. "अच्छा, मै अपने पड़ोसी मित्र के घर पूछता हूॅ।" और किसान चला गया। आधे घण्टे मे किसान ने हमारे ठहरने के लिए अपने मित्र के घर मे प्रबन्ध कर दिया। सचमुच उस अन्धेरी रात मे हम बड़ी मुश्किल से

गलियाँ पार कर सके। एक-दूसरे का हाथ पकडकर अन्धेरे मे रास्ता ढूँढा। ऊपर तक जूते और कपडे कीचड से लथपथ हो गये। किसान बार-बार क्षमा माँग रहा था और अपनी पत्नी को कोस रहा था।

हम पहुँचे उसके मित्र के घर पर। पति, पत्नी और दो बच्चे। सब सो चुके थे। चार पलंगो पर चारों सो रहे थे। किसान के मित्र ने अपने दोनो बच्चो को जगाया और उन्हे एक पलंग पर सुला दिया। मै और प्रभाकर एक पलग पर सोये। १० मिनट के अन्दर सारी समस्या हल हो गयी। दूसरे दिन सुबह उठे। हमारे इस नये मेजबान के घर दो बढ़िया गाये थी। रूस मे इतनी भयंकर सर्दी होती है, फिर भी रूसी लोग दूध ठण्डा ही पीते है। पर हमारी रुचि पूछकर उन्होने दूध गर्म किया। रागू (कई तरह की सब्जियो से बना हुआ रूसी व्यञ्जन) पकाकर उन्होने अपने शाकाहारी अतिथियो को खास रूसी नाश्ता कराया। हमने बेहद प्यार और अपनत्व पाया। गृहिणी बोली "आज तो यही रहिये, इतना लम्बा सफर किया है, एक दिन विश्राम सही।" कितना स्नेह था उसकी वाणी मे। पिछली रात के किसान-पत्नी के व्यवहार मात्र से हम रूसी लोगो का आतिथ्य नही जॉच सकते। चार महीने का लम्बा समय हमने रूस मे बिताया। ऐसी घटना केवल एक ही दिन घटी। बरना, प्रतिदिन उत्कृष्ट आतिथ्य के दर्शन हमे होते थे। एक ही घर मे मानव-स्वभाव कितना भिन्न हो सकता है, यह हमे देखने को मिला। साथ ही यह भी हमे मानना चाहिए कि समाज मे अच्छाइयॉ ज्यादा है, बुराइयॉ कम। चार महीने मे, १२० दिन हमे अच्छे-से-अच्छा व्यवहार करनेवाले लोग मिले। केवल एक ही दिन ऐसी छोटी-सी अरुचिकर घटना घटी।

साथी या पिता

●

हमारे बगल मे धीरे से एक जीप आकर रुकी। हम चलते-चलते रुक गये। ठण्डी हवा चल रही थी। ऐसी सर्दी मे हमसे मिलने कौन

आया होगा ? फिर, हमारे लिए यह सर्वथा अपरिचित देश। हमारे मन मे उत्सुकता थी। इतने मे जीप से एक ऊँचे कद का व्यक्ति निकला। लम्बा और काले रंग का ओवरकोट। हाथो मे चमड़े के मोजे तथा सिर पर टोप। सारा शरीर कपड़ो से ढँका था। टोप से लेकर जूतो तक पूरा परिधान काले रंग का था। इस परिधान मे से बड़ी-बड़ी ऑखे, लम्बी नाक, ऊँचा ललाट और गोरा चेहरा आगन्तुक के व्यक्तित्व की झलक दे रहा था। हमारे मन मे आगन्तुक के प्रति आकर्षण पैदा हुआ। जीप से उतरते ही आगन्तुक मुस्कुराया।

"आपकी यात्रा कैसी चल रही है ?" आगन्तुक ने बडी आत्मीयता से पूछा।

"बहुत अच्छी तरह।"

"थक तो नही गये ?"

"बिलकुल नही।" हमने आगन्तुक को निश्चिन्त किया।

"भूख लगी है ?"

"नहीं, नही।"

"यह कैसे हो सकता है। आपने सुबह आठ बजे हल्का-सा नाश्ता किया। उसके बाद इतनी दूर चल भी लिये। भूख जरूर लगी होगी।" कहते हुए उन्होंने ड्राइवर की तरफ कुछ इशारा किया। ड्राइवर ने एक छोटी-सी पेटी बाहर निकाली। पास ही एक पुल पर उसे खोला। पेटी मे मदिरा की बोतले, मास-मछली, दूध, मक्खन, पनीर, रोटी, फल, किसमिस, बादाम, चाकलेट आदि सामान भरा था। यह सामान हमारे दोपहर के भोजन के लिए लाया गया था।

"आपको कुछ तो खाना ही होगा।"—आगन्तुक ने कहा।

"लेकिन हम मछली नही खाते, मास नही खाते, मदिरा भी नही पीते।"

"ऐसा क्यो ? क्या मास और मछली के बिना भी कोई भोजन हो सकता है ?"

"लेकिन हमने तो आज तक कभी नही खाया। हमारा काम अच्छी तरह चलता है।"

"इतनी लम्बी यात्रा, प्रतिदिन पैदल चलना। भोजन तो पौष्टिक करना ही चाहिए।"

"लेकिन दूध, अन्न और फलो से हमे पर्याप्त पुष्टता मिल जाती है।"

"फिर भी क्या कारण है? मास क्यों नही खाते?"

"हम अहिसावादी है। अन्य प्राणियो को मारकर खाना हम ठीक नहीं मानते।"

"ओह, मै समझ गया। हमारे टाल्स्टाय ने भी मासाहार छोड़ दिया था। वे अहिसावादी बन गये थे। पर मदिरा मे तो किसीकी हिसा नही की जाती?" आगन्तुक का अगला प्रश्न था। "मदिरा एक नशा है। वह शरीर के लिए आवश्यक नही। खास तौर से भारत की सामाजिक, प्राकृतिक और आर्थिक व्यवस्था मे वह अनावश्यक है।"

"पर हमारे यहाॅ ऐसा आदमी ढूॅढने से भी शायद ही मिले, जो मदिरा न पीता हो। हम लोग अतिथि के आगमन पर मदिरा पीना और पिलाना अपना आनन्दप्रद कर्तव्य मानते है। यह हमारी आतिथ्य-परम्परा है।" आगन्तुक ने हमसे मदिरा पीने का आग्रह किया।

"पर हम जानते है कि आप लोग अतिथि की भावनाओ का भी आदर करते है, और यदि किसी सैद्धातिक कारण से कुछ बातो मे वह आपका साथ न दे, तो आप क्षमा भी कर देते है।"

"सो तो है। हम उदार है।" और आगन्तुक ने हमे क्षमा किया। फिर हमने दूध पिया और आगन्तुक ने भारत-सोवियत के नाम पर, शान्ति के नाम पर और हमारे स्वास्थ्य की कामना करते हुए मदिरा का प्याला खाली कर दिया। सर्दी काफी थी। हमने खडे-खड़े ही थोड़ा-बहुत खा लिया। आगन्तुक ने बादाम और किसमिस हमारी जेब मे भरते हुए कहा: "ये रास्ते के लिए है।" वे फिर आगे बढ गये—हमारे पड़ाव की व्यवस्था करने के लिए।

ये आगन्तुक थे श्री मामीकोनियान गुरग्यान। शान्ति-परिषद् के एक सदस्य। हमारी पदयात्रा की व्यवस्था के लिए शान्ति-परिषद् ने इन्हे हमारा साथी बनाया था। पहली ही मुलाकात मे ये हमारे ऐसे मित्र बन गये कि उन्हे हम कभी नही भूल सकेगे। हमारी यात्रा का उद्देश्य जिन लोगो ने ठीक-ठीक समझ लिया, उनमे से एक थे श्री गुरग्यान। हमारी शान्तियात्रा जन-सपर्क की दृष्टि से बहुत सफल यात्रा रही और इस सफलता का बहुत बड़ा श्रेय श्री गुरग्यान को है। हमारे पड़ाव पर पहुँचने से पहले ही न केवल उस गॉव मे, बल्कि आसपास के अनेक गॉवो मे हमारे आने की सूचना वे पहुँचा देते थे। हम जब अपने पड़ाव पर पहुँचते, तो सैकड़ो-हजारो लोगो की भीड हमे घेर लेती। हम अपनी यात्रा का उद्देश्य समझाते हुए आणविक अस्त्रो के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए जनता का आह्वान करते। श्री गुरग्यान लोक-भाषा मे हमारी बात का अनुवाद करके हमारा मिशन उन तक पहुँचाते। श्री गुरग्यान कहते कि "आपका पैदल चलने का उद्देश्य है, अधिक-से-अधिक जनता तक शान्ति-सन्देश पहुँचाना। इसलिए हमारा यह कर्तव्य है कि अधिक-से-अधिक लोगो तक हम आपकी यात्रा की सूचना पहुँचाये।" फिर वे हमे किसी दिन कलेक्टिव फार्म, किसी दिन गोशाला, किसी दिन स्कूल, किसी दिन कारखाना, किसी दिन कोई सार्वजनिक संस्था दिखाने के लिए ले जाते।

श्री गुरग्यान हमारी यात्रा की सुविधा और हमारे स्वास्थ्य के लिए सदैव चिन्ता करते रहते। पड़ाव की दूरी ज्यादा न हो, पडाव पर पहुँचते ही गरम पानी की व्यवस्था हो, हमे आराम के लिए पूरा समय मिले, हमारे लिए शाकाहारी भोजन की ठीक व्यवस्था हो, इत्यादि बातो की तरफ वे उसी तरह ध्यान रखते, जैसे एक पिता पुत्र के लिए रखता है। उन्होने कहा भी कि "जब तक मै आपके साथ हूँ, आप मेरे पुत्र हैं और जो कुछ मै कहूँ, वह खाना होगा।" बहुत इनकार करने पर भी वे हमारे लिए दोपहर का भोजन लेकर आते और रास्ते मे हमे खाना ही पडता। श्री गुरग्यान आरमीनिया रिपब्लिक की यात्रा मे हमारे साथ रहे।

एक दिन श्री गुरग्यान से बिछुड़ने का समय आया। वह दिन श्री गुरग्यान के लिए भी और हमारे लिए भी बहुत कठिन था। श्री गुरग्यान की आँखे गद्गद थी। उनका मन भरा था। वे बार-बार हमारे सिर चूमते, हमे बाँहों मे भरते। वे हमसे किसी तरह अलग नही हो पा रहे थे। सडक पर बीसो लोग खडे होकर हमारी जुदाई का दृश्य देखने लगे। थोडी दूर जाते और फिर हमसे विदा माँगने चले आते। बगल मे नदी बह रही थी। ऊपर सूरज चमक रहा था। श्री गुरग्यान नदी के पुल पर ही खड़े रहे और हम पीछे मुड़-मुडकर अपना हाथ हिलाते हुए उनसे विदाई माँगते हुए आगे बढ़ गये। सचमुच श्री मामीकोनियान गुरग्यान हमारे साथी भी थे और पिता भी।

एक साहसी युवती !

●

ऊँची-नीची पहाडियो के आरोह-अवरोहो पर बसा हुआ नगर दिलीजान। युवको की एक बडी सभा मे हमने कहा : "अब तक युवक-शक्ति के बल पर युद्ध खेले गये। पर अब युवक-शक्ति शान्ति-स्थापना और युद्ध-निवारण मे लगनी चाहिए। हम दो युवक भारत से निकल पड़े है—युद्ध के विरोध मे। सोवियत-सघ से भी एक युवक-प्रतिनिधि हमारे साथ अमेरिका तक चले, ऐसा हम चाहते है। क्या कोई हमारी युद्ध-विरोधी पदयात्रा मे आने के लिए तैयार है?" सारी सभा मे चुप्पी! ऐसे अचानक प्रश्न की अपेक्षा किसीने नही की थी। इतने मे सभा की चुप्पी भंग करते हुए एक युवती ने खडे होकर कहा : "मै तैयार हूँ।" उपस्थित युवको की आँखे इस साहसी युवती की ओर घूम गयी। कटे हुए घुंघराले बाल, काले रग के स्कर्ट और जाकेट से झाँकता हुआ छरहरा बदन, काली-काली नुकीली आँखोवाला मुस्कराता हुआ चेहरा। कौन है यह? पर वह अटल खडी थी—अपना हाथ ऊँचा किये। वह न तो झिझक रही थी और न परेशान हो रही थी। उनका नाम था—

आइरापेत्यान जारजेता। अपनी वृद्ध माँ के लिए २० वर्ष की इकलौती पुत्री।

सभा के बाद जारजेता दो-तीन घण्टे हमारे साथ रही। दृढतापूर्वक उसने साथ चलने का आग्रह किया। दूसरे दिन सवेरे तैयार होकर वह हमारे पास पहुँच गयी। हम आश्चर्य कर रहे थे उसके आत्म-बल पर।

"अमेरिका तक पैदल चलोगी? इतना पैदल चल सकोगी?"

"क्यो नही? अवश्य चल सकूँगी।"—जारजेता ने निर्भीक उत्तर दिया।

"कभी-कभी २०-२५ मील तक कोई गाँव नही आयेगा।" हमने डराया।

"तो क्या हुआ? जितना आप चल सकते है, उतना मै भी चल सकती हूँ।"

"हम साथ मे पैसा नही रखते। कभी एक-दो दिन खाना नहीं मिला तो? भूखी रह लोगी?"

"यदि चलने से, भूख से और परेशानियो से ही डर होता, तो मै अभी आपके पास आती क्यो?"

"हमे कभी कोई सरकार जेल मे भी बन्द कर सकती है।"

"कोई भी सरकार शान्तिवादियो के साथ ऐसा व्यवहार क्यो करेगी?" जारजेता ने पूछा।

"क्योकि हम सरकार की युद्ध-नीति के खिलाफ आन्दोलन और प्रदर्शन करते है।"

"कोई बात नही। यदि अच्छा काम करते हुए भी सरकार हमे जेल मे बन्द करती है तो उसके लिए भी तैयार हूँ। दुनिया मे चलनेवाले शान्ति-आन्दोलन मे अपना छोटा-सा हिस्सा देने के लिए मै आपके साथ आना चाहती हू। आपके साथ गाँव-गाँव मे पैदल यात्रा करूँगी

और लोगो को युद्ध के विरोध मे आन्दोलन करने के लिए प्रेरित करूँगी।" इस तरह जारजेता ने बहुत कुछ कहा।

"लेकिन आपकी माँ वृद्ध है। उनको सँभालनेवाला दूसरा कोई नही। क्या उनकी आज्ञा है?"

"जारजेता की माँ की आज्ञा तो नही है।" जारजेता को चुप देखकर उसके एक मित्र ने बताया।

"ऐसी दशा मे आपकी माँ क्या सोचेगी और पीछे उनकी क्या दशा होगी?"—हमने कहा। इस पर जारजेता चुप रही। सचमुच उसके उत्साह के सामने यह बहुत बड़ी कठिनाई थी। वह एक औषधालय मे काम करती है, कमाती है और माँ की पूरी जिम्मेदारी उसी पर है। लेकिन उसकी आत्म-प्रेरणा हमारे साथ चलने के लिए खीच रही थी। प्रेरणा और जिम्मेदारी के बीच संघर्ष था। बहुत सोचने के बाद हमे यह लगा कि जारजेता का हमारे साथ न चलना ही ज्यादा उपयुक्त होगा। हमने कहा: "केवल पदयात्रा मे शामिल होना ही शान्ति-आन्दोलन नही है। आप और भी अनेक तरह से इसमे मदद कर सकती हैं। आप पहले यहीं पर कुछ शान्तिवादियो का सगठन तैयार कीजिये। अपने आसपास के क्षेत्र मे कुछ काम कीजिये।" इस तरह हमने उसे बहुत-कुछ समझाया, पर इससे उसे सन्तोष नही हुआ। वह बहुत निराश हो गयी।

उस दिन वह हमारे साथ अगले पड़ाव तक पैदल आयी। आज दुनियाभर मे जो शान्ति-आन्दोलन चल रहे है, उसके बारे मे जानकारी लेती रही।

भारत छोडने के बाद आइरापेत्यान जारजेता पहली युवती थी, जिसने इतनी तीव्रता से हमारे साथ चलने की उत्कण्ठा व्यक्त की और जिसे शान्ति-आन्दोलन मे इतनी अभिरुचि थी। आठ मील की उसकी पदयात्रा के बाद हमे यह विश्वास हो गया कि वह हमारे साथ आगे भी चल सकेगी। काश, उसके घर की परिस्थितियो ने साथ दिया होता!

एक रूसी गॉव में

●

मार्च महीने की एक सध्या ! साइबेरिया की ओर से आनेवाली तेज हवा के साथ बर्फ के कण हमारे चेहरे शीतल कर रहे थे। आकाश से बर्फ की वर्षा हो रही थी। हमारी टोपी पर बर्फ की तहे जम गयी थीं। पीठ पर का थैला बर्फ से सफेद हो रहा था। नीले ओवरकोट पर सफेद बर्फ की धारियॉ बहुत सुन्दर दीख रही थीं। हाथो को बर्फ से बचाने के लिए हमने 'फर'वाले चमड़े के मोजे पहन रखे थे। सर्दी से बचाने के लिए हमने सारे शरीर पर मोटे और गरम कपड़े लाद रखे थे। परन्तु होठ, गाल और नाक ? इन्हे कैसे बचाये ? पर हम चलते जा रहे थे। हम ऐसे यात्री थे, जिन्हे यह मालूम नहीं कि आज पडाव कहॉ होगा ? कितनी दूर चलना होगा ? एक अनिश्चित लक्ष्य की ओर हम बढते जा रहे थे।

पश्चिमी रूस का एक गॉव ! हम इस गॉव के पास पहुॅचे। १३ मील इस भयानक सर्दी मे लगातार चलने के बाद हम कितने थक गये थे, यह बताना व्यर्थ है। पर सारा गॉव सफेद बर्फ मे लिपटकर सोया था। बर्फ से ढॅकी हुई झोपड़ियॉ चुपचाप खडी थी। ३०-३५ घरो का यह गॉव ऐसा लगता था, मानो यहॉ कोई नहीं बसता। कुछ पूछताछ करनी चाहिए। पर किससे पूछे ? बिना किसीसे पूछे कैसे किसीके घर पर पहुॅच जायॅ। आज की रात ठहरना इसी गॉव मे है। आगे कितनी दूरी पर कोई गॉव है, पता नहीं। इस तरह सोचते हुए हम सड़क पर खडे थे कि बहुत दूर से एक काली छायाकृति आती हुई दिखाई दी। हमे कुछ ढाढ़स बॅधा। छायाकृति हमारी ही तरफ बढ़ रही थी। वह एक स्त्री थी। उसे बर्फ पर तेज हवा मे चलते हुए कठिनाई हो रही है और उसके पैर कभी-कभी बर्फ मे धॅस जाते हैं, ऐसा हमे स्पष्ट आभास हो रहा था।

"यह कौन-सा गॉव है ?" स्त्री के निकट आने पर हमने पूछा।

"आरत्योमकी। आपको क्या चाहिए ?" स्त्री ने सिर से पैर तक हमे गौर से निहारते हुए पूछा।

"हम यात्री है और आज की रात यहाँ ठहरना चाहते है।" हमने बिना किसी भूमिका के सीधे कहा।

"अच्छा, मेरे साथ चलिये।" स्त्री जिस रास्ते आयी थी, उसी रास्ते लौट पड़ी। उसने हमे अपने पीछे-पीछे आने के लिए इशारा किया। हम चकित हुए इस स्त्री पर। इस भयकर सर्दी मे वह घर से बाहर कही जा रही थी, तो अवश्य ही किसी जरूरी काम से जा रही होगी। पर अपने काम को छोडकर वह तुरन्त हमारी मार्गदर्शिका बन गयी। हम कौन है, कहाँ से आये है, क्यो यहाँ ठहरना चाहते है इत्यादि कुछ भी उसने नहीं पूछा। वह हमे अपने भाई के घर ले गयी। भाई उस समय घर पर नही था। उसने अपनी भाभी को धीरे से कुछ कहा और घर के अन्दर हमे ठहरा दिया।

"आप विदेशी है ? रूसी भाषा जानते है ?" हमे सोफे पर बैठने को कहते हुए स्त्री ने पूछा।

"थोडी-थोड़ी जानते है।"

"यह अच्छा है। किस देश से आये है आप ?"

"भारत से।"

"ओह ! बहुत दूर से आये है। कितने दिन मे यहाँ पहुँचे ?'

"दस महीने मे।" हमने बताया।

"ओय ⋯ ओय ⋯ ओय ⋯ दस महीने।"

"कितने किलोमीटर पैदल चले ?" स्त्री की भाभी ने पूछा।

"लगभग छह हजार किलोमीटर।"

"लेकिन पैदल क्यो चलते है ?" स्त्री ने पूछा।

"हमारी यात्रा युद्ध के विरोध की प्रतीक है। हम गाँव-गाँव मे अणु-अस्त्रो के खिलाफ प्रचार करते है। मान लीजिये, यदि हम विमान से आते, तो क्या आज इस गाँव मे पहुँचते ? गाँव-गाँव तक पहुँचने के लिए

पदयात्रा ही ठीक है।" इस प्रकार हमारी बातचीत चलती रही। इसी बीच स्त्री के भाई भी आ गये। वे बड़े प्रसन्न हुए अपने घर मे विदेशी मेहमानो को पाकर।

"पहले यह बताइये कि आप खायेंगे क्या" स्त्री के भाई फीमोनोव वसीलोव ने पूछा।

"धन्यवाद ! आप जो भी खिलायेंगे, हम खायेंगे। सिवा मास के।"

"क्यो ? मास क्यो नही ? आप देख रहे है कि हमारे यहॉ की धरती बर्फ से ढॅकी है। यहॉ न फल है, न सब्जी है और न तरकारियॉ है। हम मास न खाये तो काम ही न चले।" वसीली ने कहा।

"हम शाकाहारी है।" यह समझाने पर उन्होने कहा : "आलू उबले हुए तैयार है। गाय हमारे घर पर है। इसलिए दूध, मक्खन पर्याप्त है।" और उन्होने ऊॅचे कानो का एक बड़ा-सा मिट्टी का बर्तन कच्चे दूध से भरकर हमारे सामने रख दिया। रोटी पर मक्खन लगाकर आलू और दूध के साथ हमने तृप्त होकर भोजन किया। इसी बीच श्री वसीली की बहन ने हमारे आने की खबर गॉवभर मे फैला दी। गॉवभर के स्त्री-पुरुष और बच्चे जमा होने लगे। यह पहला ही अवसर था कि आरत्योमकी गॉव मे कोई विदेशी आकर ठहरा था। "भारत मे क्या-क्या पैदा होता है ? भारत के सभी बच्चे स्कूल जाते है क्या ? स्कूल मे फीस लगती है क्या ? चिकित्सा मुफ्त होती है या नही ? बूढो को पेनशन मिलती है क्या ?" इत्यादि तरह-तरह के सवाल रात के ११ बजे तक पूछे जाते रहे। लाल और सफेद रंग के रूसी लोगो को हमारा अपेक्षाकृत काला रग बहुत पसन्द आ रहा था। सब लोग हमारी खूबसूरती की तारीफ कर रहे थे। कितनी ही तरुण लड़कियॉ हमारे सौन्दर्य को निहारने के लिए ही आयी थीं। बाहर कितनी भी सर्दी हो, कमरे के अन्दर ३-४ फुट चौड़ी और ६-७ फुट ऊॅची बुखारी जल रही थी, इसलिए कमरा पर्याप्त गरम था। श्री वसीली एक साधारण किसान है, पर उनके घर मे ३-४ दैनिक, मासिक पत्र-पत्रिकाएॅ आती है। एक कोने

मे रेडियो है। टेलीविजन है। दूसरे कोने मे दो पलंग बिछे है। तीसरी तरफ सोफा रखा है और कमरे के बीच मे गोल टेबल के चारों तरफ कुर्सियॉ पड़ी है। एक बडा-सा यह हॉल ही पूरा घर है। घर के प्रवेश-द्वार पर ही छोटा-सा रसोई-घर है। पत्नी है, जो स्कूल मे अध्यापिका है। दो बच्चे है, जो स्कूल मे पढते है।

रात को जब सभा विसर्जित हुई, तो श्री वसीली ने कहा : "युद्ध के समय मै एक सैनिक था। मेरा एक पॉव युद्ध मे खतम हो गया। आप अपने मिशन मे सफल हो। दुनिया से फौज और हथियारो का नामो-निशान मिट जाय।"

श्री वसीली का पूरा परिवार और पूरा आरत्योमकी गॉव, हमारे मन मे सदा सदा के लिए बस गया।

जब पैर धुले

●

सोवियत देश मे अतिथि के साथ होनेवाले व्यवहार ने हमे कभी-कभी चकित भी कर दिया। हम एक छोटे-से गॉव मे श्री सेमोनियान के घर ठहरे थे। रात को सोने के पहले जब हम कपडे उतारने लगे, तो श्री सेमोनियान ने अपनी बेटी ल्योषा को आवाज दी : "क्यो बेटी, गरम पानी तैयार है क्या ?" तत्क्षण एक उत्सुक ऑखोवाली तरुणी ने हाथ मे गरम पानी और तौलिया लेकर मुस्कुराते हुए कमरे मे कदम रखा। "यह मेरी बेटी ल्योषा है।"—श्री सेमोनियान ने परिचय कराया। मै उचक-कर खडा हो गया और मिलने की प्रसन्नता व्यक्त की। ल्योपा ने अभिवादन-स्वरूप अपना हाथ मिलाने के लिए मेरी तरफ बढाया। स्त्रियो से हाथ मिलाकर अभिवादन करने की मुझे आदत नही थी। मैने दोनो हाथ जोड़कर अभिवादन किया, पर ल्योपा का बढा हुआ हाथ वापस नही गया और मुझे सकोचसहित ही सही, पर हाथ मिलाने ही पड़े।

"बैठो अतिथि, बहुत थके हो न, गरम पानी तुम्हारी थकान को दूर करेगा।" श्री सेमोनियान ने कहा और ल्योपा को इशारा किया कि वह हमारे पैर धो दे। मैने अपने जूते खोलकर पानी के जग की तरफ हाथ बढाया कि ल्योपा ने अपने छोटे भाई वखतागी को पानी का जग पकड़ाते हुए कहा : "तुम धीरे-धीरे पानी डालो, मै पैर धोऊँगी।" ज्यो ही मैने यह सुना, मेरा मुँह सकोच और आश्चर्य से लाल हो गया।

अपने पैर कुर्सी के नीचे की तरफ सिकोडते हुए मैने कहा : "नही, नही। मै स्वय अपने हाथ से ही अपने पेर धोऊँगा।" पर यह बात स्वीकार नही की गयी।

"आप हमारे अतिथि जो है। हमारे यहाँ आतिथ्य की यही रीति है। यदि आप हमारा आतिथ्य स्वीकार नही करेगे, तो इस घर मे कोई सोयेगा भी नही।" लेकिन मुझे संकोच होता है। मै अपने घर पर अपनी माँ, बहन या पत्नी से भी पैर नही धुलवाता।" मुझे आश्चर्य हो रहा था, इस परम्परा पर। भारत मे ऐसा माना जाता रहा है कि भगवान्, माता-पिता, गुरु और अतिथि का चरणामृत पीना चाहिए''और उनके पैर धोने चाहिए। परन्तु सोवियत देश मे इस परम्परा के जीवत दर्शन होगे, ऐसी कल्पना मुझे नही थी। ल्योपा बोली : "यह सकोच फिर क्या बला है? क्या आप भारत से उसे गठरी मे बॉधकर लाये है। मैने सुना था कि भारत की लड़कियॉ बडी शर्मीली होती है, पर देख रही हूँ कि भारत के युवक भी शरमाते है।" मैने ऐसे प्रहारात्मक उत्तर की अपेक्षा नही की थी। आखिर हमे झुकना पड़ा और ल्योपा के कोमल हाथो से हमारे पैर धुले। "आपने मेरा आग्रह स्वीकार किया, मुझे अतिथि-सेवा का अवसर दिया, उसके लिए मैं आपकी कृतज्ञ हूँ।"—यह कहते हुए ल्योपा ने तौलिये से हमारे पैर पोछे।

यह खाना ! यह पीना !!

●

सोवियत लोग खाने-पीने मे बहुत तगडे होते है। उनका खाना शाम को छह बजे शुरू होगा, तो रात के बारह-एक बजे तक चलता रहेगा। खाने की टेबुल पर सभाएँ होगी, भाषण होगे, नाचना-गाना चलेगा। हमारे स्वागत मे उत्सव जैसा ही आयोजित होता था। भोजन की मेज पर १५-२० प्रमुख व्यक्ति आमन्त्रित किये जाते थे। पुलाव, हाचापूरी, रागृ आदि का भोजन बनता। भोजन की मेज पर कहाँ कौन बैठेगा, इसका निर्णय होता। कही सभी महिलाएँ एक तरफ और पुरुष एक तरफ बैठे, ऐसा न हो जाय। एक महिला और एक पुरुष इस तरह से मेज पर सबके बैठने के बाद भोजन-समारोह के लिए अध्यक्ष का चुनाव होता। ये अध्यक्ष महोदय मदिरा का प्याला हाथ मे लेकर 'तोस्त' की घोषणा करते हुए टेबुल के अन्य सदस्यो के साथ एक-दूसरे के स्वास्थ्य की कामना करते। ५-६ घण्टे के अन्दर ये लोग मदिरा की ३०-३५ प्यालियाँ पी जाते। हमे आश्चर्य होता था वह सब देखकर। हमारे लिए यह सब नया था। हम अगर पीने के लिए पानी माँगते, तो लोग कहते : "पानी ? क्या पानी भी कोई पीने की चीज है ? हम पानी नहीं, अगूरों की मदिरा पीते है। पानी तो धोने-धाने के लिए है।"

हम मदिरा पीने के आदी नही थे। चाय-काफी से काम चलाते। परन्तु एक दिन तो हम भी बच नहीं पाये। घटना यो घटी कि हमारे मेजबान ने कहा : "जरा घर के पीछे चलेगे ?" हम उनके साथ गये। मेजबान ने हमारे हाथ मे कुदाली पकडायी और कहा : "जरा यहाँ से थोड़ा खोदिये।" हमने वैसा ही किया—थोडा खोदने पर एक बहुत बडा घडा जमीन मे से निकला। उसका मुँह ढका था। हमारे हाथ से मुँह खुलवाया गया। हमे बडी तेज गन्ध आयी, पर हमारे पास खडे

लोग कह रहे थे कि "बडी अच्छी खुशबू आ रही है।" हमारे मेजवान ने घड़े मे से दो प्यालियाँ भरी और हमारे हाथ मे पकड़ाते हुए कहा: "आज मदिरा के मौसम की शुरुआत होती है। हम किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा इसका उद्घाटन करवाते है। हमारे परम सौभाग्य से आज आप हमारे घर पर है। अतः आपको ही हमने उद्घाटन के लिए बुलाया है। यह पहली प्याली आपको ही पीनी पड़ेगी।"

"लेकिन हमने तो कभी अपने जीवन मे मदिरा को छुआ भी नही। हमे मदिरा पीने की आदत नही।" हमने यह तर्क दिया। इससे हमारे सभी मेजवान और अन्य साथी एकदम निराश हो गये। उनके लिए तो यह बड़ा अपशकुन और अपमान का प्रसङ्ग था। हमे लगा कि हम उनके मन को बहुत चोट पहुंचा रहे है।

"ऐसा नही हो सकता।" पास ही खड़े सामूहिक कृषि फार्म, कोल-खोज के अध्यक्ष ने कहा: "आज तो आपको पीना ही पडेगा। भारत और रूस की मित्रता के नाम पर पीना होगा।" हम उन्हे कैसे समझाते?

"हम आपकी परम्परा को तोड़ना नहीं चाहते। पर हमे मदिरा की गन्ध से ही सिर-दर्द हो रहा है, पीना कैसे सम्भव हो पायेगा?"—हमने ऐसा तर्क किया।

हमारे मेजवान इस पर बोले: "यह अगूर की मदिरा आपके स्वास्थ्य को नुकसान नही पहुँचायेगी। यदि आपको पीने की आदत नही, तो आज एक घूँट ही लीजिये। यदि आप नही पीयेगे तो यह सारा उद्घाटन-समारोह ही विगड जायगा।" हम बड़े धर्मसकट की स्थिति मे पड़ गये। चारो तरफ से हम ऐसे घिर गये कि कोई रास्ता ही नहीं दीख रहा था। "या तो आपको पीना होगा, अन्यथा हममे से कोई नही पीयेगा।" मेजवान की सबसे बडी पुत्री माशा ने कहा। और स्वयं माशा भी मदिरा की प्याली हाथ मे लेकर आ गयी। सब लोगो ने अपने हाथो मे प्यालियाँ लेकर हाथ ऊपर उठाये। हमारे सामने कोई

चारा नहीं था। आखिर उनके साथ सहसा हमारे हाथ भी ऊपर उठ गये। हम कुछ भी सोचने और निर्णय करने की स्थिति मे नही थे। सबने करतल-ध्वनि की। एक जबर्दस्त कहकहे के बीच हमारे अधरो तक मदिरा की प्याली पहुँची। दो घूँट गले से नीचे उतर गये! "आपके जीवन का यह भी एक नया अनुभव है।"—माशा ने हँसते हुए मेरे कान के पास अपना मुखडा सटाते हुए कहा। माशा और मदिरा!

वह टैक्सी ड्राइवर

●

स्तालिन की जन्मभूमि गोरी नाम के नगर मे हम ठहरे थे। रात के बारह बज गये। मै पलंग पर सो गया था और प्रभाकर कुछ चिट्ठियाँ लिख रहे थे कि किसीने दरवाजा खटखटाया। "रात को १२ बजे कौन द्वार खटखटा रहा है?" सहज जिज्ञासा हुई। बाहर घनी रात्रि ने धरती पर काली चादर बिछा रखी थी। बर्फीली हवा के झोको के कारण हमारे कमरे की खिड़की कभी-कभी खट-खट करने लगती थी। इतने मे दुबारा दरवाजे पर दस्तक हुई। जरूर कोई बाहर खडा है, यह सोचकर प्रभाकर ने द्वार खोला। एक अधेड उम्र का हट्टा-कट्टा व्यक्ति बाहर खड़ा था।

"क्या चाहिए आपको? क्या हम आपकी कोई मदद कर सकते है?" प्रभाकर ने पूछा।

आगन्तुक ने कहा : "क्या आप ही हैं भारत से आये हुए शान्ति-यात्री?" और फिर उसने बताया कि अखबारो से तथा मास्को रेडियो से वह हमारे बारे मे जानता था। "आज मैने आपको रास्ते चलते देखा। बर्फ पड रही थी, पर आप दोनो चल रहे थे। आपसे मिलने की इच्छा हुई। मै एक टैक्सी ड्राइवर हूँ। आपकी शान्ति-यात्रा के लिए कुछ मदद करना चाहता हूँ। आज टैक्सी चलाकर ३० रूबल (१०० रुपये से अधिक) मैने कमाये है। इसमे से २० रूबल मै इस शान्ति-यात्रा

के लिए देना चाहता हूँ।" नोट आगे करते हुए वह टैक्सी ड्राइवर बोला : "इसे आप स्वीकार करे।" जब उसे समझाया गया कि हम पैसा साथ नही रखते आर न किसीके देने पर स्वीकार ही करते है, तो वह बेचारा थोडा निराश हुआ। बोला : "बिना पैसे के इतनी लम्बी यात्रा कैसे सम्भव है ? कभी वक्त-बे-वक्त ये पैसे काम देगे।" हमारे सर्वथा इनकार करने पर वह बोला : "अच्छा, आप पैसा नही लेते, तो मेरा दूसरा निवेदन स्वीकार कीजिये। पैदल तो आप प्रतिदिन ही चलते है। कल मेरी ही टैक्सी मे आइये। मै आपको अगले पडाव तक पहुँचा दूँगा।"

हमने समझाया कि "टैक्सी मे जाना भी हमारी यात्रा के क्रम को भग करना होगा। अतः आप हमे क्षमा करे।" इस पर तो वह बहुत ही परेशान हुआ। रात को १२ बजे जो व्यक्ति ढूँढ़ते-ढूँढते किसी तरह हम तक पहुँचा और उसकी तमन्ना पूरी न हो सकी, इससे उसका परेशान होना सम्भव ही था। पर जाते-जाते टैक्सी ड्राइवर कहता गया कि "कोई बात नही। भले ही इस रूप मे मै आपकी मदद नही कर सका। लेकिन मै भी अणु-अस्त्रो के और युद्ध के खिलाफ हूँ। मै अपने देश की सरकार से और जनता से कहूँगा कि वे आपकी नीति को स्वीकार कर ले।" कैसा शान्तिवादी था वह टैक्सी ड्राइवर !

स्मोलेंस्क में !

●

नीपर नदी की तेज धारा मे झाँकती हुई इस प्राचीन स्मोलेंस्क नगरी का रूप फिर से नया होकर निखरने जा रहा था। जिस नीपर सरिता की धारा ने नेपोलियन की सेना को भी उदरसात् कर दिया था, वह भी आखिरकार इस नगरी को दूसरे महायुद्ध द्वारा कवलित होने मे बचा नही सकी। श्रीमती स्कोल्कोवा बहन ने स्मोलेंस्क की परिक्रमा करते हुए बताया कि "इतिहास मे इस शहर का युद्ध के साथ चोली-दामन

का-सा सम्बन्ध रहा है। यह शहर बीसो बार युद्ध के कारण आक्रांत हुआ और पिछले महायुद्ध मे तो ९३ प्रतिशत हिस्सा धराशायी होकर मिट्टी मे मिल गया था। पर हमने अपने श्रम से उसे फिर से सजाया-सँवारा है। हम श्रमिक हैं और श्रमिक कभी भी श्रम से हारता नही। हम अब फिर से किसी युद्ध की कल्पना भी नही करना चाहते। हम मिट-मिटकर भी जिन्दा हुए, क्योंकि हम एक सुखद और शान्तिमय मानव-जीवन की बुनियाद को दृढ करना चाहते है।" हम जब नगर-दर्शन के लिए घूम रहे थे, तो हलकी-हलकी बर्फ पड रही थी। साधारणतः मार्च महीने के तीसरे सप्ताह के बाद बर्फ बन्द हो जाया करती है, लेकिन इस वर्ष की सर्दी ने अपना भयकर रूप दिखाया। अप्रैल प्रारम्भ हो गया, फिर भी तापमान शून्य से नीचे था। स्कोलकोवा बहन से मैने पूछा : "हमे आप कुछ सोवियत-नारी के बारे मे भी बताइये।"

"स्त्रियों के स्वावलम्बन तथा पुरुषों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने की उनकी शक्ति का समुचित उपयोग करने के प्रयत्न मे सोवियत-सघ दुनिया के सभी देशो से आगे है। अध्यापिका और परिचारिका से आगे बढकर औद्योगिक सस्थानो, कृषि-फार्मों और मशीन-निर्माण तक के कामो मे हमारे यहाँ ३० से ४० प्रतिशत तक स्त्रियाँ है। हमारे देश की १६ वर्ष से लेकर ५४ वर्ष तक की आयुवाली ८० प्रतिशत स्त्रियाँ कल-कारखानो और स्कूलो, अस्पतालो मे काम करती है।" श्रीमती स्कोलकोवा बहन ने जब यह बताया तो मुझे आश्चर्य हुआ।

मैने पूछा : "फिर घर-परिवार की व्यवस्था कैसे चलती है?"

"यही तो हमारी विशेषता है। हम सोवियत-स्त्रियाँ चौके-चूल्हे से लेकर घर-परिवार और दांपत्य तक की सभी जिम्मेदारियाँ सँभालती है। बेशक, हमारे पति भी घर के काम मे हमारी मदद करते है। यदि पत्नी खाना बनाती है, तो पति घर की सफाई कर लेता है, प्लेटें धो लेता है, कपडे धो लेता है। पर इन कामो के लिए कोई नौकर रखने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। हमारे यहाँ स्त्री का अपना एक स्वतन्त्र

अस्तित्व है। स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। बच्चे पैदा करनेवाली मशीन या पति-सेवा करनेवाली दासी मात्र बनकर हमारे देश मे स्त्री रहती थी। पर अब वह बीते युग की कथा बन गयी है।"

वसीली के घर

●

एक दिन हम एक वृद्ध किसान का आग्रह स्वीकार करके सडक से दो मील दूर जाकर उसके घर पर ठहरे। उस दिन हम २१ मील चल चुके थे। फिर सड़क से दो मील गॉव मे जाने का उत्साह नही हो रहा था। पर उस वृद्ध ग्रामीण श्री आब्रामोविच वसीली ने कहा : "आज मेरे अतिथि बनकर मुझे उपकृत कीजिये। थक गये है तो थोडी देर यही पर आराम कर लीजिये। आपका सामान मै उठा लूँगा।" उसके स्नेह-सिंचित हृदय से निकले हुए निवेदन पर हम इनकार नही कर सके।

हम चल पड़े श्री वसीली के पीछे-पीछे। उनके पैरो मे एक नया जोश आ गया था। "हमारे गॉव मे आप सबसे पहले विदेशी है।" श्री वसीली ने कहा। भारत हमारा मित्र देश है। "हम भारत से बहुत प्यार करते है।" वसीली भारत के बारे मे बहुत कुछ पूछने लगे। इतने मे किसीको पुकारते हुए वसीली ने कहा : "ओ इवान, देखो हमारे घर आज भारत के दो अतिथि है। रात को आना हमारे घर।" थोड़ी देर बाद किसी और को भी इसी तरह उसने सूचना दी। हमारा सामान उठाकर हमारे आगे-आगे श्री वसीली चलते जा रहे थे और गॉवभर को सूचना देते जा रहे थे। "यही है मेरा गॉव पेतकोविची। और यह है मेरी कुटिया।" श्री वसीली ने अपनी पुत्री और पत्नी से मिलाते हुए हमे कहा : "यह है मेरा छोटा-सा परिवार।" गॉव के स्कूल मे एक बडी सभा हुई। रात को हमने देखा कि श्री वसीली ने अपने लिए, पत्नी और पुत्री के लिए जमीन पर ही बिस्तर लगाया है। दोनो पलगो पर हमारे लिए सोने का प्रबन्ध किया है। "आप वृद्ध

है। आपको पलंग पर सोना चाहिए, हम नीचे सो जायेंगे।" ऐसा हमने आग्रह किया, पर वसीली यह मानने को तैयार नहीं थे कि उनके अतिथि नीचे सोये।

इसी तरह लगभग हर गाँव की कहानी है। प्रत्येक पड़ाव हमारे लिए एक नया अनुभव, एक मीठा संस्मरण और एक स्फूर्तिमान् प्रेरणा था।

मिंस्क में

●

श्वेत रूस की राजधानी मिंस्क में भी हमने दो दिन बिताये। आठ किलोमीटर लम्बे, मिंस्क नगर के सर्वप्रमुख राजपथ, लेनिन-मार्ग की शोभा सचमुच चित्त को आकर्षित करनेवाली थी। मिंस्क पहुँचते-पहुँचते मौसम भी काफी बदल गया था। बर्फ पिघलकर पानी बन रहा था। नदियों से कल-कल स्वर सुनाई पड़ने लगा था। जाडे की खुमारी उतर चुकी थी। इसलिए मिंस्क शहर को देखने का पूरा आनन्द हम उठा सके। याका-कुपाला जैसे महान् विचारकों और साहित्यकारों को पैदा करनेवाली श्वेत रूस की धरती को जब हमने प्रणाम किया, तो आकाश से धुँधले बादल फट चुके थे और सूरज अपनी सुनहरी किरणों से धरती का आलिंगन कर रहा था। पेड़-पौधों पर नन्हीं-नन्हीं कोपलें फूटने लगी थीं और जमीन में से पीले तथा आसमानी रंग के सुन्दर पुष्प अंगडाइयाँ भर-भरकर उगने लगे थे।

"मिंस्क शहर भी स्मोलेंस्क की तरह ही रण-क्षेत्र रहा है और आज जो कुछ देख रहे हैं, वह सब युद्ध के बाद का निर्माण है। युद्ध-कवलित मिंस्क सन् १९४४ में एक खण्डहर जैसा प्रतीत होता था।" बहन लुद्-मीला ने हमें मिंस्क शहर की परिक्रमा करते समय बताया। हमने विज्ञान-अकादमी, मिंस्क विश्व-विद्यालय, संस्कृति भवन आदि के अलावा युद्ध-कालीन घटनाओं, चित्रों, वस्तुओं आदि का संग्रहालय विशेष दिलचस्पी में देखा। बड़ी-बड़ी चिमनियों से उठनेवाले धुएँ को देखकर यह सहज

अनुमान होता है कि यह एक औद्योगिक नगर है। यहाँ मिलें और कारखानों का एक जाल-सा बिछा है।

"हमारे देश के सभी स्त्री-पुरुषों के लिए ७ घण्टे काम करना अनिवार्य है। दूकान, मकान या कारखाना हर चीज पर समाज का स्वामित्व है। टैक्सी हो या हजामत बनाने की दूकान, सब कुछ समाज का है। इस समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति समाज का पोषक है। हर चीज का मूल्य निर्धारित है। कभी किसी चीज के लिए विवाद की गुंजाइश नहीं, क्योंकि हर व्यक्ति समाज के एक निश्चित क्रम के अनुसार अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए काम कर रहा है, किसीका शोषण करना या पैसा बनाना उसका उद्देश्य नहीं। इसलिए छोटे-मोटे विवाद उठते ही नहीं। रुपया-पैसा तो केवल विनिमय का साधन मात्र है। वह कोई संग्रह की चीज नहीं।" हमारी बातचीत के दौरान में लुद्मीला बहन यह सब बता रही थी। हम स्विसलोच नदी के किनारे स्थित विजय प्रांगण में भी गये। बगल की ओर झाँकते ही दीखता है एक गोल भवन। यह है मिंस्क का सुप्रसिद्ध आपेरा थियेटर। भारत के राष्ट्रीय नृत्य—मणिपुरी, कत्थकली या भरतनाट्यम् देखने के बाद इस देश की राष्ट्रीय नृत्य-शैली बैले देखने की उत्सुकता स्वाभाविक थी। इसीलिए हमारे कार्यक्रम में बैले भी शामिल किया गया।

सोवियत देश में सिनेमा से भी अधिक नाट्य थियेटर है। नाट्यमंच कलासम्पन्न है। हमने येरेवान, त्बीलीसी, कुताईसी, मास्को जैसे शहरों के आपेरा थियेटर देखे, वहाँ के नाचघर देखे और हम वहाँ के कुछ कलाकारों से भी मिले। विश्व-प्रसिद्ध बाल्शोय थियेटर, मास्को के कलाकार माया प्लसेत्स्काया द्वारा प्रस्तुत बैले देखकर तो कोई भी मंत्र-मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। हमारे लिए वह सन्ध्या एक अविस्मरणीय सन्ध्या है। कुताईसी के नाट्यमंच-निर्देशक ने हमें बताया कि वे निकट भविष्य में 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का अभिनय मंच पर प्रस्तुत करनेवाले हैं। कुताईसी में हमने जो नाटक देखा, वह बहुत आकर्षक और कला की

दृष्टि से उच्चकोटि का था। बड़े शहरो मे ही नही, छोटे-छोटे नगरो मे भी ऐसे सुन्दर थियेटर है, जैसे शायद हमारे यहाँ जयपुर, लखनऊ, बनारस जैसे शहरो मे भी नही होगे। इससे यहाँ की नाट्यकला की प्रगति का सहज अनुमान किया जा सकता है। सिनेमा की कला मे विज्ञान के कारण मनुष्य की स्वाभाविक कला उतनी निखर नही पाती। उसमे कैमरे का चमत्कार अधिक होता है। परन्तु नाट्यकला मे मनुष्य अपने भावो को अभिव्यक्त करने की कला मे अत्यधिक प्रवीणता प्राप्त कर सकता है।

सोवियत सघ मे धार्मिक सम्प्रदायो, मजहबो और चर्चो की क्या स्थिति है, इसका भी मैंने गहराई से अध्ययन करने की कोशिश की। यद्यपि कम्युनिस्ट पार्टी धर्म-विरोधी है और धर्म के खिलाफ प्रचार भी करती है, पर सरकार की ओर से धर्म-प्रेमियो को हतोत्साह नहीं किया जाता। वे खुले तौर पर धार्मिक प्रचार नहीं कर सकते, लेकिन व्यक्तिगत तौर पर धर्माचरण कर सकते है। लेकिन जैसे गड्ढे मे एकत्र पानी सुखा दिया जाय, तो मेढक बिना मारे ही मर जायँगे, वैसे ही विज्ञान और भौतिकवाद पर आधृत शिक्षा के कारण पन्थवाद और धर्मान्धता अपने-आप मूर्छित होती जा रही है। उसके लिए किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं। हम जब देहाती घरो मे ठहरते थे, तो देखते थे कि गाँवो के किसान अपने-अपने घर मे ईसामसीह के चित्र टाँगकर रखते है और सुबह-शाम उसके सामने कन्दील भी जलाते है। हाँ, शहरो मे तथा पढे-लिखे युवको मे धर्म के प्रति कोई रुचि दिखाई नहीं पडी। चर्च और पादरी आय तथा प्रतिष्ठा के अभाव मे सहज कम होते जा रहे है। यदि कही पर नजदीक-नजदीक कई चर्च होते है तो उनमे से एक चर्च प्रार्थना करनेवालो के लिए छोड़ दिया जाता है, बाकी चर्चों का उपयोग क्लब, सिनेमाहाल, संग्रहालय, विद्यालय आदि के रूप मे किया जा रहा है। बाईस करोड़ की आबादीवाले इस देश मे कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य केवल एक करोड है। पार्टी का सदस्य वही बन सकता

है, जो सचमुच उसके योग्य हो। इसलिए जनता के विकसित बौद्धिक स्तर तथा शिक्षण मे विज्ञान और भौतिकवाद के बाहुल्य के कारण धर्म-सम्प्रदाय प्रभावहीन हो गये है।
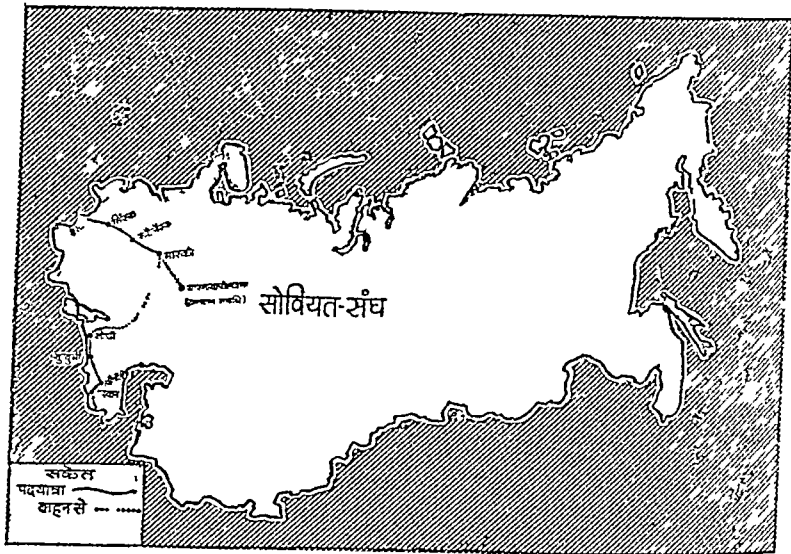
वह १ जनवरी १९६३ का अरुणोदय था, जब हमने सोवियत-सघ मे प्रवेश किया। नव-वर्ष के उत्सव मे सम्पूर्ण सोवियत-भूमि निमग्न थी। पहली मई को जब हम विदा हुए, उस समय मजदूर-दिवस का त्यौहार मनाने मे सारा देश जुटा था। इन दो बडे पर्वो के बीच चार महीने बीत गये। सोवियत-देश के पॉच गणतन्त्रो मे हम रहे। हजारो लोगो से मिले। हमारे मित्रो की सूची मे रूस के सैकडो नाम जुड गये। ऐसा लगता था, मानो हम बहुत लम्बे अर्से से इसी देश मे थे। इस देश से विदा होते समय उन सैकडों मित्रो के चेहरे एक-एक करके याद आते थे, जिन्होने रास्ते मे साथ चलते समय, घर मे भोजन करते समय, सभाओं मे भाषण करते समय अपना पता लिखकर दिया, हमारे कुरते पर मित्रता का 'बैज' लगाया, हमारे गले मे दोस्ती की टाई बॉधी, हमे फिर से आने का निमंत्रण दिया, कभी-कभी पत्र लिखते रहने का आग्रह किया, युद्ध

नीचे सोकर हमे पलंग पर सुलाया, हमारे पिता बनकर खाने-पीने और सोने की चिन्ता की, शान्ति के सिपाही बनकर हमारे साथ ही चल पड़ने की तैयारी दिखायी; चाकलेट, सूखे मेवे और फलो से हमारी जेबे भरकर हमे अपने घर से बिदा किया, अपने स्नेह और प्यार से हमे लाद दिया, हमारे आगमन पर नाना प्रकार से उत्सव मनाये, स्वागत-भोज आयोजित किये और न जाने क्या-क्या किया ! एक-एक दिन हमारे लिए एक अविस्मरणीय घटना है। हमने १२० दिनो की इस सुखद यात्रा मे अनुभवो का, संस्मरणो का, मित्रो का और लोगो के प्यार का अनुपम खजाना पाया।

दो करोड बीस लाख वर्ग किलोमीटर मे फैले हुए इस विशाल देश के २२ करोड़ लोगो तक हमारी शान्ति-यात्रा की बात पहुँचाने के लिए, अखबार, रेडियो, टेलीविजन आदि साधनो ने हर जगह हमारा साथ दिया। इस देश के विभिन्न गॉवो और शहरो की पैदल यात्रा के बाद ऐसा प्रभाव हमारे मन पर पडा कि सम्पूर्ण भूखण्ड के छठे हिस्से मे बसे हुए इस सोवियत-देश की जनता युद्ध के खिलाफ है और वह हर कीमत पर शान्ति चाहती है। पूर्व से पश्चिम तक १० हजार किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण तक ५ हजार किलोमीटर मे विस्तृत इस देश को हम जब एक किनारे पर खड़े होकर देख रहे है, तब इस देश की वह सर्वप्रिय कविता कानो मे गूँज उठती है :

"स्प्रासीत्य वी उचिश्ने !
खात्यात् ली रूसकीये वाइने ?"

यह कविता हर स्त्री और पुरुष के मुँह हमे सुनने को मिली : 'क्या रूसी जनता युद्ध चाहती है ?' नार्वे, फिनलैंड, पोलैंड, चेकोस्लावाकिया, हगरी, रूमानिया, तुर्की, ईरान, अफगानिस्तान, मगोलिया, चीन और कोरिया—इन बारह देशो की सीमाओ को छूता हुआ १५ सोवियत गणतन्त्रोवाला यह महादेश क्या युद्ध चाहता है ? जिस देश मे युद्ध का समर्थन कानूनन अपराध घोषित किया गया है, वह देश क्या युद्ध

चाहता है ? जिस देश मे विज्ञान और टेक्नालॉजी ने चरम सीमा तक प्रगति की है और जहाँ कोयला, लोहा, लकडी आदि प्राकृतिक साधन भरपूर है, उस देश को क्या युद्ध की आवश्यकता है ? जिस देश को युद्ध के अनेक आघातो ने आतकित किया और जहाँ एक भी परिवार ऐसा मुश्किल से मिलेगा, जिसका कोई-न-कोई सदस्य युद्ध-पीड़ित न हुआ हो, उस देश को क्या फिर से युद्ध देखने की आकाक्षा हो सकती है ? जिस देश के दो करोड़ मानव दूसरे महायुद्ध के शिकार होकर मौत के घाट उतर चुके हो, वहाँ क्या फिर से युद्ध की हवस हो सकती है ? इन प्रश्नो का केवल एक ही उत्तर हमे मिला : "नही, और कभी नही।" फिर भी क्यो नही यह देश निःशस्त्रीकरण की दिशा मे आगे कदम वढाता ?

यह प्रश्न हमने जनता के सामने भी रखा और सरकार के सामने भी। हमे इस प्रश्न का जो उत्तर मिला, उसका सार यही था कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे उच्चतम स्तर पर वैज्ञानिक और भौतिक संघर्ष मे अपने वडे प्रतिद्वन्द्वी से जूझनेवाला यह देश निःशस्त्रीकरण के मार्ग पर अकेले आगे वढने का कदम उठायेगा, तो वह सम्पूर्ण देश के लिए एक वडा खतरा होगा। पर साथ ही शान्ति और अहिंसा के क्षेत्र मे गम्भीरता से सोचने-समझनेवाले लोगो ने हमसे कहा कि भारत जैसा अहिसावादी और अपेक्षाकृत अल्प साधनोवाला देश, जिसे कभी किसी महायुद्ध का भी सामना नही करना पडा, और जहाँ बुद्ध तथा गाधी की मजबूत विचार-परम्परा भी रही है, जब एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण का साहस नही कर सकता, तो सोवियत-संघ के लिए ऐसा खतरा उठाना तो नितान्त कठिन है।

तर्क से तो ऊपर की वात भले कुछ जंचे, पर निःशस्त्रीकरण की तरफ पहल न कर सकने का सवसे वडा कारण है अविश्वास और भय। हमने यह अविश्वास और भय हर जगह पाया। रूसी जर्मनो से डरते है और जर्मन कम्युनिस्टो से डरते है। जो डर भारत और पाकिस्तान मे है, वही डर रूस और अमेरिका मे भी है। जहाँ भय है, अविश्वास है, वहाँ निःशस्त्रीकरण कैसे सम्भव हो सकता है ? सव जानते है कि इस अणु-

युग मे चाहे जैसा शक्तिशाली देश भी युद्ध मे विजय नही पा सकता। यदि युद्ध होगा तो दोनो पक्ष मारे जायेगे, सारी मानव-जाति मारी जायगी। फिर भी डर के कारण निःशस्त्रीकरण करने का साहस किसीको नही हो रहा है।

इसके बावजूद सोवियत सरकार और जनता के शान्तिवादी प्रयत्नो ने हमारे मन पर एक जबरदस्त प्रभाव डाला। हम अपनी इस सोवियत-यात्रा को कभी भूल नही सकते।

पोलैंड की
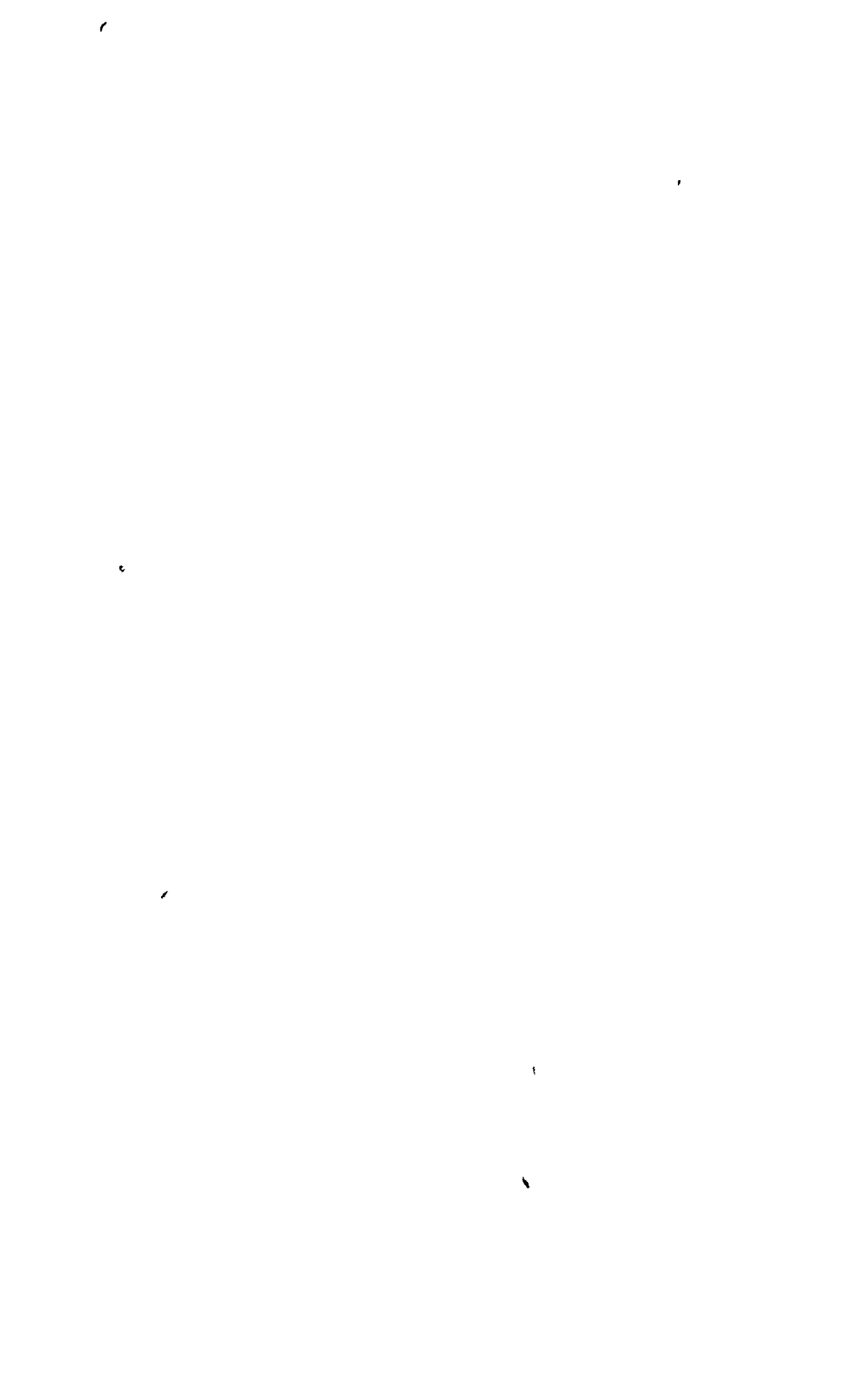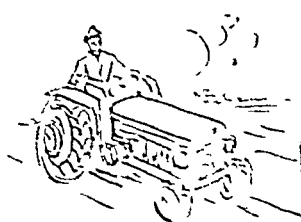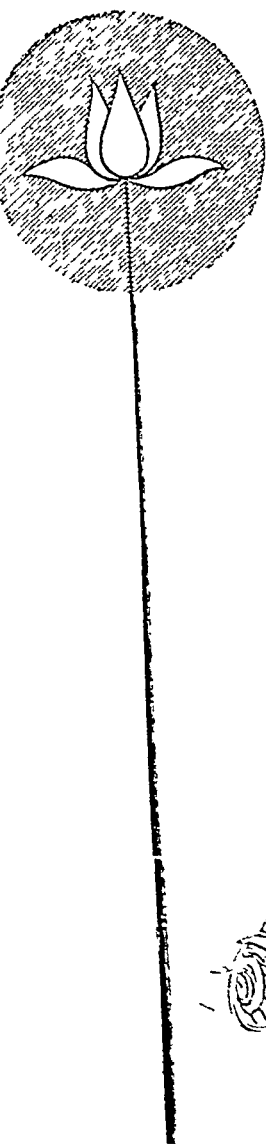
प्राणवान जनता के बीच

पोलैण्ड शान्ति-परिषद् के मन्त्री श्री तादेउस स्त्रालकोव्स्की ने हमारा स्वागत करते हुए कहा : "युद्ध के आघात ने हमारा अंग-अंग क्षत-विक्षत कर दिया है, हमारा रोम-रोम जला डाला है। हमारी जीवन-व्यवस्था कुचल डाली है। तीन करोड की आबादीवाले छोटे-से देश को ६० लाख लोगो की मृत्यु का दुःख झेलना पडा। किसी तरह उस आघात से सँभलकर अब हम उठ रहे है और अपनी समाज-व्यवस्था को ठीक रास्ते पर ला रहे हैं। पर आज जिस शीत-युद्ध के अन्धेरे मे हम खोये हुए है, उस अन्धेरे को मिटाना बहुत जरूरी है। इसलिए आपकी इस शान्ति-यात्रा का हम हृदय से स्वागत करते है।" श्री स्त्रालकोव्स्की पोलैण्ड की पार्लियामेण्ट के सदस्य है और इस देश मे शान्ति-आन्दोलन के प्रमुख संगठन-कर्ता है। वारसा मे हम शान्ति-परिषद् के अतिथि थे, इसलिए श्री स्त्रालकोव्स्की से हमारा निकट परिचय हुआ। वे कहने लगे : "हमारे देश मे एक कहावत है : 'घर मे अतिथि आया, मानो भगवान् आया।' फिर आप लोग तो केवल अतिथि नही, बल्कि हमारी भावना को, हमारी आकाक्षा को और हमारे आन्दोलन को गॉव-गॉव और देश-देश मे पहुँचानेवाले सदेशवाहक है। आप हमारी ओर से सबको यह सदेश दीजिये कि पोलैण्डवासी अगर किसी चीज से जबर्दस्त नफरत करते है, तो वह युद्ध है। अगर किसी चीज से अत्यन्त प्यार करते है, तो वह शान्ति है।" श्री स्त्रालकोव्स्की उमंगो से भरे हुए युवक हैं। उन्होने दो बार भारत की यात्रा की है। भारत क्या है, इसे उन्होने बारीकी से देखा-समझा है। उन्होने अपनी यात्रा के दौरान मे भारत के विभिन्न स्थलो के १२ सौ फोटो उतारे है और भारत की विभिन्न सास्कृतिक परम्पराओ का परिचय देनेवाला एक चलचित्र भी बनाया है।

मित्रता का पुल

●

भारत-पोलैण्ड मित्रता सघ मे बितायी हुई ९ मई की सध्या हमारे वारसा-प्रवास की एक संस्मरणीय सन्ध्या है। दोनो देशो की मित्रता को

मजबूत आधार प्रदान करने के लिए इस सस्था का उल्लेखनीय महत्त्व है। ९ मई को विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जन्म-दिवस पर अनेक भारतीय और पोलिश विद्वान् उपस्थित थे। इस सघ के उपाध्यक्ष श्री स्तानीस्वाव याब्वोन्स्की ने कहा : "स्थायी शान्ति के लिए और युद्ध की सम्भावनाओ को जडमूल से समाप्त करने के लिए विभिन्न देशो के बीच एक पुल होना चाहिए। वह पुल 'मित्रता' का पुल है। यह संस्था दो देशो की 'मित्रता' का घर है और इस घर मे से संसारभर के देशो के लिए 'मित्रता' का प्रवाह निकलेगा, ऐसी हमारी कोशिश है। हम केवल एक ही लक्ष्य के उपासक है—मित्रता। और मित्रता का लक्ष्य सिद्ध होते ही दूसरे सभी लक्ष्य सहज सिद्ध हो जायेगे। श्री याब्वोन्स्की पिछले २० वर्षों से शाकाहारी है। क्योकि वे अहिसा की दिशा मे बढने के लिए शाकाहारी होना पहला कदम मानते है। बापू की आत्मकथा ने उनके विचारो को अहिसा के बहुत निकट ला दिया है और अब वे बहुत सूक्ष्मता से अहिंसा के विचारो का अध्ययन करते है। बातचीत के दौरान मे उन्होने कहा : "मै ६५ वर्प का बूढा हूँ, पर मासाहार करनेवाले मेरी उम्र के दूसरे साथियो से मेरा स्वास्थ्य कही बेहतर है। शाकाहार केवल अहिसा और सात्त्विक चिन्तन के लिए ही सहायक नहीं, बल्कि स्वास्थ्य के लिए भी अनुकूल है।" श्री याब्वोन्स्की के हृदय मे बापू के प्रति जो अगाध श्रद्धा है, उसका कारण बताते हुए उन्होंने
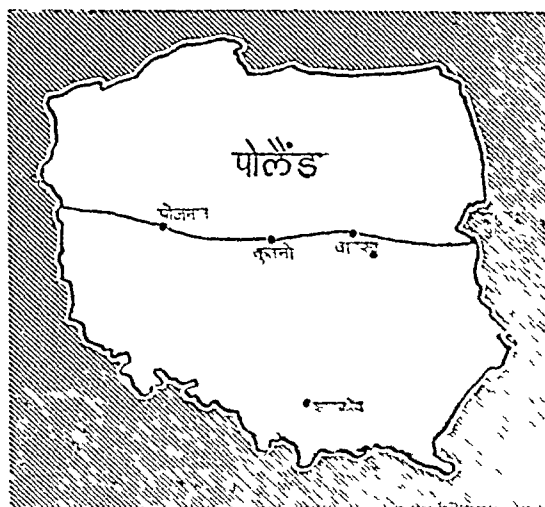
कहा : "गाधी ने अहिसा को व्यावहारिक रूप दिया। यह गाधी की अहिसा का ही परिणाम है कि आज दुनिया आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति का एक नया मार्ग पहचानती है। उन्होने क्रान्ति को मित्रता और शान्ति के साथ जोड़ दिया।" श्री याव्वोन्स्की ने बापू की आत्मा को और उनके विचारो को ठीक-ठीक पहचाना है। पोलैण्ड मे 'बापू की आत्मकथा' अत्यन्त लोकप्रिय पुस्तक है। वारसा मे 'महात्मा गाधी रोड' के नाम से एक प्रमुख सडक भी है।

समाज-व्यवस्था

●

तीन करोड आबादीवाले पोलैण्ड मे सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था का नया प्रयोग चल रहा है। क्रिश्चियन कैथोलिक सघ के अध्यक्ष और पार्लमेंट के सदस्य श्री जान फ्राकोव्स्की ने चर्चा के दौरान मे कहा : "हमारी पार्लमेण्ट मे तीन राजनैतिक पार्टियाँ है, कुछ कैथोलिक सदस्य है और कुछ स्वतन्त्र सदस्य है। सबसे बड़ी पार्टी मार्क्सवादी पार्टी है। शेप लोग मार्क्सवादी नही है। सबसे बडी पार्टी शासन नही करती, बल्कि सभी दलो की मिली-जुली सरकार शासन चलाती है। पार्लमेण्ट मे केवल वही बिल स्वीकृत होता है, जिस पर पार्लमेण्ट के सदस्यो की सर्वसम्मति हो। पार्लमेण्ट मे आने से पहले कोई भी बिल सदस्यो के विभिन्न वर्गो मे बहस के लिए उपस्थित किया जाता है। उस समय एक-एक शब्द पर बारीकी से जमकर बहस होती है। इन वर्गों की बहस के बाद उस बिल का स्वरूप ऐसा हो जाता है, जो सभी सदस्यो को मान्य हो। यो हमारे यहाँ बहुमत का नही, सर्वसम्मति का शासन है। विभिन्न दलो के बीच अनेक मतभेद होते हुए भी हमने देश के पुनर्निर्माण और विकास का एक सर्वसम्मत कार्यक्रम बनाया है और उसी पर हम चल रहे हैं। विभिन्न विरोधी दलो की शक्ति "एक दूसरे दल की निन्दा मे और सत्ता छीनने के प्रयत्नो मे नष्ट करने के बजाय, सभी मिलकर एक सर्व-

सम्मत कार्यक्रम बनाये और समाज के सभी वर्गों और विचारो का प्रतिनिधित्व शासन मे हो, यह हमारी पद्धति है।"—हमे श्री फ्रान्कोव्स्की के इस विवरण मे बहुत दिलचस्पी हुई। यह सर्वसम्मत राष्ट्रीय कार्यक्रम तथा सर्वदलीय शासन की पद्धति है। श्री फ्रान्कोव्स्की ने बताया कि उनके क्षेत्र मे एक लाख मतदाता है। ५ सीटो के लिए ७ उम्मीदवार खड़े है। जिन लोगो को ५० प्रतिशत से अधिक वोट मिलते है, वे विजयी होते है। यदि किसीको ५० प्रतिशत वोट नही मिलेगे, तो वहाँ फिर से नया प्रतिनिधि खड़ा किया जायगा और नये सिरे से चुनाव होगा।

वारसा-प्रवास के एक सप्ताह मे बहन रोजमरी प्रतिदिन हमारे साथ थी। उन्होने वारसा के प्रमुख और दिलचस्प स्थान हमे दिखाये। वे हमे पोलैण्ड के महान् संगीताचार्य श्री शापेन के जन्म-स्थान पर भी ले गयी। पोलैण्ड की आर्थिक व्यवस्था का परिचय देते हुए उन्होने हमे बताया कि "उनका देश समाजवादी देश है। कम्युनिज्म उनका आदर्श है। उन्होने कहा कि उस दिशा मे समाज का परिवर्तन करने के लिए हमने पूरी तरह से जनतन्त्रात्मक मार्ग अपनाया है। हमारे यहाँ किसी तरह की रक्त-क्रान्ति नही हुई। जमीन पर यहाँ व्यक्तिगत खेती होती है। सामूहिक खेती के विचार को जनता ने स्वीकार नहीं किया है। एक आदमी अधिक-से-अधिक ५० हेक्टर भूमि रख सकता है। पर साधारणतः लोगो के पास १५ से ३० हेक्टर के बीच जमीन है। दूकाने, मकान और कारखाने भी व्यक्तिगत हो सकते है। व्यक्तिगत कारखानो मे ५० व्यक्तियो से अधिक कामगार नही रखे जा सकते, ताकि व्यक्तिगत उद्योग शोषण का अथवा प्रचुर अर्थ-सग्रह का साधन न बन जाय। यदि ५० व्यक्तियो से अधिक कामगार किसी दूकान, होटल, कारखाना या कम्पनी मे है, तो उसे सहयोगी समिति के अन्तर्गत लाना होगा, अथवा उसे सरकार स्वयं चलायेगी। हमारे यहाँ काफी बड़े-बडे सहयोगी संस्थान है। उनमे सरकार का किसी भी तरह से सीधा हस्तक्षेप नहीं है। व्यक्ति को विकेन्द्रित रूप से और स्वतन्त्रतापूर्वक काम करने का अवसर है बशर्ते कि वह

समाज पर हावी होने का, स्वार्थ साधने का या शोपण करने का प्रयत्न न करे।"

बहन रोजमरी की चित्रकार सहेली सोसान्ना के घर पर बिताये हुए चार घण्टे हमारे मन पर एक मधुर स्मृति अंकित कर गये। बहन सोसान्ना ने हमे स्वादिष्ट शाकाहारी भोजन ही नही कराया, उसी समय हमारा एक बड़ा-सा 'पोर्ट्रेट' बनाकर हमे सदा के लिए अङ्कित कर लिया। उसने कहा : "आप आये और चले जायेंगे, पर आप लोगो का यह 'पोर्ट्रेट' मुझसे शान्ति-यात्रा की कहानी कहता रहेगा। मै कला की उपासिका हूँ। आप जानते है कि कलाकार करुणा और कोमलता की भावनाओ मे पलता है। वह सृष्टि का और सुन्दरता का पुजारी होता है। युद्ध तो करुणा और कोमलता को मारकर ही पनपता है। सृष्टि को और सुन्दरता को भस्म करनेवाला है—युद्ध। इसलिए एक कलाकार के नाते मै आपकी यात्रा के लिए आशीप देती हूँ।" कैसा हृदयस्पर्शी आशीर्वाद हमे सोसान्ना बहन से मिला।

हिरोशिमा (जापान) मे अणुबम के नीचे लाखो व्यक्तियो का संहार हुआ। आस्वीच (पोलैण्ड) मे हिटलर के आदेश पर लाखो मनुष्य भून डाले गये। युद्ध की बर्बरता के धरती पर ये दो बडे घाव है। जापान के चार शान्तिवादी हिरोशिमा से आस्वीच की यात्रा पर निकले। ये चारो शान्ति के तीर्थयात्री बन गये। अपनी यात्रा पूरी करने के बाद वे वापस जापान लौट रहे थे। रास्ते मे रेल बदलने के लिए वे वारसा स्टेशन पर आधे घण्टे के लिए रुके थे। हम दो शान्ति-पदयात्री और ये चार शान्ति-तीर्थयात्री। कितना आनन्द और प्रेरणा देनेवाला हमारा मिलन था। भदन्त सातो और उनके साथियो ने हमे बॉहो मे भर लिया और अपने आशीर्वाद से हमे उपकृत किया।

वारसा से वोविच्च, कुतनो, कोवो, कोनिन आदि नगरो से होते हुए २०० किलोमीटर चलकर हम पोजनान पहुँचे। यह नगर पोलैण्ड के प्रमुख नगरो मे से है। करीब पॉच लाख की यहाँ आबादी है। दूसरे

महायुद्ध मे इस नगर को भी अन्य युद्धग्रस्त नगरो की भाँति पर्याप्त क्षति उठानी पड़ी थी। अब वापस सँभल चुका है। रास्ते मे हमने नाजी सेना के मनुष्य-सहार शिविर भी देखे, जहाँ नाजी सेना ने यहूदियो का और पोल, चेक आदि जाति के लोगो का बड़े पैमाने पर संहार किया था। हमने जो शिविर देखा था, वहाँ पाँच लाख मनुष्यो का संहार किया गया था।

वह चुम्बन !

●

पोजनान मे हम तीन दिन रहे। भारत-पोलैण्ड मित्रता-संघ के अध्यक्ष ने एक परिवार के साथ ठहरने का हमारा प्रबन्ध किया था। माता, पिता और २१ वर्षीय पुत्री। इतना ही बडा था यह परिवार। परिवार की यह इकलौती बेटी कुमारी रेनाता अत्यन्त शान्त, सुशील और गम्भीर स्वभाववाली लडकी थी। उसने हमारे साथ घूम-घूमकर हमे पोजनान दिखाया। पोजनान मे एक बड़ा-सा सुन्दर सरोवर है। हम लोगो को रेनाता इस सरोवर पर नहाने लिवा गयी। यूरोप मे गरमी के दिनो मे सरोवर या समुद्र के तट पर नहाने का दृश्य अत्यन्त दिलचस्प होता है। भारत के रग-ढग मे पला हुआ व्यक्ति तो इस दृश्य को देखकर बड़ा अश्लील, निर्लज्जतापूर्ण और दूपित चरित्र का परिचायक मानेगा। देशो की सीमाओ के पार चरित्र और नैतिकता के मूल्यो मे कितना अन्तर पड जाता है। एक छोटा-सा जाँघिया और चोली पहनकर रेनाता बिना किसी सकोच के पानी मे हमारे साथ खेल रही थी, किलकारियाँ मारकर हँस रही थी और भाग-दौड रही थी। रेनाता अकेली तो नही थी। हजारो युवतियाँ इसी तरह अधनंगी होकर अपने पति या 'ब्वॉय फ्रेड' या सहेलियो के साथ घूम रही थी।

तीन दिनो के परदेशी मेहमानो को कुमारी रेनाता और उनकी माँ ने खूब खिलाया-पिलाया और आतिथ्य किया। रेनाता हमारे साथ खूब

प्रभाकर ने सहमति जाहिर की। मैदान मे बच्चे खेल रहे थे। हम अन्दर पहुँचे, तो देखा कि एक कक्षा मे दो-तीन अध्यापिकाएँ बैठी बातचीत कर रही है। हम उन्हींके पास पहुँच गये। ये अध्यापिकाएँ रूसी भाषा समझ सकती थी। इसलिए हमने रूसी भाषा मे बातचीत शुरू की। ये अध्यापिकाएँ अपने स्वभाव और व्यवहार से पोलैण्डवासी जनता का सही प्रतिनिधित्व करती थी। अत्यन्त मधुर, मिलनसार, सरल, उत्सुक और सहानुभूतिशील। देखते-देखते पचासो प्रश्न पूछ डाले उन्होने। मैने अपनी पीठ से भारी थैला उतारकर टेबुल पर रख दिया। प्रभाकर ने अपना थैला अभी पीठ से उतारा नही था। हम खडे-खडे बाते कर रहे थे। दोपहर के भोजन की छुट्टी का यह समय था।

इतने मे विद्यालय के प्रधान अध्यापक महोदय पहुँचे। पता नहीं उनका 'मूड' क्यो खराब था। साधारणतः पोलिश लोगों का जैसा व्यवहार हमे मिलता है, उससे बिलकुल उल्टा व्यवहार उन्होने किया। ठिगने और मोटे शरीरवाले इन महोदय ने पोलिश भाषा मे गुस्से के साथ कुछ कहा। मै समझा कि शायद वे हमे अपने कमरे मे चलकर बैठने का निमन्त्रण दे रहे होगे, पर प्रभाकर ने कहा : "वे हमे स्कूल से बाहर चले जाने के लिए कह रहे हैं।" मैं इस पर आश्चर्य कर रहा था। एक स्कूल का प्रधान अध्यापक भारत जैसे दूर देश से आये हुए शान्ति-यात्रियो को यों बाहर निकलने के लिए क्यों कहेगा ? "तुम अपना थैला उठाओ न !"—प्रभाकर ने मुझे फिर समझाया। "तुम ठीक से समझे हो न ?" मैने प्रभाकर से तर्क किया। इतने मे स्वय प्रधानाध्यापकजीने तर्जनी से बाहर का रास्ता बताते हुए अपना आदेश फिर से दोहराया। पोलिश भाषा और रूसी भाषा मे बहुत ज्यादा फर्क नहीं है। हिन्दी और गुजराती की तरह बहुत-से शब्द एक-से ही है। इस बार मैं भी स्पष्ट रूप से उनका आशय समझ गया। हम स्कूल से बाहर आ गये।

हमारे मन मे कुछ पछतावा हो रहा था। क्या हमने कोई गल्ती की ? शायद विद्यालय मे प्रवेश करते ही हमे प्रधानाध्यापक से पूछना

चाहिए था। खैर, अब क्या हो ? हम विद्यालय के बाहर एक पेड़ के नीचे अखबार बिछाकर बैठ गये। अध्यापिकाएँ और विद्यार्थीगण बहुत ही शर्मिन्दा हो रहे थे। प्रधानाध्यापक जब वापस अपने कमरे मे चले गये, तब एक अध्यापिका आयी और कहने लगी : "मुझे बहुत दुःख है कि आपके साथ हमारे विद्यालय मे ऐसा व्यवहार हुआ। खासतौर से शान्ति का प्रचार करनेवाले विदेशी अतिथियो के साथ ऐसी घटना का होना अत्यन्त अपमानजनक है। आशा है, आप हमारी मजबूरी समझेगे और क्षमा करेगे।" मैने कहा : "हमे किसी बात का दुःख नही है। आप कोई चिन्ता न करे।" यह वृत्तान्त कई छात्रो ने देखा-सुना। पाँचवी कक्षा के एक विद्यार्थी से यह देखा नही गया। गले मे किताबो का झोला, हाथ मे फाउण्टेनपेन और दवात, काले हाफ पैण्ट पर सफेद कमीज और गले मे लाल टाई बाँधे हुए यह बालक धीरे से स्कूल से बाहर निकला और बोला "क्या आप लोग मेरे घर चलेगे ?" बड़ा भोला-सा प्रश्न था। उसने बडे साहस और आत्म-विश्वास के साथ यह सवाल पूछा था।

"कहाँ है तुम्हारा घर ?"—मैने पूछा।

"यहाँ से आधा मील पूर्व दिशा मे।"—बालक ने कहा।

"पर हम तो पूर्व से आ रहे है और पश्चिम की तरफ जा रहे है।"—प्रभाकर ने कहा।

"आप तो देश-दुनिया की पदयात्रा करते है, एक मील का चक्कर ही सही।" बालक ने यो गम्भीर होकर उत्तर दिया, मानो वह १२ वर्ष का छोटा बालक नही, पूरी उम्र का जवान हो।

"पर मित्र, तुम कौन हो ? क्यो हमे अपने घर ले जाना चाहते हो ?"—मैने पूछा।

"मै कौन हूँ, यह आप कैसे समझेगे ?" बालक हमारी बुद्धि पर और हमारे तर्कों पर विजय पाता जा रहा था। "पर आपको मै अपना अतिथि बनाना चाहता हूँ। मेरी माँ आपको अपने घर पाकर बहुत खुश होगी। आप वहाँ विश्राम करे। कुछ नाश्ता करे। मुझे बहुत दुःख है कि

मेरे विद्यालय मे आपके साथ ऐसा व्यवहार हुआ।" बालक रूसी भाषा मे अपनी बाते समझा रहा था। उसने पिछले वर्ष से रूसी भाषा प्रारम्भ की थी। हमने तो इसी वर्ष रूसी भाषा सीखी थी। बालक की मीठी बाते मन मे चुभती जा रही थी।

"अच्छा, चलो सतीश, इसके घर चलेगे।"—प्रभाकर ने कहा। हम चल पडे। बालक ने अपने घर की कहानी बतायी। भाई, बहन, पिता, माँ सबके बारे मे जानकारी दी। फिर वह हमारी यात्रा के बारे मे पूछने लगा। "भारत के बच्चे कैसे है?" "स्कूल कैसे है?" "क्या आपने ताजमहल देखा है?" जब मैने कहा कि "मै ताजमहल कई बार देख चुका हूँ" तो बालक बोला: "मै ताजमहल देखने के लिए भारत आना चाहता हूँ। आप मुझे अपना पता दीजिये। आपको सूचित करूँगा।" बातो ही बातो मे हम उसके घर पहुँच गये। "माँ! माँ!" वह चिल्ला उठा: "देखो, मेरे साथ कौन आये है?" वह भागकर माँ के गले लिपट गया। "अतिथि! बहुत दूर देश के अतिथि! इनके ही देश मे है ताज-महल! जल्दी से चाय तैयार करो। नाश्ता बनाओ।" हम मन्त्र-मुग्ध होकर बालक को देख रहे थे। माँ बहुत खुश हुई। बालक ने हमारा थैला पीठ पर से उतारने मे हमारी मदद की।

"हमारे स्कूल मे आपके साथ जो गुस्ताखी हुई, क्या आप उसे माफ करेगे?"—बालक ने मेज पर चाय की प्याली रखते हुए पूछा। मै तो इस चतुर बालक के कौशल पर और उसके निश्छल प्यार पर निछावर होता जा रहा था। माफ करने की बात ही क्या है? मै समझ नहीं पा रहा था ये दो छोर! एक छोर पर स्कूल का प्रधानाध्यापक और दूसरे छोर पर यह निश्छल बालक! इतने मे बालक के चाचा दैनिक अखबार हाथ मे लिये पहुँच गये। ज्योही वे कमरे मे पहुँचे, उन्होंने हमे देखते ही कहा: "पोजनान एक्सप्रेस के प्रथम पृष्ठ पर आपका चित्र है। आप ही है न वे लोग, जो भारत से पैदल शान्ति-यात्रा पर निकले हुए है।" और

उन्होने अखबार दिखाया । फिर क्या कहना ! बालक उछल पड़ा अपने चाचा के कन्धो पर । फिर वह कहने लगा अपने स्कूल की कहानी ।

हम १०-१५ मिनट के लिए आये थे, २-३ घण्टे लग गये । चाय हुई, नाश्ता हुआ, भोजन हुआ, बहुत बातचीत हुई । बालक हमे छोडना नही चाहता था । हमारा भी जी नही चाहता था कि हम बालक, उसकी माँ और उसके चाचा के प्रेमपूर्ण आतिथ्य को छोडकर जायँ । सबकी इच्छा थी कि रात को उनके घर ठहरे । पर हमारा आगे जाने का कार्यक्रम निश्चित था । किसी तरह सबसे क्षमा माँगकर हम विदा हुए, पर हृदय से उस बालक की याद भुला पाना मेरे लिए असम्भव है !

संस्कृति

●

युद्ध और नात्सी-चंगुल ने पोलिश सस्कृति को पूर्णतया अवरुद्ध कर रखा था । जर्मनी के कब्जे मे पडने से पोलैण्ड की सस्कृति को जो घातक धक्का लगा, वैसा और किसी देश मे नही हुआ । लड़ाई के पाँच वर्षो मे पोलैण्ड मे न तो एक पुस्तक का प्रकाशन हो सका, न एक फिल्म बन सकी, न कोई नाटक खेला गया और न कोई कला-प्रदर्शनी हुई । युद्ध के कारण सस्कृति के क्षेत्र मे इतना विनाश, इतनी क्षति और कही देखने को न मिली । अनुमान किया जाता है कि कुल सम्पत्ति का ४३ प्रतिशत विनष्ट कर दिया गया था । हजारो सृजनशील लेखको, कलाकारो और वैज्ञानिको से हाथ धो देना पडा—भौतिक क्षति इतनी हुई कि सस्कृति का लगभग सम्पूर्ण तकनीकी आधार ही नष्ट हो गया ! प्रकाशन और मुद्रण, नाटक और सिनेमाघर, अमूल्य पुस्तको का सग्रह और सग्रहालय—सभी नष्ट कर दिये गये ।

युद्ध के खात्मे के बाद हर क्षेत्र मे शून्य से प्रारम्भ करना पड़ा । आजादी के पहले कुछ साल लोगो ने अपने सास्कृतिक आधार को फिर से खडा करने मे लगाया और फिर इसे योग्य बनाने का प्रयत्न शुरू

हुआ कि वह समाजवादी देश की नयी आवश्यकताओ और लक्ष्यो को पूरा कर सके। युद्ध के बाद कला और साहित्य की देखरेख सरकार ने अपने हाथ मे ले ली, जिससे एक फल तो यह हुआ कि कला और साहित्य को व्यावसायिक स्तर पर गिरने से बचाया जा सके। रगमंच के विकास के लिए, विदेशी मुद्रा से फिल्मे खरीदने के लिए, जन-संस्कृति के तकनीकी आधार के विकास के लिए और गैर-पेशेवर कलाकारो को आगे बढाने के लिए सरकार ने २० करोड का प्रतिवर्ष अनुदान देना शुरु किया। इसके अलावा अनेक ढंग के आदर्श स्कूल खोले गये। इन स्कूलो ने पोलैण्ड मे संस्कृति को जनप्रिय बनाने मे बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस प्रकार आज फिर से पोलैण्ड साहित्य-सस्कृति के क्षेत्र मे धडल्ले मे प्रगति कर रहा है।

हमने 'नेशा-ओदर' की सीमा तक, जहॉ से जर्मनी की सीमा प्रारम्भ हुई, पोलैण्ड की उदीयमान सस्कृति के दर्शन किये। गॉव-गॉव मे पदयात्रा द्वारा पहुँचकर वहॉ के लोगो के साथ रहना, खाना, पीना, गाना, नाचना और इस तरह उनको निकट से समझना, यही हमारा क्रम था।
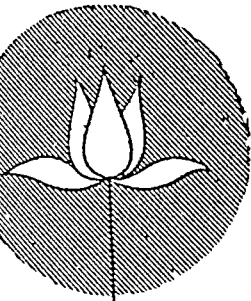
विभाजित जर्मनी में

पूर्वी जर्मनी मे

●

हमने ४ जून को पोलैण्ड से पूर्वी जर्मनी मे प्रवेश किया और २१ जून तक हम इस देश मे रहे। इन १८ दिनो मे हमे सर्वत्र जनता का प्यार, स्वागत और आतिथ्य मिला। १८३ मील की हमारी यह यात्रा बहुत व्यवस्थित और सुसयोजित ढग से चली। पूर्वी जर्मनी की सर्वाधिक प्रसिद्ध सस्था 'नेशनल फ्रण्ट' ने हमारी यात्रा को सफल बनाने मे हर तरह से मदद की। इस सस्था मे सभी राजनैतिक पार्टियो के लोग शामिल है। इस संस्था का विस्तार गॉव-गॉव मे है। प्रतिदिन सायकाल को हमारे पडाव पर सभाएँ होती थी और इन सभाओ मे गॉव या नगर के चुने हुए लोग भाग लेते थे। हम उन्हे अपनी शान्ति-यात्रा के अनुभव सुनाते थे और साथ ही शान्ति-आन्दोलन के काम का विस्तार से परिचय देते थे।

पूर्वी जर्मनी समाजवाद तथा कम्युनिज्म की तरफ बढ़ता हुआ देश है। विभाजित जर्मनी की समस्या के कारण वह शीत-युद्ध और तनाव का केन्द्र बना हुआ है। फिर भी हमने पाया कि यहाँ के लोगो के मन मे युद्ध के प्रति तीव्र घृणा है। लोग हिटलरवादी फासिज्म से नफरत करते है। शान्ति की हार्दिक आकाक्षा लोगो मे जाग्रत हुई है। शान्ति-परिषद् यहाँ अच्छी सगठित शक्ति है और शान्ति-आन्दोलन बहुत व्यापक रूप से सर्वत्र फैल रहा है। हम जब भी किसी गॉव या नगर मे पहुँचते थे, बच्चे, विद्यार्थी, युवक और सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष हमे घेर लेते थे, हमारा स्वागत करते थे और कहते थे : "आप शान्ति के दूत बनकर पश्चिम मे जाइये। विशेष रूप से पश्चिमी जर्मनी के लोगो को तथा वहाँ की सरकार को हमारा यह सन्देश दीजिये कि हम हर हालत मे शान्ति चाहते है। हम अपनी सारी समस्याएँ शान्तिपूर्वक हल कर सकते है। जब तक जर्मन-भूमि से सोवियत, ब्रिटिश, फ्रेच और अमेरिकन सेनाएँ नहीं हटेगी, तब तक जर्मनी का एकीकरण सभव नहीं होगा। इसलिए सेनावाद से दूर हटकर हमे अपनी समस्याएँ सुलझानी है।"

१ जनवरी १९६३ से २१ जून '६३ तक कोई छह महीने हम साम्यवादी क्षेत्र (रूस, पोलैण्ड और पूर्वी जर्मनी) मे रहे। विश्व के शान्ति-आन्दोलन मे साम्यवादियो का बहुत बडा असर और हाथ है। पर साम्यवादी लोग एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण (यूनिलेटरल डिसार्मामेंट) की बात मे विश्वास नहीं रखते। हमने एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण पर भी बल दिया। साम्यवादी देशो मे भी हमे अपनी बात का पूरी स्वतन्त्रता के साथ प्रचार करने का अवसर मिला। साथ ही जनता और सरकार, दोनो की तरफ से हमारा स्वागत हुआ।

मध्य यूरोप मे यूरोप मे बसा हुआ जर्मनी देश केवल अपनी वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विशेषताओ के कारण ही प्रसिद्ध नहीं है, बल्कि कविता, साहित्य और विचार के क्षेत्र मे भी इस देश का ऊँचा स्थान है।

मार्क्स की भूमि

●

साम्यवाद के जनक और १८वी सदी के उत्तम विचारक मार्क्स ने जर्मनी मे ही जन्म लिया था। ससार मे पहली बार मार्क्स ने यह घोषणा की : "गरीबी पाप है। गरीबी अमीरो द्वारा बनायी गयी नकली समस्या है। गरीबी को समाप्त करने के लिए संघर्ष करना और गरीब नाम के वर्ग को मिटा देने की लडाई लड़ना, गरीबो का अधिकार है।" इस घोषणा ने सारे ससार मे हलचल पैदा कर दी।

मार्क्स ने ५ मई १८१८ को एक यहूदी वकील-परिवार मे जन्म लिया। बाद मे उनके पिता ने क्रिश्चियन धर्म स्वीकार कर लिया था। मार्क्स की शिक्षा-दीक्षा पहले बोन तथा फिर बर्लिन विश्वविद्यालय मे हुई। उनके क्रान्तिकारी विचारो और कार्यक्रमो को तत्कालीन सरकार सहन नहीं कर सकी, इसलिए उन्हे 'देश निकाला' दे दिया गया। आखिर १८४९ मे वे लन्दन जाकर बस गये। वहाँ उन्होने अपनी जीवन-साधना के निचोड़ के रूप मे 'कैपिटल' ('पूँजी') पुस्तक लिखी। इस विश्व-प्रसिद्ध पुस्तक का ससार की सभी प्रमुख भाषाओ मे अनुवाद हुआ है। सन् १८८३ मे लन्दन मे उनकी मृत्यु हुई।

गेटे की भूमि

●

महाकवि गेटे की जन्मभूमि भी तो जर्मनी ही है। गेटे का व्यक्तित्व अलग ही ढग का था। मार्क्स क्रान्ति के तरीके का निर्माण करनेवाले थे, गेटे थे कला के उपासक। उनकी कल्पनाशक्ति, उनके हृदय की कोमलता और उनकी भावुक अनुभूतियों ने उन्हे साहित्य-संसार मे अमर कर दिया। वे चित्रकार थे, राजनीतिज्ञ थे, वैज्ञानिक थे, पर सबसे ज्यादा वे कवि थे। २८ अगस्त १७४९ मे फ्राकफर्ट मे एक वकील

जो आज सोवियत-संघ और पोलैण्ड के अन्तर्गत है। अभी साम्यवादी जर्मनी और फेडरल जर्मनी का प्रश्न ही मुख्य है, क्योकि इन दोनो हिस्सो की जनता जर्मनी का एकीकरण चाहती है। सेना, हथियारबन्द युद्ध और हिटलरवाद ने जर्मनी को चार टुकड़ो मे बाँट दिया, फिर भी अभी तक जर्मनी के नेताओ का विश्वास सेनावाद तथा हथियारवाद पर बैठा ही है। जर्मनी के शासक अभी भी अपने देश को शस्त्र-सन्नद्ध करते जा रहे है। पूर्वी जर्मनी के शासक कहते है कि अगर हम सैनिक तैयारी न रखे, पूँजीवादियो की फासिस्ट सेना किसी भी क्षण हमारी साम्यवादी समाज-व्यवस्था को छिन्न-विच्छिन्न कर देगी। इसी तरह पश्चिमी जर्मनी के शासको को यह चिन्ता है कि यदि वे विदेशी सेनाओ को जर्मनी से बाहर कर देगे या नाटो की सैनिक-सन्धि से अलग हो जायेगे, तो रूस की सेनाएँ उनके स्वातन्त्र्य को समाप्त करके उन पर शासन करने लगेगी। इस तरह एक-दूसरे के प्रति भयङ्कर भय और अविश्वास की स्थिति व्याप्त है।

यह कहना ठीक नहीं कि पूर्वी जर्मनी मे केवल साम्यवादी पार्टी का शासन है। यहाँ की लोकसभा मे पाँच पार्टियाँ है और पाँचो पार्टियाँ 'बहुदलीय शासन' के सिद्धान्त के आधार पर राज्य चलाती है। इन पाँचो पार्टियो मे सबसे बड़ी पार्टी समाजवादी एकता पार्टी है, जो सन् १९४६ मे साम्यवादी पार्टी और समाजवादी जनतन्त्र पार्टी को मिलाकर स्थापित की गयी थी। इसके अलावा किसान पार्टी, क्रिश्चियन पार्टी आदि चार अन्य पार्टियाँ भी है, जो अपने-अपने वर्गो के हित संरक्षण करती है। जिन-जिन प्रश्नो पर ये पाँचो पार्टियाँ एकमत होती है और जिन कार्यक्रमो को सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है, उतने ही कार्य-क्रम अमल मे आते है। समाजवादी एकता पार्टी को हम साम्यवादी पार्टी कह सकते है। यह पार्टी व्यक्तिगत उद्योग, चर्च आदि मे कोई विश्वास नहीं करती, पर अन्य पार्टियों के सहमत न होने तक व्यक्तिगत उद्योग, चर्च आदि के लिए भी यहाँ स्थान है। इसी प्रकार शिक्षण की सम्पूर्ण व्यवस्था का निर्णय भी यह बहुदलीय सरकार ही करती है।

साम्यवादी शिक्षण

●

हमने जितने विद्यालय देखे, उनमे शिक्षण के साथ उद्योग का विशिष्ट स्थान हमने पाया। श्रम ही जीवन का सच्चा मूल्य है और बिना श्रम किये, समाज पर भार बनकर बिताया जानेवाला जीवन सामाजिक अपराध है, इस प्रकार की भावना का विकास बचपन से ही होने लगता है। इसीलिए केवल किताबो का बोझ दिमाग पर लादते रहने की शिक्षण-विधि का उन्मूलन करके प्रत्येक विद्यालय मे उद्योगशाला, प्रयोगशाला और कर्म के माध्यम से शिक्षण को विशेष महत्त्व दिया जाता है। उत्पादन का ढग, मशीनो का सञ्चालन, विज्ञान का उद्योगो के साथ सम्बन्ध आदि प्रक्रियाओ का शिक्षण प्रत्येक विद्यालय का आवश्यक अग है। हमने अनेक विद्यालयो मे देखा कि किस तरह पॉचवी-सातवी कक्षा के विद्यार्थी भी छोटी-छोटी मशीनो का संचालन बडी चतुरता के साथ करते थे। सातवी कक्षा से बारहवी कक्षा तक के विद्यार्थी सप्ताह मे एक-दो दिन, विद्यालय मे जाकर पढने के बजाय, किसी कारखाने मे या खेत पर जाकर व्यावहारिक और सक्रिय शिक्षण प्राप्त करते है। विद्यार्थी लोग इस दृष्टि से भी विचार करते है कि आगे चलकर उन्हे किस प्रकार के व्यवसाय मे जाना है। वे अपनी रुचि के अनुसार यदि किसी काम का चुनाव करते है, तो उन्हे उसी काम का विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। उद्योग-सम्पन्न पूर्वी जर्मनी मे ६८ प्रतिशत लोग उद्योग, व्यापार और यातायात के काम मे लगे है और केवल १८ प्रतिशत कृषि और वन-विभाग मे लगे है।

सहयोगी-कृषि

●

भूमि पर से वैयक्तिक कृषि समाप्त करके सम्पूर्ण देश की खेती को 'सहयोगी-कृषि' का रूप दे दिया गया है। सहयोगी-कृषि का यह प्रयोग

लगभग सभी विद्यार्थी बाल-सगठन (पायोनियर) या युवक-सगठन के सदस्य होते है। ये संगठन विविध खेल-कूदो और प्रतियोगिताओ आदि का आयोजन करते है। उच्च शिक्षण प्राप्त करनेवालो के लिए न केवल शिक्षण ही मुफ्त है, बल्कि ९० प्रतिशत छात्रो को छात्रवृत्ति मिलती है। माता-पिता बच्चे के समुचित शिक्षण के लिए पूरी तरह निश्चिन्त रहते है। १८ साल से कम उम्र का बच्चा किसी भी घरेलू या सार्वजनिक, खेती या कारखाने के काम मे वेतन देकर मजदूर या नौकर नहीं रखा जा सकता। नाबालिग बच्चे को काम पर लगाना कानूनन जुर्म है। बालक का एक ही काम है—अपने शरीर और मस्तिष्क का समुचित विकास करना। बाल-विकास का यह प्रबन्ध कितना संगठित, संयोजित, व्यवस्थित और वैज्ञानिक है। जन्म से ही बच्चे की ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया जा सके, इसलिए पहले बच्चे के जन्म पर राज्य की ओर से माता को ५०० जर्मन मार्क मिलते है और पॉचवे बच्चे तक यह रकम बढते-बढते १००० जर्मन मार्क तक पहुँच जाती है। प्रायः हर छोटे-छोटे गॉव मे किंडरगार्टन स्कूलो की व्यवस्था है, जहॉ बच्चो के खाने, सोने, खेलने आदि का समुचित प्रबन्ध रहता है। हमने अनेक किंडरगार्टन स्कूल देखे। वहॉ के बच्चो मे पहुँचकर चित्त प्रसन्नता से खिल उठता था।

राजनीतिक परिस्थिति की विचित्रता ने पूर्वी जर्मनी मे अजीब परिस्थिति पैदा कर दी है। पश्चिमी जर्मनी की ओर से पूर्वी जर्मनी के बारे मे भयंकर प्रचार चलता है। वह एकदम सही तो नहीं है, पर उसमे कुछ-न-कुछ सत्यांश अवश्य है। अनेक परिवारो के कुटुम्बी पश्चिमी जर्मनी मे है, पर अपने परिवारवालो से अलग हो गये है। उनमे यह भावना तीव्रता से व्याप्त हो रही है कि हम जहॉ चाहे वहॉ जाने के लिए स्वतन्त्र नहीं है। पूर्वी जर्मनी मे शिक्षण की और चिकित्सा की अच्छी सुविधाऍ है। कारखाने के श्रमिको की हालत भी सन्तोषजनक रूप से अच्छी है। पर वहॉ के लोग कहते है कि यह ठीक है कि हम एक साम्यवादी आदर्श की ओर बढ रहे है, हमारे समाज की प्रगति एक सिद्धान्त और विचार

के आधार पर हो रही है, किन्तु उसका परिणाम यह तो न हो कि हम जहाँ जाना चाहे वहाँ न जा सके, अपने कुटुम्बियो से न मिल सके और अपनी वैचारिक भूख को तृप्त न कर सकें। पूर्वी जर्मनी की शासन-व्यवस्था मे सामूहिक नेतृत्व का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। पूरे देश का एक राष्ट्रपति होने के बजाय २४ सदस्यों की एक सर्वोच्च राष्ट्रीय परिषद् का निर्माण किया गया है और समस्त सर्वोच्च वैधानिक अधिकार इस परिषद् के हाथ मे है। परन्तु इस परिषद् के अध्यक्ष वाल्टर उलब्रिस्ट का जबर्दस्त व्यक्तित्व पूरे शासन पर छाया हुआ है और उनकी ताकतवर आवाज के सामने और किसीकी नही चलती। उनका शासन चलाने का ढग बहुत सख्त माना जाता है और इसीलिए पूर्वी जर्मनी के कुछ लोगो से हमने सुना कि उनकी "अनावश्यक सख्ती के नीचे लोग घुटन महसूस कर रहे है। यदि यह अनावश्यक सख्ती न बरती जाय, तब भी साम्यवाद की प्रगति मे कोई बाधा नही आयेगी।"

पूर्वी जर्मनी की लोकसभा के ४६६ सदस्य है। इनमे से किसीके लिए भी राजनीति पेशा नही है। वे कही न कही के स्थायी कार्यकर्ता है और लोकसभा के कार्य-काल तक के लिए वे छुट्टी लेते है। उन्हे अपने मतदाताओ के सामने निजी काम का पूरा लेखा-जोखा देना पड़ता है और भविष्य के कार्यक्रम की रूपरेखा देनी पड़ती है। प्रतिदिन कुछ घण्टे उन्हे सार्वजनिक सलाह-मशविरा के लिए खर्च करने पड़ते हैं। अपनी जिम्मेदारी के प्रति न्याय न करने से मतदाता उन्हे लोकसभा की सदस्यता से खारिज करके दूसरा सदस्य चुन सकते है। पूर्वी जर्मनी की जनता के साथ हमारा जितना सम्पर्क आया, उसमे हमे यह अनुभव हुआ कि लोगो मे सामाजिक उत्तरदायित्व और जिम्मेदारी की भावना का आश्चर्यजनक विकास हो रहा है। हम किसी विद्यालय मे जाते थे या कारखाने मे, गॉव मे जाते थे या शहर मे, हमे यही महसूस होता था कि लोगो मे एक विशिष्ट सैद्धांतिकता तथा आदर्शवादिता का विकास हो रहा है। वैज्ञानिक शिक्षण का समाज पर यह अनिवार्य प्रभाव पड़

रहा है। न्यायाधीशों के चुनाव की परम्परा का इस दृष्टि से और भी अधिक महत्त्व है। सन् १९५९ तक न्याय-मंत्रालय की ओर से न्यायाधीशों की विमुक्ति की जाती थी। पर उसके बाद सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश का चुनाव लोकसभा करती है और बाकी देशभर मे न्यायाधीशो का त्रिवर्षीय चुनाव होता है।

इस सबके बावजूद विभाजित जर्मनी और विभाजित बर्लिन का खतरा तो सिर पर लटक ही रहा है। चार बडी शक्तियॉ जर्मनी के दोनो हिस्सो पर छायी हुई है। पश्चिमी जर्मनी के एक शान्ति-कार्यकर्ता ने हमसे कहा : "हमारा देश विज्ञान, तकनीक और उद्योग मे ससार मे उल्लेखनीय स्थान रखता है, फिर भी हम अपना आत्मविश्वास खो चुके है। युद्ध से हमारा जो नुकसान हुआ, वह तो हमने बराबर कर लिया, पर युद्ध की हार के बाद हमने जो आत्मविश्वास खोया, वह फिर नही ला सके। हमे यह भरोसा नहीं रहा कि हम अपनी रक्षा स्वयं कर सकेंगे। यही कारण है कि हम अपनी धरती पर विदेशी सेनाओ को और विदेशी टैंको को सहन कर रहे है।" जर्मनी दो हिस्सो मे तो बॅटा है ही, इसके अलावा दोनो हिस्सो मे अलग-अलग ढंग की समाज-व्यवस्था और शासन-पद्धति भी चल रही है। इसलिए जर्मनी के ऐक्य के लिए दोनो हिस्सो के राजनेताओ को आपस के व्यवहार मे निन्दा, आक्षेप और कुप्रचार के स्थान पर मधुर व्यवहार तथा सही समझ को अपनाना होगा। जब तक दोनो ओर के राजनेता निकट नहीं आयेंगे और बातचीत के लिए तैयार नही होंगे, तब तक सारी दुनिया के चाहने के बावजूद एकता की कोई सम्भावना नही। सेनावाद और युद्धोन्माद पर भरोसा करके जर्मन लोगो ने ही जर्मनी के टुकडे होने की बुनियाद रखी। अब जर्मन जनता ही सेनावाद के स्थान पर विश्वास, प्रेम और आपसी सौहार्द पर भरोसा करके जर्मन एकता की बुनियाद [illegible]। जर्मन जनता के सिवा और दूसरा कौन है, जो जर्मन-स[illegible] करने मे [illegible] हो? जर्मनी का कोई [illegible] हिस्सा दूसरे [illegible] शामिल [illegible]

करने के लिए या अपनी समाज-पद्धति दूसरे पर लादने के लिए सैनिक प्रयत्न करेगा, तो उसका परिणाम होगा तीसरा अणु-युद्ध और सारे संसार की भस्माहुति ! ऐसे भयकर विन्दु पर जर्मनी आज खड़ा है। जर्मन धरती ने दो महायुद्ध झेले है। उनकी पुनरावृत्ति को रोकने का एक ही मार्ग है : निःशस्त्रीकरण। दोनो जर्मनी यदि चाहे तो नाटो और वारसा सैनिक संगठनो से अलग होकर, मध्य यूरोप को अणु-अस्त्र-मुक्त क्षेत्र बनाकर और चार बड़ो की सेनाओ से जर्मन धरती को खाली करवाकर तीसरे महायुद्ध की सम्भावनाओ को अपनी भूमि से हटा सकती है। एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हुए अपने को निर्दोष मान लेने का सहज मानवीय स्वभाव है। पूर्वी जर्मनी की दृष्टि से पश्चिमी जर्मनी दोषी है और पश्चिमी जर्मनी की दृष्टि मे पूर्वी जर्मनी। इस तरह समस्या का कभी अन्त नहीं हो सकता और ऐसी हालत मे जर्मनी का एकीकरण भी असंभव ही है।

पूर्वी जर्मनी मे उद्योग, कृषि आदि सभी व्यवस्था समाजवादी प्रणाली पर आधृत है। शिक्षण का आधार भी समाजवाद ही है। शिक्षण का मुख्य उद्देश्य यह है कि बालक को ऐसा शिक्षण मिले, ताकि वह व्यक्तिवादी या पूँजीवादी न बनकर समाजवादी दृष्टि सीखे। शिक्षण मे विज्ञान का आधार प्रमुख है। पूर्वी जर्मनी मे हमने शिशु-शाला मे लेकर उच्च विद्यालयो तक का अवलोकन किया। जब कभी भी रास्ते मे चलते समय हमे कोई विद्यालय मिलता, हम उसमे अवश्य पहुँचते। विद्यालयो मे अक्सर हमारी सभाएँ होती। अध्यापको के साथ चर्चा भी होती। हमने सोवियत सघ, पोलैण्ड और पूर्वी जर्मनी, इन तीन साम्यवादी देशो की यात्रा मे पाया कि इन देशो मे बालक के समुचित विकास और वैज्ञानिक शिक्षण की ओर समाज विशेष रूप से ध्यान देता है। बालक समाज की और राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति बनकर यहाँ रहता है और उसी स्तर पर बालक की सार-सँभाल भी होती है। उसके प्रारम्भिक शिक्षण मे लेकर विश्व-विद्यालय तक के शिक्षण की अनिवार्य और मुफ्त व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व है।

बर्लिन और ब्रेख्ट

●

स्प्रे नदी और विभिन्न जलाशयो से घिरा हुआ बर्लिन, मध्य यूरोप का सबसे बडा और सुन्दरतम नगर है। बाग-बगीचो और हरे-भरे पेड से सजी हुई यह भूतपूर्व जर्मन-राजधानी व्यापार, उद्योग, विज्ञान और शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र रही है। यहाँ पर ब्रेख्ट का स्मरण हो आना स्वाभाविक ही है। "इंग्लैंड, फ्रास, डेन्मार्क, रूस, स्वीडेन, फिनलैण्ड ·· १९३३ से '४१ तक ब्रेख्ट नात्सी जर्मनी से निष्कासित होकर इन देशो मे रहते-घूमते रहे, लिखते रहे और अपने ढग से फासिस्ट शक्तियो और प्रवृत्तियो के खिलाफ लडते रहे। उनके सबसे महत्त्वपूर्ण नाटक 'मदर करेज एंड हर चिल्ड्रेन' मे मदर करेज भी अपनी ठेला-गाडी मे एक दूकान सजाकर युद्ध-स्थलो पर सेनाओ के साथ घूमती है, युद्ध की विभीषिकाओ को देखती-भोगती है और अपने दोनो लड़को और लडकी कात्रिन को खो देती है। वह भी सेनाओ के साथ कई देशो मे जाती है, और क्रूर दुनिया का अपनी समस्त शक्ति से प्रतिरोध करना चाहती है।

पश्चिम के आधुनिक रंगमच मे ब्रेख्ट का नाम और काम दोनो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—उन्होने एक नये प्रकार के रंगमच के लिए नाटक तो लिखे ही, नये प्रकार के रगमच को भी रूप देने का प्रयत्न किया। सन् १९४८ मे पूर्वी जर्मनी सरकार की सहायता से 'बर्लिनर ऑसॉम्ब्ल' की स्थापना करके उन्होने नाटको के प्रदर्शन मे क्रान्तिकारी परिवर्त्तन किये। इस काम मे उनकी पत्नी, अभिनेत्री हेलेन वाइगेल ने उनकी बड़ी मदद की। और' सन् ५६ मे ब्रेख्ट की मृत्यु के पश्चात् उन्होने 'बर्लिनर ऑसॉम्ब्ल' के माध्यम से ब्रेख्ट के नाटकों के महत्त्वपूर्ण प्रदर्शन जारी रखे है। कहते है कि 'मदर करेज' की भूमिका मे जितना अच्छा अभिनय हेलेन वाइगेल ने किया है, अभी तक उतना अच्छा अभिनय कोई दूसरा नहीं कर सका है। अभिनय ही नही, 'बर्लिनर ऑसॉम्ब्ल' ने प्रदर्शन के और भी जो मान स्थापित किये हैं, उनका जोड मिलना मुश्किल है।"

हिटलर के सेनावाद की सम्पूर्ण कथा इस नगरी की धरती पर लिखी हुई है और आज यह मनोहारी नगरी दो टुकड़ो मे बँटकर सहमी हुई-सी खडी है। अमेरिकी, सोवियत, फ्रासीसी और ब्रिटिश सेना के जत्थे चारो ओर चक्कर लगाते हुए दीख पड़ते है। हथियारो और अन्य सामरिक साधनो से भरे हुए टैक तने हुए खड़े है। हिटलर के सेनावाद और युद्ध-प्रेम ने बर्लिन के शान्ति-प्रेमी साधारण नागरिको के सिर पर यह एक ऐसा बोझ लाद दिया है, जो उतारे नही उतरता। यहाँ की सारी समस्या के मूल मे है—हिटलर का सेनावाद। उस सेनावाद ने लाखो निरीह मनुष्यो का सहार किया, जर्मनी के टुकडे किये, बर्लिन को चार हिस्सो मे बॉटा और बर्लिन के पश्चिमी हिस्से को दीवार और कॉटो से घेरने की परिस्थिति पैदा की। आज ४० लाख बर्लिनवासी इन अभिशापो को भुगतने के लिए मजबूर है। पूर्वी बर्लिन का कोई भी व्यक्ति पश्चिमी बर्लिन मे नही जा सकता और पश्चिमी बर्लिनवाला पूर्वी बर्लिन नही आ सकता। किसीका भाई, किसीकी बहन, किसीका पिता यदि दूसरे हिस्से मे रह गया है, तो वह नजदीक होकर भी परदेशी है। युद्ध, सेना और हथियारपरस्ती के प्रत्यक्ष परिणामो के दर्शन हमने बर्लिन मे किये।

इतना सब होने पर भी क्या बर्लिन के नेताओ का और शासको का विश्वास युद्ध, सेना तथा हथियारों पर से उठ गया है? जिस सेनावाद के भयङ्कर पापो का परिणाम वे खुद देख चुके है, उस सेनावाद से विरत होने के लिए क्या अब भी वे तैयार है? "आज पूर्वी जर्मनी अलग है, पश्चिमी जर्मनी अलग है, बर्लिन अलग है। इन सबके एकीकरण मे सबसे बड़ी बाधा क्या है? सेनावाद पर विश्वास और आपसी फूट, ये दो ऐसी बडी बाधाएँ है, जिनके कारण समस्या की गॉठ दिन-दिन कसती ही जा रही है। सम्पूर्ण बर्लिन राजनीतिक होड़ के दॉव पर चढा हुआ है। बर्लिन के राजनीतिज्ञ चार बड़ी शक्तियो के हाथ के खिलौने बने हुए है।"

७ जून को जब हम बर्लिन पहुँचनेवाले थे, उसी दिन सबेरे कॉलेज के एक विद्यार्थी ने बर्लिन-समस्या की पृष्ठभूमि हमे समझायी। यह विद्यार्थी कोई ७-८ मील हमारे साथ पैदल चला और उसने बर्लिन के विभाजन के कारणो का सूक्ष्म विवेचन किया। पूर्वी बर्लिन की सीमा पर जब हम लोग पहुँचे, तो सोवियत-सैनिको और पूर्वी बर्लिन के सैनिको ने हमारा स्वागत किया। हमने उनसे कहा : "आप लोग हमारा स्वागत
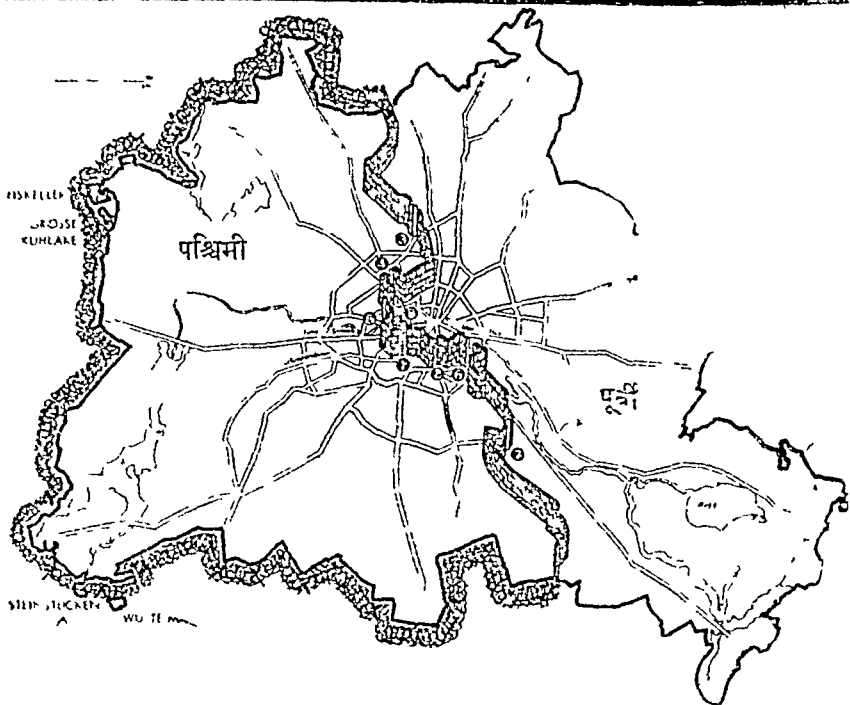
कर रहे है, पर हम तो सेना और हथियारो के विरोधी है। हमारी यात्रा मे आपको दिलचस्पी क्यो है?" सैनिको ने बडा दिलचस्प उत्तर दिया : "हमे इन हथियारो से कोई प्यार नही। हम भी समस्याओ का शान्तिपूर्ण हल चाहते है। आप लोग आगे पश्चिमी बर्लिन और पश्चिमी जर्मनी जा रहे है। वहाँ के सेनापरस्त शासको को समझाइये। यदि वे मान जायँ

तो इन हथियारो को फेककर हम भी आपके साथी बन सकेगे। हम सैनिक तो है, पर आक्रमण के लिए नही, केवल सुरक्षा के लिए।" आज जिस संसार मे पचपन हजार करोड रुपया सेना और हथियारो पर बहाया जा रहा है, उस ससार मे थोडे-से शान्तिवादियो की आवाज नक्कारखाने मे तूती की आवाज ही साबित हो रही है। परन्तु यदि सैनिको का मन बदल जाय और वे एक दिन हथियार फेकने की बात सोचने लगे, तो यह मानना चाहिए कि युद्धपरस्ती के दिन बिदा हो रहे है।

बर्लिन नगरी आज विभाजित होकर शीत-युद्ध का केन्द्र बनी हुई है। श्री अडनावर के कथनानुसार "सवाल पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के एकीकरण का नही है, बल्कि पूर्वी जर्मनी को आजादी दिलाने का है।" पश्चिमी जर्मनी के सुरक्षा मन्त्री श्री जोसेफ स्ट्राउस्स तो स्पष्ट कहते है: "पूर्वी और मध्य यूरोप के सभी देशो की आजादी के लिए हम प्रयत्न कर रहे है।" पश्चिमी जर्मनी के नेतागण साम्यवाद को हराने के लिए बर्लिन को सबसे महत्त्वपूर्ण मोर्चा मानते है। समस्या की गहरी बुनियाद यही है। अन्ततोगत्वा बर्लिन और जर्मनी के विभाजित होने की समस्या नही, बल्कि समस्या है दो विचारो के इस संघर्ष की। विचारो के इस सघर्ष मे आम जनता का कितना हाथ है, यह कहना कठिन है। आम जनता बर्लिन और जर्मनी का एकीकरण चाहती है, इसमे कोई सन्देह नही। पूर्वी जर्मनी के कई जिम्मेदार लोगों ने हमसे कहा कि "भले ही हमारे हिस्से मे समाजवाद चलता रहे और पश्चिमी हिस्से मे पूँजीवाद चलता रहे, परन्तु केन्द्रीय शासन एक हो। फेडरेशन एक बने, ऐसी हमारी चाह है।" पर आम जनता राजनैतिक प्रश्नो के समाधान मे नेताओ पर ही निर्भर हो जाती है और उन नेताओ ने आज जर्मनी के एकीकरण को असाध्य बना दिया है। पश्चिमी बर्लिन के आर्थिक अनुसन्धान विद्यापीठ के डॉ० आर्नडट ने कहा कि "बहुत-से लोगो मे इस प्रकार के रुख ने घर कर लिया है कि 'देखो और इन्तजार करो'। इन लोगो की मनःस्थिति बहुत डॉवाडोल है।"

"विचारो का सघर्ष समस्या का आधार हो और उसके आधार पर वैचारिक विश्लेषण चले, यह बात तो समझ मे आ सकती है, पर क्या विचारों की विजय के लिए सैनिक तैयारियो की जरूरत है ? किसानो और श्रमिको के कन्धो पर अरबो-खरबो रुपये का बोझ डालकर क्या विचारो की हार-जीत के लिए बहाने की जरूरत है ?" ये प्रश्न हमने पूर्वी जर्मनी के विदेश मन्त्री डॉ० लोथर बोल्स के सामने रखे। डॉ० बोल्स ने कहा : "हमने पूर्वी जर्मनी की सीमा से हिटलरशाही को जड़मूल से समाप्त कर दिया है। फासिस्ट कमाण्डरो का भी उन्मूलन कर दिया है। हम किसी भी मामले को सुलझाने के लिए किसी भी तरह की हिसा का प्रयोग नहीं करना चाहते। समाजवाद की विजय के लिए कभी भी युद्ध और सेना की आवश्यकता हम नही मानते। पर आज हमारे सामने मजबूरी की एक विचित्र स्थिति है। हमने पश्चिमी जर्मनी की सरकार के सामने अनेक प्रस्ताव रखे है। हमने यह भी कहा है कि हम वारसा-सन्धि से अलग हो जाते है, आप भी 'नाटो' से अलग हो जायँ। पर हमारे प्रस्तावो का कोई उत्तर नही। ऐसी स्थिति मे हम क्या कर सकते है ?"

डॉ० बोल्स ने अपनी सप्तसूत्रीय शान्ति-योजना के बारे मे बताते हुए कहा कि इस योजना मे किसी भी परिस्थिति मे हिसा का सहारा न लेना, समस्त सैनिक सधियो से जर्मनी को मुक्त करना, युद्ध-प्रचार पर पाबन्दी लगाना, पिछले महायुद्ध के सचालको को शासन और सार्वजनिक क्षेत्र से हटाना आदि बाते भी शामिल है। विभाजित जर्मनी और बर्लिन की समस्या के समाधान के लिए सत्याग्रह और अहिसात्मक सघर्ष का रास्ता कैसे और कहाँ तक अपनाया जा सकता है, इस पर भी हमने डॉ० बोल्स से चर्चा की।

पश्चिमी बर्लिन मे हम किसी भी उत्तरदायी अधिकारी से मिलने मे असमर्थ रहे। नगर के मेयर श्री विलीब्रॉट अमेरिका गये हुए थे। अन्य अधिकारी वहाँ थे। हम एक द्वार से दूसरे द्वार पर भटकते फिरे। हमने

पूरे तीन दिन इसी तरह भटकने मे और प्रतीक्षा करने मे बिता दिये। कुछ साधारण नागरिको से हमारी बातचीत हुई।

पूर्वी बर्लिन और पश्चिमी बर्लिन मे एक प्रत्यक्ष अन्तर तुरन्त दृष्टि-गोचर होता है। पश्चिमी बर्लिन की दूकानो मे दुनियाभर का सामान उपलब्ध है। सामान बहुत सस्ता भी है। पश्चिमी बर्लिन के लोगों के लिए विशेष 'कमी' और सरकारी अनुदान के साथ विविध आकर्षक सामग्री सुलभ है। धुआँधार विज्ञापन की चमक मे किसी भी यात्री की ऑखे चौंधिया जाना मुश्किल नही। पर जो आदमी यह जानता है कि यह सारी बिजली की चमक-दमक और विज्ञापनबाजी किसके आधार पर खड़ी है और इसका असली मूल्य चुकानेवाला श्रमिक और किसान किस दशा मे है, वह इस चकाचौंध के चक्कर मे नही आयेगा। कारों और मोटरों की दौड़ यहाँ काफी तेज है, पर हम जिस भोजनालय मे खाना खा रहे थे, वहाँ कुछ पेशेवर भिखारी भी दीख पड़े। एक पूँजीवादी समाज-रचना का यह दोषपूर्ण दुश्चक्र है। एक ओर अत्यन्त भव्य विलासिता और दूसरी ओर फटेहाल मनुष्यो की दुर्दशा!

दीवार

●

पश्चिमी बर्लिन के लोग 'दीवार' से बहुत नाराज है। यह वह दीवार है, जिसने पूरे पश्चिमी बर्लिन को अच्छी तरह से जकड लिया है। "पश्चिमी बर्लिन को मोर्चा बनाकर वहाँ से मनचाही प्रवृत्तियाँ न चलायी जा सके", इसके लिए पूर्वी जर्मनी की सरकार ने इस 'दीवार' के रूप मे कसकर पाबन्दी लगा दी है। पश्चिमी बर्लिन मे हमने एक जर्मन परिवार मे अतिथि बनकर तीन दिन बिताये। वास्तव मे पूर्वी बर्लिन या पश्चिमी बर्लिन के साधारण नागरिको के स्वभाव मे कोई अन्तर नही। इस परिवार मे हमे वही प्यार, अपनत्व और सौहार्द मिला, जो हमे दूसरी जगहों पर भी मिलता रहा है। साधारण नागरिक जानते है कि इस समस्या के

समाधान के लिए बड़ी उदारता, विश्वास, गम्भीरता और सचाई की आवश्यकता है। एक-दूसरे पर कीचड उछालते रहने से, छीटाकशी करते रहने से, एक-दूसरे को भड़कानेवाली बाते करते रहने से जर्मनी का एकीकरण कभी भी सम्भव नहीं।

पूर्वी वर्लिन मे शान्ति-परिषद् के नेताओ और कार्यकर्ताओ के साथ हमारी विस्तृत चर्चा हुई। आणविक युद्ध के खतरे से संसार को बचाने के
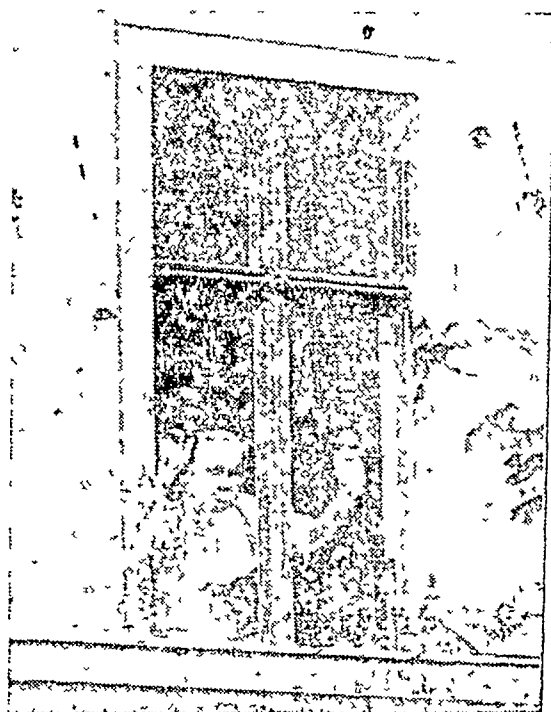
पश्चिमी वर्लिन आने के लिए उत्सुक, पर मजबूर !

लिए जर्मनी के साथ शान्ति-सधि का सम्पन्न होना बहुत आवश्यक है और उसके लिए दोनो जर्मनी की सरकारो को आपस मे सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम करके अनुकूल परिस्थिति पैदा करनी चाहिए, ऐसी बात बार-बार महसूस की जा रही थी। शान्ति-परिषद् के मित्रो ने कहा कि

दोनो जर्मन सरकारो को चाहिए कि अपनी सेनाओ को अधिकाधिक शस्त्र-सम्पन्न करने की दिशा मे वे न बढे और उन्हे आणविक शस्त्रास्त्रो से सज्जित न करे। उन्होने यह भी मॉग की कि इसके साथ ही मध्य यूरोप मे आणविक शस्त्रास्त्रो को वर्जित किया जाय और उसे 'अणुमुक्त क्षेत्र' घोषित किया जाय। उन्होने इस बात पर जोर दिया कि ऐसा न करने पर हथियारो की होड कही समाप्त नही होगी।

युद्ध समाप्त हुए १६ वर्ष बीत गये, पर अभी भी युद्ध के पापो का भोग पूरा नही हुआ। सात करोड़ जर्मन जनता पर अभी भी असुरक्षा का कृत्रिम भूत सवार है। ससारभर के लोग 'जर्मन-समस्या' तथा 'वर्लिन-समस्या' की गम्भीरता को भलीभॉति अनुभव करते है। "जर्मनी आज भी क्यो विभक्त है?" "वर्लिन का एक हिस्सा आज भी कॉटो से क्यो घिरा हुआ है?" "आज भी चारो तरफ टैक क्यो गड़गडाते रहते है?" इन प्रश्नो का ठीक-ठीक उत्तर लोगो के पास नही है।

सन् १९४५ मे विजयी शक्तियो ने पूरे देश को चार विभागो मे विभाजित किया। सन् १९४९ तक वैसा ही चलता रहा। वीच-वीच मे इन चारो 'बडो' के वीच अनेक संधियॉ चलती रही। सन् १९४९ मे 'जर्मन फेडरल रिपब्लिक' (पश्चिमी जर्मनी) तथा 'जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक' (पूर्वी जर्मनी), इस तरह दो स्टेट वन गये। ब्रिटिश, फ्रेंच और अमेरिकन सेना का जिस हिस्से पर कब्जा था, वहॉ 'जर्मन फेडरल रिपब्लिक' बना और सोवियत-सेना का जिस हिस्से पर कब्जा था, वहॉ 'जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक' बना। इस तरह सवा पॉच करोड जनता एक तरफ तथा पौने दो करोड जनता दूसरी तरफ बॅट गयी। दोनो तरफ गरम वातावरण है, जो किसी भी समय भभक सकता है।

यह ठीक है कि पश्चिमी जर्मनीवाले पूर्वी जर्मनी की सरकार को मान्यता नही देते। पर वहॉ की जनता, जो अपने ही देश मे बेगाना बनी हुई अलग-थलग पडी हुई है, उसके साथ मिल जाने के लिए अर्थात् दोनो जर्मनी को एक बनाने के लिए पश्चिमी जर्मनीवाले कोई वास्त-

विक कदम उठाने के बजाय कम्युनिज्म के भय से व्यर्थ ही परेशान है। इस तरह की बाते पूर्वी जर्मनी मे हमे सुनने को मिली। दोनो तरफ से एक-दूसरे के खिलाफ जबर्दस्त प्रचार चलता है। प्रचार मे अनगिनत पैसा पानी की तरह एक-दूसरे के खिलाफ बहाया जाता है। पूर्वी जर्मनी के पक्ष के लोग कहते है : "पश्चिमी जर्मनी के लोग निर्णय करने मे स्वतन्त्र नही। उन पर अमेरिका हावी है।" पश्चिमी जर्मनी के लोग कहते है : "पूर्वी जर्मनी के लोग सोवियत-संघ के साथ बँधे है। वे सोवियत-सघ के कब्जे मे है।"

पश्चिमी जर्मनी के नेतागण 'स्वतन्त्र चुनाव' के आधार पर समस्या का समाधान चाहते है, जब कि पूर्वी जर्मनी के नेताओ की मॉग है कि "सबसे पहले सभी सैनिक सगठनो से अलग होकर जर्मनी एक तटस्थ राष्ट्र बने और चारो 'बडो' की सेनाएँ जर्मनी की भूमि को खाली करे, तब चुनाव की बात सोची जाय।" पर 'चारो बड़े' जर्मनी की सुरक्षा का ठीका लेकर ऐसे अड़े बैठे है कि यह मामला सुलझ ही नही पाता। जर्मनी तथा बर्लिन की समस्या ज्वालामुखी का रूप धारण किये हुए है। आणविक युद्ध की संभावनाओ के बादल हर समय मॅडराते रहते है। दीवार के दोनो ओर शस्त्र-सन्नद्ध सेना टैको पर सवार है।

आखिर यह 'दीवार' क्या है? शायद यह एक ऐसा सवाल है, जिसका सही उत्तर ढूँढना असंभव नही तो कठिन अवश्य है। कारण दीवार अपने-आपमे कोई रोग नही, रोग का एक परिणाम मात्र है। हम यदि पडोसी के साथ झगडा करेगे, उसे अपना दुश्मन मानेगे, उसके खिलाफ प्रचार करेगे, तो सहज ही पड़ोसी भी उसी तरह से प्रतिकार करेगा। इसलिए सवाल यह नही है कि दीवार क्या है? बल्कि सवाल यह है कि दीवार क्यो है? उसके निर्माण के पीछे क्या मजबूरियॉ है? जब तक दीवार बनाने की पूर्वस्थिति साफ नही होती, जब तक उसके कारण नही मिटा दिये जाते, तब तक दीवारे इसी तरह खडी होती रहेगी। यह कॉटो की दीवार और सीमेट की दीवार उस

दीवार का प्रतीक है, जो दीवार दोनो ओर के राज-नेताओ के हृदयो मे खडी है। यह बाहरी दीवार जितनी खतरनाक है, उससे कई गुनी खतरनाक है दिलो की दीवार।

पूर्वी बर्लिन मे नेशनल फ्रंट के एक भाई ने पूछा : "गाधी होते तो क्या करते ?" मैने कहा : "गाधी होते तो जर्मन-प्रश्न पर क्या करते, यह मुझे मालूम नही। पर उन्होने ब्रिटिश सरकार से यही कहा : "हम भारतवासी जैसे भी है, अज्ञानी है, अयोग्य है, उसकी चिन्ता आप मत कीजिये। हमे क्या करना है, कैसे रहना है, इसकी चिन्ता हम खुद करेगे। आप हमारे यहॉ से पधारिये।" पश्चिमी बर्लिन मे एक युवक ने ठीक यही बात कही : "हम जर्मन मिलकर यह खुद तय करेगे कि हमे समाजवाद चाहिए या साम्यवाद, या पूँजीवाद ? सबसे पहले 'चारो बडे' अपना-अपना बिस्तर गोल करके हमारे यहॉ से चले क्यो नही जाते ? अमेरिका और रूस के विदेश मन्त्री हमारी समस्या पर बहस करते है। उनकी बातचीत मे अपना-अपना रंग रहता है। इसलिए अब हमे 'भारत छोडो' की तरह 'जर्मनी छोडो' का नारा लगाना होगा।"

पश्चिमी जर्मनी

●

२२ जून '६३ को हमने पूर्वी जर्मनी की सीमा पार करके पश्चिमी जर्मनी मे प्रवेश किया। पश्चिमी जर्मनी को बर्लिन से जोडनेवाली सड़क, ओतोबान पर सैकडो कारे सीमा पार करने के लिए 'क्यू' मे खडी थी। हमने इतने देशो की सीमाएँ पार की, पर जितनी सख्ती और सतर्कता इस सीमा पर बरती जाती है, वैसी कही देखने को नही मिली। एक ही देश की धरती पर कैसे दो देश बन गये, इसका विचित्र नजारा हमने देखा। पश्चिमी जर्मनी मे प्रवेश करते ही हमने देखा कि अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रास के झण्डे वहॉ लहरा रहे थे।

हम यात्रा पर बढ़ने लगे। यूथ होस्टलों की व्यवस्था पश्चिमी जर्मनी में हमने असाधारण रूप से विकसित पायी। छोटे-छोटे नगरों में बहुत साफ-सुथरे और सुन्दर भवन, यूथ होस्टल (युवक निवास) के रूप में
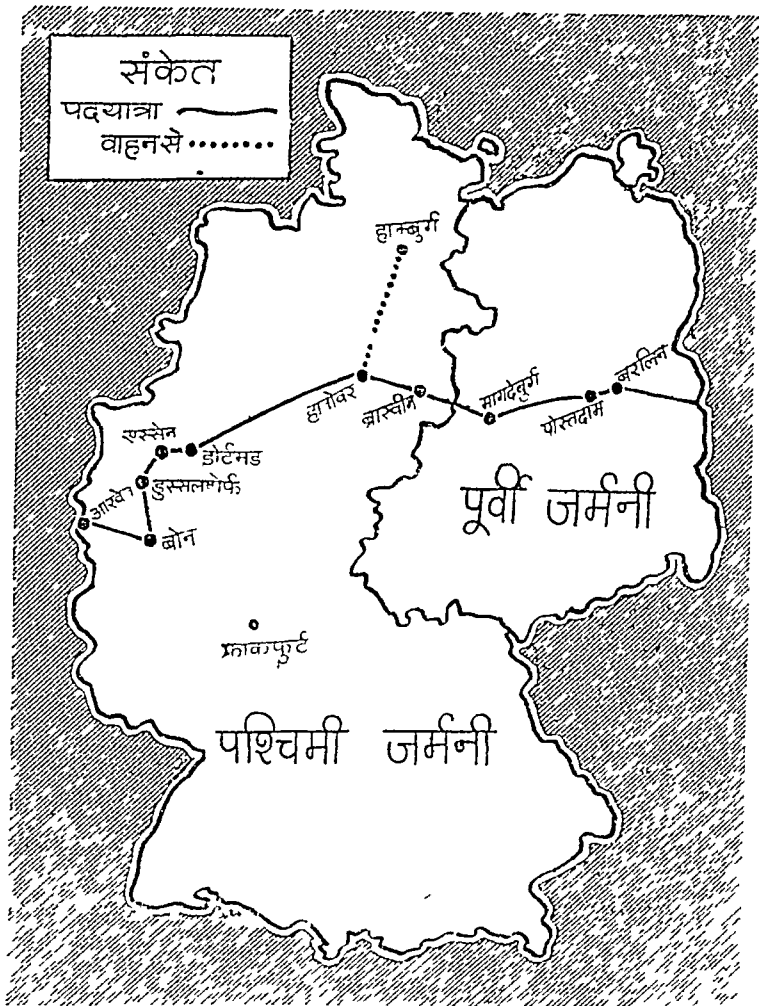
बने हुए हैं। हजारों युवक-युवतियाँ इन यूथ होस्टलों में ठहरती हैं। जर्मनी जैसे महँगे देश में खाने और रहने का प्रबन्ध इतने सस्ते में ये
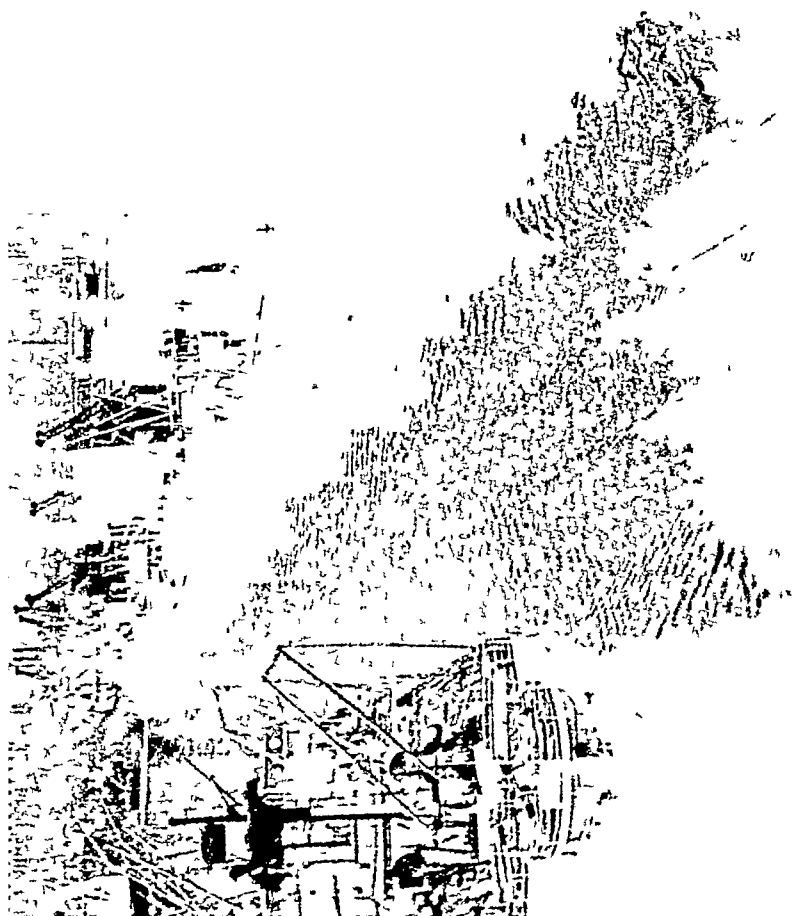
MOSCOW-WASHGTON
Peace News

国際平和行進
13000粁
国際平和行進 モスコウ→
13000粁 長崎
印度→モスコウ→
ワシントン→広島長崎
WAR is a Crime
BAN ALL BOMBS
PEACE FOR ALL

टोकियो

हिरोशिमा पहुंचने पर। बीच मे अमरीकी शातिवादी महिला मेरी हार्वी, जिसने सात सौ मील पैदल चलकर अमरीकी एटमबम के पाप का प्रायश्चित्त किया।

लोग कर पाते हैं, यह उनकी बड़ी विशेषता है। साधारण तौर पर यहाँ वे लोग ही ठहर सकते है, जो यूथ होस्टल के सदस्य हो। हम विदेशी अतिथि है, इसलिए हमारे लिए बिना किसी तरह का किराया या खर्च लिये इन होस्टलों मे ठहरने और खाने की व्यवस्था होती थी।

हमे परचे बाँटते देखकर और हाथ मे युद्ध-विरोधी पोस्टर लेकर चलते देखकर कुछ लोग हमे कभी-कभी दो-चार जर्मन सिक्को का 'दान' करने की कोशिश करते थे तो बडा विचित्र-सा लगता था। पूँजीवादी समाज-व्यवस्था का विकृत रूप हमारे सामने आता था। हमने कभी भी ऐसा दान स्वीकार नही किया, पर ऐसे मौके पर हम सोचने लगते थे कि धर्मान्धता और चर्च-परायणता ने मनुष्य को किस कदर गैर-जिम्मेदार बना दिया कि वह किसीको दो-चार सिक्को का दान करके समस्या से मुँह मोड़ लेना चाहता है। असाधारण रूप से सम्पन्न जर्मनी मे भी जब हमने रोटी के लिए मुहताज और आलसी लोगो की जमात देखी और भीख माँगनेवालो को पीछा करते देखा, तो मन मे वेदना होनी स्वाभाविक थी।

पहले मै सोचा करता था कि हमारे यहाँ भारत मे भिखमगी का कारण जीवन-स्तर का ऊँचा न होना है और जीवन-स्तर ऊँचा हो जायगा, तब गरीबी और भिखमंगी की समस्या स्वतः मिट जायगी। पर, जब पश्चिमी देशो को देखा, जहाँ ऊँचा जीवन-स्तर होने पर भी गरीबी और भिखमगी कायम है, तो मुझे अपना विचार बदलने को मजबूर होना पडा। समस्या तभी हल होगी, जब समाज का ढाँचा बदलेगा। हम कभी-कभी ऐसी संस्थाओ मे भी ठहरे, जहाँ सरकार या चर्च की तरफ से ऐसे गरीबो को खाने के लिए रोटी और सोने के लिए बिस्तर मुहैया किया जाता है। एक दिन हम ऐसे ही एक मुहताजखाने मे ठहरे थे, जहाँ आलसी, बेकार और विक्षिप्त लोगो की भीड़ थी। हमे उस संस्था का एक कर्मचारी तहखाने मे ले गया। वहाँ हमारे कपड़े उतारकर देखा गया कि उनमे 'जूँ' तो नही हैं। हमारी बगलो मे टार्च का प्रकाश

फेककर देखा गया कि उनमे कीड़े या जूएँ तो नही है ? कैसी विचित्र जगह थी। पर बाद मे हमे लगा कि यह भी अच्छा ही हुआ। उस दुनिया के दर्शन भी हमे हो गये। पूँजीवादी समाज-व्यवस्था के नमूने तो देखने को मिले।

जब हम पश्चिमी जर्मनी की यात्रा कर रहे थे, तो हमे सडको पर, शहरो के मकानो पर, दफ्तरो मे, एक विशेष प्रकार का पोस्टर तथा साइनबोर्ड देखने को मिलता था। उसमे जर्मनी के पॉच टुकड़े दिखाये गये थे और उस पर एक प्रश्नचिह्न लगा हुआ था! इस पोस्टर को देखते ही किसी भी जर्मन युवक का खून खौल उठना स्वाभाविक है। तथाकथित मातृभूमि का प्यार इन पॉच टुकडो को फिर से एक करने के लिए हर कीमत पर तैयार होने की प्रेरणा देगा। रूस और पोलैण्ड के खिलाफ उसके मन मे आग पैदा होगी। ऐसे खतरनाक पोस्टर देखकर मुझे बडी निराशा होती थी।

पदयात्री साथी

●

जब हम बोन मे थे, तो हमे डूस्सलडोर्फ से एक तार मिला : "क्या मै आपकी यात्रा मे शामिल हो सकती हूँ ?" यह एलके नाम की २० वर्षीया तरुणी का तार था। हमने तुरन्त ही स्वीकृति का उत्तर दिया और कुमारी एलके हमारी यात्रा मे शामिल हो गयी। पहले ही दिन जब हम अपने पडाव पर पहुँचे, तो हमने देखा कि एलके बहन के मुकोमल पॉव छालो से फूल गये है और उसे यह पदयात्रा भारी पड रही है। हमने उसे समझाया कि पैदल चलने के लिए प्रारम्भ मे अभ्यास की जरूरत है और इसलिए वह अभी हमारे साथ यात्रा करने का विचार छोड दे। पर एलके बहन ने हमारी एक न सुनी। "कष्टो से डरकर क्या आप वापस चले जाने की सलाह मुझे देगे ?" उसने बीयर का प्याला अधरो पर

लगाते हुए हमे चुनौती दी और आखिर उसने वेल्जियम की सीमा तक हमारे साथ यात्रा की।

हाम्बुर्गका थामस नामक युवक भी हाम्बुर्ग से डोर्टमंड की सैकडो मील लम्बी सडक पर खड़ा हो गया। वह आती-जाती कारवालों को रोककर कहने लगा कि "मै अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-पदयात्रा मे शामिल होने के लिए जाना चाहता हूँ। मेरे पास रेल-किराया देने के लिए पैसे नहीं है, क्या कोई मुझे अपनी कार मे ले जायगा?" कई कारवालो ने उसकी बात मानी। किसीने २० मील, किसीने ४० मील और किसीने १०० मील तक लिफ्ट देकर आगे बढ़ाया। आखिर वह साहसी युवक हमारे पास तक आ ही पहुँचा। वह हमारी पदयात्रा का वेहतरीन मार्गदर्शक बन गया। वह अंग्रेजी भी जानता था, इसलिए एक अच्छे दुभाषिया का भी काम देता था।

२८ मील की यात्रा करके हम कोलोन पहुँच रहे थे। तेज वर्षा होने लगी। थोड़ी ओट पाकर हम एक तरफ खड़े हो गये। सामने के कॉफी हाउस से एक भारतीय विद्यार्थी ने हमे देखा। ये थे, श्री शिवकुमार सिंह। दौड़े आये हमारे पास। उन्होने अखबारो मे हमारा फोटो देखा था, इसलिए उन्हे पहचानने मे देर नहीं लगी। उनसे बातें हुई। वे हमारे साथ हो गये। आये थे कुछ घण्टो के लिए, रुक गये पूरे दिनभर। दूसरे दिन पदयात्रा मे भी वे शामिल हुए। एक दिन साथ चलने के ख्याल से आये, पर दो दिन बीत गये, चार दिन बीत गये। वापस जाने का उनका मन ही नहीं हो रहा था। आखिर दस दिन वे हमारे साथ रहे। वेल्जियम की सीमा आ गयी। अब आगे चलना उनके लिए कानूनी तौर से सम्भव नहीं था। उधर उनका कॉलेज भी छूटा जा रहा था। कुछ मजबूर-से होकर वे वापस गये। ऐसे कितने ही मित्र हमारे साथ यात्रा मे शामिल होते थे। उनके चेहरे और उनका उत्साह भुलाया नहीं जा सकता।

पश्चिमी जर्मनी मे शाकाहार का आन्दोलन खूब तेजी पर है। ईरान और अफगानिस्तान मे हमे सूखी रोटी और काली चाय के अलावा अक्सर कुछ नही मिलता था, वैसी बात यहॉ नही थी। हमे ऐसे-ऐसे शुद्ध शाकाहारी भोजनालय और रेस्तरॉ मिले कि देखकर दग रह जाना पड़ा। शाकाहार मे आगे बढ़े हुए भारत मे भी हमने वैसे रेस्तरॉ कभी नही देखे। स्वास्थ्य की दृष्टि से शाकाहार अधिक उपयोगी और लाभदायी है, ऐसा विचार यहॉ काफी जोर पकड़ रहा है। इसी तरह योगासनो की ओर लोगो की बढती हुई रुचि को देखकर भी मै चकित रह गया। कुछ शहरो मे तो बाकायदा ऐसे स्कूल चलते है, जहॉ पर योगासन सिखाये जाते है। कई जगहो पर लोग हमसे आग्रह करते थे कि आप योगासन करके हमे दिखाये। हम जब उन्हे शीर्पासन, सर्वागासन, प्राणायाम आदि करके बताते थे, तो वे बहुत प्रसन्न होते थे। भारत के प्रति पश्चिमी जर्मनी मे जो रुचि तथा आकर्पण है, उसका मुख्य कारण हमारे यहॉ का प्राचीन साहित्य तथा योगविद्या है। दुनिया की अपने ढग की सबसे बडी औद्योगिक बस्ती—एस्सन, डुस्सलडोर्फ, कोलोन—को देखकर तो हमे लगा कि भारत को वहॉ तक पहुँचने मे न जाने कितने दशक लगेगे।

वह पादरी और वह सिपाही

चलते-चलते सॉझ हो गयी। धरती पर अन्धेरा बिखरने लगा। हम पश्चिमी जर्मनी की एक खासी अच्छी बस्ती मे थे। कहॉ जायॅ? मेयर का दफ्तर बन्द हो चुका था। यूथ होस्टल का भी पता नही। इतने मे एक गगनचुम्बी कैथोलिक चर्च दिखाई पडा। चर्च के साथ ही लगी हुई थी एक सेमिनरी (पादरी बनने का प्रशिक्षण विद्यालय)। हमने सोचा कि क्यो न हम वहीं चले। जब हमने दरवाजा खटखटाया, तो एक भारी-भरकम पादरी ने दरवाजा खोला। एडी तक लटकता हुआ गहरे काले रंग का चोगा, गले मे क्रास, हाथ मे बाइबिल। पुस्तक के बीच मे ॲगुली

दबी हुई। जान पडता था कि वे बाइबिल पढ रहे थे। तभी हमने दस्तक दी। उन्होने हमे बड़े गौर से देखा—थके हुए दो यात्री, पीठ पर कपडो का थैला, रूखे-सूखे बाल, हाथ मे युद्ध-विरोधी पोस्टर।

"क्या चाहिए आपको ?" उन्होने पूछा।

"हम पदयात्री है। रातभर के लिए ठहरना चाहते है।" हमने इस उत्तर के साथ अपनी यात्रा के उद्देश्य एव दिल्ली से अब तक की कहानी भी सक्षेप मे बतायी। अपनी यात्रा के सम्बन्ध मे हम जो परचा सबको बॉटते थे, वह पर्चा भी हमने उन्हे दिया। उन्होने ध्यान से हमारा परचा पढा। फिर हम पर सन्देह की नजर फैलाते हुए बोले : "लेकिन, हमारे पास आपको ठहराने की जगह है कहॉ ?"

मैने कहा : "आपके घर के दालान मे ही हम ठहर जायॅ। ओढने बिछाने के कपड़े हमारे पास है।"

"नही। यह तो सम्भव नही है।"—पादरी ने कहा।

"तो क्या हम चर्च मे ठहर सकते है ?"

"नही। यह भी सम्भव नही।"

"तो फिर क्या हम सेमिनरी मे ठहर सकते है ?"

"नही। मेरे पास आप लोगो को ठहराने के लिए कोई जगह नही है।" यो कहते हुए उन्होने घर के दरवाजे बन्द कर दिये। हम अपना-सा मुँह लिये इस चिन्ता मे सन्न खड़े थे कि अब कहॉ जायॅ। इतने मे पादरी महोदय ने फिर दरवाजा खोलकर कहा : "आप यहॉ से चले क्यो नही जाते ? मेरे पास आपको ठहराने के लिए कोई जगह नही है।" उन्होने फिर दरवाजा बन्द कर दिया। अब तो हमारे वहॉ खडे रहने मे भी कोई तुक नही था। भगवान् के प्रतिनिधि के द्वार पर से हम यो लौटा दिये जायॅगे, इसकी हमने कल्पना भी नही की थी। पादरी महोदय के हाथ मे बाइबिल थी, जिसमे लिखा है कि 'दुश्मन से भी प्यार करो।' पर कितनी दूर था उनका आचरण। हम वहॉ से लौट आये।

आखिर निराश होकर आगे बढ़ने लगे, तो हमे एक पुलिस स्टेशन मिला। वहाँ के पुलिस अधिकारी ने एक अस्पताल मे हमारे ठहरने का प्रबन्ध किया।

और भी एक दिन हमे मिला पुलिस थाने का एक सिपाही, जिसकी किताब मे डडा और जेल लिखा है, प्यार और अतिथि-सेवा नही। दोपहरी मे हमने एक पुलिस थाने का दरवाजा खटखटाया। अधिकारी थाने मे नही थे। वे सामने की 'बार' मे बीयर पी रहे थे। जर्मन लोग बीयर को वैसा ही प्यार करते है, जैसे केरलवासी कच्चे नारियल के पानी को। जर्मनी मे शायद ही कोई ऐसा मिले, जो बीयर न पीता हो। पर ये लोग नशे से पागल होकर भान खो बैठे, ऐसा अवसर नहीं आता। 'बार' से हो'सिपाही ने हमे देखा। वह सोच सकता था कि दरवाजा खटखटाकर हम स्वतः चले जायेगे, पर उसने ऐसा नही सोचा। उसने मित्रो की गोष्ठी छोड़ी और दौड़कर हमारे पास आया। "क्या चाहिए आपको?" उसके इस सवाल पर हमने कहा : "हमे कुछ नहीं चाहिए। हम थोडी देर विश्राम करना चाहते है।" फिर अपनी यात्रा की कहानी हमने सक्षेप मे उसे बतायी। सिपाही ने कहा : "तो फिर चलिये न मेरे साथ, 'बार' मे चलिये। मेरे अतिथि बनिये।"

हम उसके साथ 'बार' मे जाकर बैठे। वह बीयर लाने के लिए आदेश देने ही जा रहा था कि हमने कहा : "नही। हम बीयर नही पियेगे। हमे आप सिर्फ पानी पिला दीजिये।" पर वह माननेवाला कहाँ? उसने केक के लिए आदेश दिया। आइसक्रीम मँगवायी। हमे प्यास लगी थी, इसलिए उसने कोकाकोला की दो-चार बोतले खुलवाकर रख दी। कहने लगा : "अब सुनाइये अपनी यात्रा की कहानी।" हमने सोचा था दस-पन्द्रह मिनट विश्राम करने का, पर लग गये दो घण्टे। हमने जब चलने की अनुमति माँगी, तो सिपाही बोला · "ऐसा कैसे हो सकता है? आपको मेरे घर पर भी चलना होगा। मेरी पत्नी से मिलना होगा और भोजन भी करना होगा।" तुरत उसने अपनी पत्नी को फोन

किया। हमारे 'ना' 'ना' कहने पर भी वह हमे घर ले ही गया। खाना खाने से हमने जब बिलकुल इनकार कर दिया, तो सिपाही की पत्नी ने हमारे लिए कॉफी बनायी और हमे नाश्ता कराया।

यो जर्मनी के लोग टर्किश कॉफी ज्यादा पसन्द करते है। वह कॉफी बहुत कड़वी होती है। मै तो वैसी कड़ी कॉफी का एक घूँट भी नही पी सकता। वे लोग कॉफी मे न तो चीनी मिलाते है, न दूध। चाय मे भी ये लोग दूध नही मिलाते। रूसी लोग चाय मे दूध के स्थान पर नीबू डालते है। पर जर्मनीवाले शुद्ध चाय का स्वाद लेना चाहते हैं। परन्तु हमारे मेजबान सिपाही ने हमारे लिए विशेष रूप से दूधवाली कॉफी बनाकर हमे पिलायी। फिर सिपाही ने कहा : "सच्चा काम तो आप लोग कर रहे है—देश-विदेश का सफर, युद्ध-विरोधी प्रचार। मै तो जीवन के विचित्र गोरख-धन्धे मे फँसा हूँ।"

इतने मे मेरी नजर दीवार पर टँगे तैल-चित्रो पर] गयी। बेहतरीन किस्म के चित्र थे। मुझे बहुत पसन्द आये। मै पिकासो का उपासक हूँ। नयी और प्रतीकात्मक कला मुझे बहुत पसन्द आती है। मै पूछ ही बैठा कि ये चित्र किसने बनाये है? मै चकित रह गया यह सुनकर कि वे चित्र उसी सिपाही के बनाये हुए थे। भले ही पेशे से वह एक सिपाही था, पर हृदय से वह एक कलाकार था। मै उसके चरणो में नतमस्तक हो गया। वह एक सच्चा इन्सान था। तुरत मुझे वह पादरी याद आया। कहाँ वह पादरी, कहाँ यह सिपाही! पादरी खड़ा नहीं होने दे रहा था, पर यह सिपाही हमे आगे बढने ही नहीं दे रहा था। सिपाही और उसकी पत्नी, दोनो ही अच्छी अंग्रेजी बोल लेते थे। वे हमे अपने ही घर पर रोकना चाहते थे। बोले : "रातभर यही ठहरिये। कल सूर्योदय पर आप अपनी यात्रा प्रारम्भ करिये।" पर हमारा आगे का कार्यक्रम कुछ इस तरह से तय था कि उसमें परिवर्तन करना सम्भव नही था। अतः हमे जाना पड़ा। पर वह सिपाही सदा के लिए हमारे

हृदय मे बस गया। वह इन्सान पहले था, सिपाही बाद मे। यही थी उसकी विशेषता।

श्री अडनावर के सामने प्रदर्शन

●

हम ब्राश्वीग, हानोवर, डोर्टमड, डूस्सलडोर्फ, कोलोन आदि नगरो मे होते हुए १५ जुलाई को पश्चिमी जर्मनी की राजधानी—बोन पहुँचे। एक सप्ताह पहले ही हमने चासलर श्री अडनावर को मुलाकात के लिए पत्र लिखा था और समय मॉगा था। जिस तरह पूर्वी जर्मनी के विदेश मत्री के साथ हमने जर्मन-समस्या के बारे मे चर्चा की थी, उसी तरह हम पश्चिम जर्मनी के सरकारी नेताओ के साथ भी चर्चा करना चाहते थे। इसलिए हम सीधे मार्च करते हुए चासलर के दफ्तर पहुँचे। बहुत देर खड़े रहने पर उत्तर मिला, 'कल आओ।' हम दूसरे दिन गये। फिर कहा गया, 'कल आओ।' तीसरे दिन उत्तर मिला : कुछ 'राजनैतिक कारणो से' स्वय चासलर अथवा अन्य कोई उच्च अधिकारी हमसे भेट नही कर सकेगे। हम जिन-जिन देशो मे जाते थे, उन सभी मे आम जनता से तथा सरकार के सर्वोच्च व्यक्ति अथवा सरकारी तौर पर नियुक्त किसी जिम्मेदार व्यक्ति से मिलकर अपनी एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण की मॉग पेश करते तथा उनका उत्तर सुनते थे। परन्तु इस देश की सरकार 'राजनैतिक कारणो से' हमारी बात सुनने के लिए भी तैयार नही थी।

हम करीब सौ मील का चक्कर खाकर सरकारी प्रतिनिधियो से मिलने के लिए बोन गये थे। पर कोई भी हमसे मिलने के लिए तैयार नहीं था। इसलिए १९ जुलाई को सवेरे ९ बजे से शाम को ६ बजे तक, चासलर श्री अडनावर के दफ्तर के सामने हमने प्रदर्शन करने का निश्चय किया। हम ठीक ९ बजे वहॉ पहुँचे। सरकार को और पुलिस को हमने इसकी सूचना पहले से ही दे दी थी। हमारे वहॉ पहुँचने के

थोड़ी देर बाद ही पुलिस आयी। हम जो परचे बॉट रहे थे, उन्हे उसने जबरन छीन लिया। हमारे हाथ का 'प्लेकार्ड' भी उसने छीन लिया। कुछ शान्ति-साहित्य भी ले लिया। फिर उसने हमसे प्रदर्शन न करने के लिए कहा। हमने जवाब मे कहा कि "आप जो कुछ छीनकर ले जाना चाहते है, भले ले जाइये। पर हम आज पॉच बजे तक यही रहेगे।" इस तरह ५ बजे तक हम खाली हाथ बैठे रहे। हमने सोचा कि जो सरकार प्रतिदिन ५ करोड जर्मन मार्क सेना पर खर्च करती है, उसके सामने अपनी मॉग तो अवश्य रखेगे। यदि वे हमसे मिलकर हमारी बात सुनना नही चाहते है, तो प्रदर्शन द्वारा सुनायेगे। इस देश की सरकार ने हमारी यात्रा के प्रति पूरी तरह उपेक्षा दिखायी। हमे परचे बॉटते हुए पहली बार इसी देश की पुलिस ने रोका। एक बार हम कुछ सैनिको के बीच परचे बॉट रहे थे, तो एक अधिकारी ने हाथ से परचो का बण्डल छीनकर परचे फाड़ डाले। हम जब परचे बॉटते थे, तो हमारे हाथ का 'प्लेकार्ड' देखकर कुछ लोग परचा लेने से इनकार भी कर देते थे।

बहरहाल, यह जर्मन-सरकार की सहानुभूति थी कि हम गिरफ्तार नहीं किये गये। शातिपूर्वक अपना प्रदर्शन सम्पन्न करके हमने बोन नगरी से विदा ली और बेल्जियम की तरफ चल पडे। जर्मनी मे हमारा अतिम पडाव आखेन मे था। आखिरी दिन की हमारी मेजबान महिला ने बडे प्रेम से हमारा आतिथ्य किया। औद्योगीकरण तथा आधुनिकता के परिणामो की चर्चा करती हुई यह बहन बोली : "हमारे यहॉ के लोग विवाह को एक अनावश्यक भार मानने लगे है। ४६ प्रतिशत महिलाऍ और ५१ प्रतिशत पुरुष विवाह के प्रति उदासीन है। इनका ऐसा विचार है कि सुखी जीवन के लिए विवाह की कोई आवश्यकता नही है। हमारे देश मे अविवाहित स्त्रियों की सख्या एक करोड के आसपास है।" इस तरह से हमारी बाते चलती रही और जर्मनी का प्रवास पूरा हुआ।
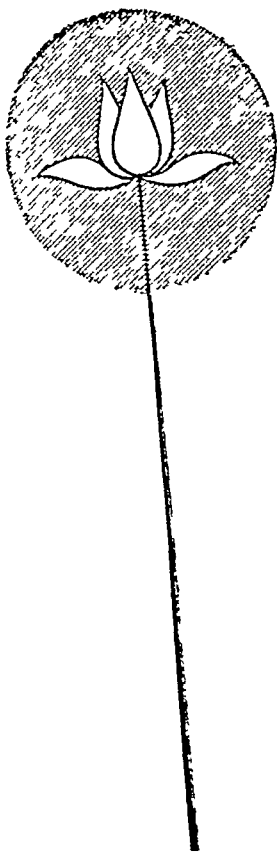
बेल्जियम
की सुन्दर गोद में

२४ जुलाई को जर्मनी की ६० दिन की यात्रा पूरी करके हमने बेल्जियम मे प्रवेश किया। ९० लाख की जनसंख्यावाला यह छोटा-सा देश है। सारा यूरोप ऐसे छोटे-छोटे देशो का महाद्वीप है। हिन्दुस्तान जैसे बडे देश के निवासी को यूरोप के देश जिले या प्रान्त जैसे ही मालूम देगे। यूरोप को एक देश बनाकर नया संगठन खडा करने के लिए कुछ लोग आन्दोलन चला रहे है। व्यापार आदि की दृष्टि से कुछ यूरोपियन देशो ने साझे का बाजार—'कामन मार्केट'—खडा किया है, फिर भी सारे यूरोप का एक संगठन अभी सपना ही है।

बेल्जियम मे भी भाषा का झगडा एक तीव्र विवाद का विषय था। फ्लेमिश भाषा बोलनेवालो की यह शिकायत हमे बार-बार सुनने को मिलती थी कि फ्रेच भाषा बोलनेवाले लोग उन पर आधिपत्य जमाना चाहते है। इसलिए राज-काज मे दोनो भाषाओ को समान स्थान मिलना चाहिए। फ्रेचभाषी वाल्न अल्पमत मे है और फ्लेमिशभाषी बहुमत मे, पर प्रत्येक फ्लेमिशभाषी फ्रेच सीखता है। उधर फ्रेचभाषी फ्लेमिश भाषा सीखते तो है ही नही, उल्टे वे फ्लेमिश को नीची नजर से देखते है।

हम बेल्जियम की राजधानी ब्रुसेल्स पहुँचे। यह एक सुन्दर और खर्चीला शहर है। हम वाइ. एम. सी. ए. (यंग मेन क्रिश्चियन एसोसियेशन) के भवन मे ठहरे। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था है, जो ईसाई धर्म को माननेवाले युवको की तरफ से चलती है। दुनियाभर मे जगह-जगह इस संस्था ने अपने भवन खड़े किये है, जहॉ पर यात्री लोग सस्ते मे सुविधा के साथ ठहर सकते है। वैचारिक गोष्ठियॉ, मनोरञ्जन के कार्यक्रम इत्यादि का आयोजन भी इस सस्था की ओर से होता है। ब्रुसेल्स मे समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष श्री लेयोकोलार्ड से हम मिले। इन्होने अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय मे कुछ वर्ष पहले गोआ के मामले मे भारत की तरफ से वकालत की थी। पर हमे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उन्हे यह भी ज्ञात नही था कि गोआ को भारत ने सैनिक कार्रवाई द्वारा स्वतन्त्र कर लिया है। जो सवाल संयुक्त राष्ट्रसंघ मे विवाद का विषय बना, उसके बारे मे बेल्जियम की दो मे से एक शासक पार्टी के अध्यक्ष और राज्यमन्त्री श्री कोलार्ड को कुछ भी पता नही था।

ब्रुसेल्स मे मोरिस कोसिन नाम के भाई ने हमे बहुत मदद की। ये भाई बेल्जियम के तटस्थ शान्ति-आन्दोलन के प्राण है और विश्व-नागरिक संस्था के प्रमुख सञ्चालक है। श्री कोसिन के साथी तथा अणु निःशस्त्रीकरण आन्दोलन (सी. एन. डी.) के अध्यक्ष श्री रेन. डी मोट ने भी हमे उत्तम आतिथ्य प्रदान किया। श्री डी. मोट यो वृद्ध है, पर हैं बहुत चुस्त और सक्रिय। पठन-पाठन खूब करते है। छोटा-मोटा सब काम खुद कर लेते है। अपना घर है। छोटा-सा बगीचा भी है। खेलते है। धूप-स्नान लेते है। आश्रम-जीवन जैसा ही है। पियानो बजाने के बड़े शौकीन हैं। काम से थककर अकसर पियानो पर अँगुलियॉ थिरकाने लगते है। घर पर अकेले ही रहते है। पत्नी को बहुत दिन पहले तलाक दे दी थी, पर आज भी उसके साथ अच्छा सम्बन्ध रखते है। महीने मे एकाध बार उसके यहॉ भोजन आदि भी कर आते है।

तलाक ले लेने के बाद भी मित्रो जैसा अच्छा वर्ताव रखनेवाले पति-पत्नी के यूरोप तथा अमेरिका मे मुझे कई उदाहरण देखने को मिले। दाम्पत्य जीवन सुखी नही रहता, तो लोग समझ-बूझकर अलग हो जाते है। तलाक का अर्थ यह नही कि दोनो आपस मे झगड़ते रहते हो। और भी हम अनेक बार ऐसी महिलाओ व पुरुषो के साथ ठहरे, जिन्होने अपने पति से तलाक ले लिया हो। तलाक के बाद भी वे अपने भूतपूर्व साथी के साथ अच्छे साथी जैसा सम्बन्ध रखते थे। दोनो का परस्पर मिलना-जुलना, खाना-पीना, घूमना-फिरना इत्यादि चलता रहता था। मुझे ऐसा लगा कि यूरोप और अमेरिका मे बड़ी सख्या मे तलाक होते तो है, परन्तु भारत की अपेक्षा वहाँ के लोगो का वैवाहिक जीवन कही अधिक सुखी है। क्योकि उन पर मजबूरी का बन्धन नही है। हमारे यहाँ जिस तरह से घुट-घुटकर के दाम्पत्य जीवन की गाडी खीची जाती है और मजबूरी का प्रेम निभाया जाता है, वैसा वहाँ नहीं चलता। विवाह केवल साथ रहने का समझौता नही, बल्कि प्रेम और हृदय का सम्बन्ध है—इसका दर्शन हमे कई बार हुआ। मजबूरी से प्रेम की गाडी खीचनी पडे, तो वह प्रेम नही, बन्धन ही है।

हम जिन दिनो ब्रुसेल्स मे थे, उन दिनो कागो के तत्कालीन प्रधान मन्त्री भी वही थे। बेल्जियम ने कागो मे जो साम्राज्यवादी नाटक खेला, वह बेल्जियम के इतिहास पर एक कलक ही है। अफ्रीका मे यूरोप के देशो ने ऐसे खेल रचकर अपनी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का जो परिचय दिया, उससे एशिया और अफ्रीका के लोगो के दिलो मे यूरोप के लोगो के प्रति एक प्रकार का द्वेष और नफरत पैदा हुई है। यह स्थिति आज भी कायम है। अगोला जैसे अफ्रीकी देश अभी भी साम्राज्यवादी पजे के नाखूनो से लहू-लुहान हो रहे है। स्वय बेल्जियम के अनेक लोगो ने इस परिस्थिति के प्रति चिन्ता और असहमति प्रकट की और अपने देश की कागो-नीति का विरोध किया।

बेल्जियम के आखिरी पडाव, मोन्स मे एक विचारगोष्ठी मे युद्ध और शान्ति के प्रश्न पर बोलते हुए हम भारत और चीन के संघर्ष पर चर्चा कर रहे थे। भारत के सैनिक दृष्टि से पीछे हटने पर एक शान्ति-वादी ने टिप्पणी करते हुए कहा : "थोडी पूँजी मालिक को भी खा जाती है। जिसके पास थोड़े से पैसे हों, वह गरीब कहलाता है। पर एक भी पैसा जिसके पास नही, जिसने स्वेच्छा से पैसो का त्याग कर दिया है, ऐसा व्यक्ति बड़े-से-बड़े धनपति का भी सम्मान प्राप्त करता है। उसी तरह आज के आणविक युग मे सेना का विसर्जन करनेवाला बडे-से-बड़े सैनिकवादी राष्ट्र का भी आदर प्राप्त करेगा।"

मोन्स नगर की हमारी यह गोष्ठी भारत-चीन सम्बन्धो पर केन्द्रित रही। यूरोप के शान्तिवादियो के सामने शान्ति का प्रश्न जिस तरह से उपस्थित है, उस तरह से भारत के सामने शान्ति का प्रश्न नहीं था। भारत की धरती पर कोई बड़ा युद्ध भी नही लडा गया। अणुअस्त्र और राकेट भी भारत के पास नही, पर अब जब से चीन के साथ भारत का

संघर्ष छिड़ा है और जब से चीन के पास अणुबम हो गया है, तब से भारत के शान्तिवादियो के सामने भी वे ही प्रश्न खडे हो गये है, जो यूरोप के शान्तिवादियो के सामने है। गांधी का देश भारत इन प्रश्नों का सामना किस तरह करता है, यह यूरोप के लोगों के लिए दिलचस्पी की बात है।

एकतरफा निःशस्त्रीकरण सैद्धान्तिक रूप से बडा आदर्श प्रतीत होता है। आये दिन रूस और अमेरिका को आह्वान करनेवाले प्रस्ताव पास करके उन्हे एकतरफा निःशस्त्रीकरण की दिशा मे आगे बढ़ने के लिए निवेदन किया जाता है, पर प्रस्ताव करनेवाले अनेक शान्तिवादियो को इस बात की आशा नही है कि रूस या अमेरिका उनके प्रस्तावो की तरफ गम्भीरता से दृष्टि भी डालेगा। ऐसी दशा मे एकतरफा निःशस्त्रीकरण की बात पर लोगो का विश्वास नहीं जमता। लेकिन भारत आज भी कोई असाधारण कदम उठा सकता है, ऐसा स्वप्न संसारभर के शान्तिवादी लोग देखा करते है। किन्तु आज की परिस्थिति मे तो वह स्वप्न भी टूटता जा रहा है। भारत-चीन के सीमा-विवाद के बाद विदेशी आलोचकों की दृष्टि मे भारत के लिए एक परीक्षा का अवसर उपस्थित हुआ है। इन विदेशी आलोचको को हम तीन हिस्सो मे बॉटेंगे। अमेरिकी गुट, सोवियत गुट और तटस्थ लोग, जिनमे शान्तिवादी आलोचक भी शामिल है। हमने अपनी विदेश-यात्रा मे देखा कि तीनो क्षेत्रो के अखबारो और पत्र-पत्रिकाओ मे भारत की गृह-नीति, विदेश-नीति तथा सुरक्षा-नीति के बारे मे विभिन्न पहलुओं से आये दिन विचार प्रकट किये जाते है। अमेरिकी गुट की दिलचस्पी इस बात मे है कि भारत कहीं कम्युनिस्ट कब्जे मे न चला जाय। सोवियत गुट की दिलचस्पी इस बात मे है कि भारत कहीं पूॅजीवादी गुट मे शामिल न हो जाय। तटस्थ और शान्तिवादी आलोचकों की दृष्टि इन दोनो से भिन्न है। वे बड़ी उत्सुकता के साथ देख रहे है कि अहिंसा की जो बुनियाद भारत मे है और नेहरू ने कल तक तटस्थता, शान्ति और अहिंसा के प्रवक्ता बनकर अन्य देशों

को जो सलाह और उपदेश दिया है, उसे आज भारत की सरकार, जनता तथा शान्तिवादी तत्त्व किस तरह व्यवहार मे उतारते है। यदि भारत का अहिसावादी और शान्तिवादी आन्दोलन असफल हुआ, तो इन शान्तिवादी समालोचको की मान्यता मे विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-आन्दोलन की कमर झुक जायगी।

भारत की गरीबी का राक्षस, सामाजिक और आर्थिक विषमता, पाकिस्तान के साथ बिगड़े हुए सम्बन्ध और चीन के साथ सघर्ष, इन सबके साथ लड़ने के लिए भारत के पास क्या तैयारी है? एक अमेरिकी दैनिक पत्र ने यह प्रश्न उठाया था कि क्या भारत और चीन का मुकाबला सैनिक तैयारी से संभव है? लगभग २६ लाख सैनिको की स्थायी फौज के अलावा २ करोड़ ६० लाख के करीब सिपाहियो की पुलिस के साथ चीन के पास दुनिया के किसी भी देश से बडी स्थल-सेना है। इस तुलना मे अमेरिका के पास भी १० लाख सैनिको से कम ही स्थायी फौजी ताकत है। तीन हजार वायुयान, जिनमे अधिकाश जेट विमान है, और एक लाख सैनिको की वायुसेना चीन ने तैयार की है। इस तरह चीन एक परिपूर्ण सैन्यवादी देश के रूप मे खड़ा हो रहा है। उसने अणु-अस्त्रो का निर्माण प्रारम्भ कर दिया है और वह अगले पन्द्रह सालो मे संसार को ध्वस्त कर सकने लायक अणु-शस्त्रो का निर्माण भी कर लेगा।

एक दूसरे अमेरिकी पत्रकार लारेन्स बारेट्ट का मन है कि ७० करोड की आबादी का ऐसा देश, जिसकी आबादी तेजी से बढती जा रही है, जो चारो तरफ कमजोर पड़ोसियो से घिरा हुआ है, जो दुनिया के अधिकाश राष्ट्रो से तथा सयुक्त राष्ट्रसघ से उपेक्षित होकर अकेला पडा है और जहाँ के नेता अपने ही रंग मे मतवाले है, अगर दुनिया को किसी आणविक युद्ध के खतरे मे झोक दे, तो वह असम्भव बात नही है। चाहे कोरिया-युद्ध हो या दक्षिण वियतनाम, भारत के साथ का संघर्ष हो या दक्षिण-पूर्वी एशिया का अन्य कोई सघर्ष। चाहे विदेशी मामले हो या

घरेलू । चीन सरकार ने अपने देश के मनुष्यो के जीवन के प्रति सदैव
अनादर दिखाया है और कितने चीनी मरे, इस तथ्य की उपेक्षा की
है। इसलिए क्या भारत भी चीन के साथ उसी होड मे उतरना चाहता
है ! क्या वह कोई स्वस्थ होड़ है ? क्या उस होड का कही अन्त भी है ?

राष्ट्रपति केनेडी, जिन्होने लाल चीन की सरकार को औपचारिक
रूप से मान्यता तक प्रदान नहीं की, भी लाल चीन के इरादों से सशंकित
थे। उन्होने कहा था कि सन् १९७० तक लाल चीन अमेरिका के लिए
दूसरे महायुद्ध के बाद सबसे बडी परेशानी बन जायगा।

पेरिस मे भारतीय दूतावास के एक कार्यकर्ता ने कहा कि क्या चीन
के रूप मे नया अंगुलिमाल प्रकट हो रहा है, जो रूस, अमेरिका और
भारत की दोस्ती को ठुकराता चला जा रहा है ? मैने हँसते हुए पूछा कि
उस अंगुलिमाल को सामान्य मानव रूप मे बदलने के लिए बुद्ध कौन
बनने को तैयार है ? तब उस कार्यकर्ता ने कहा कि बुद्ध निर्भय और
निःशस्त्र थे। पर वह तरीका राजनीति मे व्यावहारिक नहीं है। हमे
अगुलिमाल का दमन शस्त्रो द्वारा करना होगा। तब मुझे याद आयी
एक फ्रेंच लेखक की बात, जिसने कहा था कि नेहरू के आदर्शों की
चमक धुॅधली पड रही है। तटस्थता, शान्ति और अहिंसा के सिद्धान्त
को अमल मे लाकर किसी भी जटिल-से-जटिल समस्या को बातचीत
द्वारा तथा शान्तिपूर्ण तरीको से निबटाने का नेहरूजी का सिद्धान्त अमल
मे लाने के लिए उनके तन्त्र की धार भोथरी होने लगी है। भारत के
शासक भी सामान्य राजनीतिक बनते जा रहे है। वे वैसे ही कदम उठाते
है, जो कोई भी साधारण राजनेता उठा सकता है। यह आलोचना एक
से अधिक बार मुझे सुनने को मिली।

इस तरह से हमारे सामने भारत और चीन का प्रश्न तीव्रता के साथ
उपस्थित होता था, क्योकि हम स्वयं शान्ति और निःशस्त्रीकरण की
बात करते थे और ऐसे लोगो के सम्पर्क मे अधिक आते थे, जो इन
प्रश्नो पर गहराई से चिन्तन करते थे। बेल्जियम जैसे छोटे-से देश के

भी गाधी की बात को समझनेवाले लोगो की वड़ी जमात हमे मिली और इन प्रश्नों पर हमारी उनके साथ चर्चा हुई।

४ अगस्त का दिन वेल्जियम की इस सक्षिप्त-यात्रा का अन्तिम दिन था। २४ जुलाई से ४ अगस्त तक के इस समय में वेल्जियम की मनोरम धरती पर विहरण करते हुए हमने सदैव एक विशिष्ट आनन्द का अनुभव किया। इस यात्रा का अंतिम दिन हमने श्री हाइनट दोर के साथ बिताया। कला के इस महान् प्रेमी ने अपने घर को मानो कला-सग्रहालय ही बना रखा है। मिट्टी के वर्तनो पर हाथ की कारीगरी का इतना सुन्दर काम देखकर ऐसा लगा कि मशीने कभी भी मनुष्य के हाथ की कला का मुकाबला नही कर सकती।
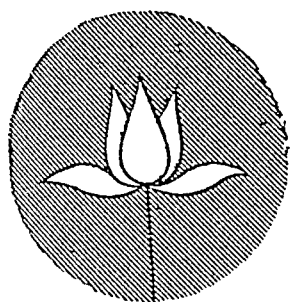
संगीत सौन्दर्य और शृंगार की धरती फ्रांस में

५ अगस्त १९६३। हमने कला और सगीत की मधुमयी धरती फ्रास मे प्रवेश किया। हमारा पहला पडाव मोबोज नगर मे था। लोगो मे आकर्षण और उत्सुकता थी। नगरपालिका के लोग, चर्च के लोग और समाजवादी लोग हमारे आतिथ्य का प्रवन्ध कर रहे थे। पहले ही दिन स्थानीय दैनिक पत्रो ने हमारी यात्रा का वर्णन नगर की प्रमुख घटना के रूप मे प्रकाशित किया। फ्रास मे भाषा की दिक्कत ने हमारे लिए कठिनाइयाँ शुरू कर दी। कभी-कभी तो पूरे दिन एक भी आदमी ऐसा नहीं मिलता था, जिसके साथ हम बात कर सके। किसी नगर मे पहुँच-कर हम नगरपिता के कार्यालय मे जाते, तो नगरपिता हमे तुरन्त पहचान लेते। अखबारो के जरिये उनके पास हमारे फोटो और समाचार पहुँचे हुए रहते थे। वे हमे आरामदेह होटलो मे ठहराते, ठहरने और खाने का खर्च भी नगरपालिका की तरफ से करते, परन्तु एक शब्द भी बात किये बिना हम दूसरे दिन आगे चल पडते थे। कभी-कभी हम लोग रोटरी क्लब के सदस्यो के साथ ठहरते, तो उनके साथ अग्रेजी मे बात करना सम्भव हो पाता था।

प्राकृतिक शोभा की दृष्टि से फ्रास की धरती अनुपम है। फ्रास का ग्राम-जीवन अभी भी पूरी तरह टूटा नही है। इसलिए गॉवो का वातावरण बहुत स्वच्छ और सुहावना है। प्रतिष्ठित लोग गॉवो मे रहना और खेती करना पसन्द करते है। खाद्य-सामग्री और कृषि-उत्पादन का निर्यात करनेवाले देशो मे फ्रास का स्थान महत्त्वपूर्ण है। फ्रास के लोग अगूरी हाला पीने के बडे शौकीन होते है। सुबह का नाश्ता हो या दोपहर का भोजन, रात हो या दिन, मदिरा की बोतल भोजन की मेज पर अवश्य रहेगी। रूस मे मदिरा-पान के लिए जैसा जबर्दस्त आग्रह हमारे साथ किया जाता था, उसकी याद फिर ताजा हुई। हमे यह भी लगा कि
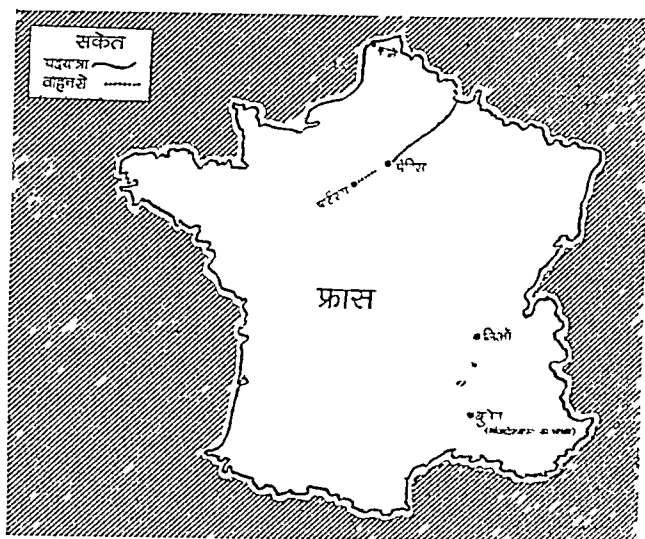
फ्रास के लोगो का दिल जल्दी नहीं खुलता, पर एक बार घुल-मिल जाने के बाद तो वे न्योछावर हो जाते है। फ्रास के लोग बहुत स्वादिष्ट भोजन बनाते है। दो-दो हाथ लम्बी फ्रेंच रोटियॉ खाने मे बड़ी स्वादिष्ट होती है। फ्रेंच भोजन मे पनीर का होना तो अनिवार्य है। सैकड़ो प्रकार का पनीर हमने देखा। सवेरे का नाश्ता बहुत हल्का होता है—कॉफी का एक बडा कप और 'क्वॉसॉ' नाम की रोटी। हम नाश्ते की टेबल पर बैठते ही कह उठते थे : 'क्वॉ सॉ मिरपन्ते।' शाम का भोजन तो एक दावत जैसा ही होता है।

पेरिस मे

●

हम पेरिस पहुँचे। पेरिस है संसार की सुन्दरतम नगरियो मे से एक। फैशन और विलास की सामग्रियो का यहाँ अत्यधिक प्रचलन है। रात्रि के विद्युत् प्रकाश मे पेरिस की सुन्दरता और भी निखर उठती है। मीलो लम्बी और अत्यन्त चौड़ी सडके इस महानगरी की विशेषता है। हर दस कदम पर सुन्दर और आधुनिक जलपान-गृह। जगह-जगह ऊँचे-ऊँचे गगन-चुम्बी महल। सुन्दर और कलापूर्ण द्वार। पेरिस के बीचोबीच सेइने नदी बहती है, जो नगरी के सौन्दर्य मे चार चाँद लगाती है। अपने उत्कृष्ट कोटि के चित्र-संग्रहालयो के लिए तो पेरिस प्रसिद्ध ही है। पेरिस नगर का प्रतीक है एफेल टावर। बादलो से बाते करनेवाला यह टावर फ्रास की औद्योगिक क्रान्ति का परिचायक है। पूरा-का-पूरा इस्पात-निर्मित। पेरिस को किसीने यूरोप की रानी कहा है और किसीने इसका नाम अलकापुरी दिया है। विश्व के सुप्रसिद्ध साहित्यकार विक्टर ह्यूगो ने पेरिस की नदी के किनारे बैठकर मानवता का जो राग अलापा और रूसो तथा वाल्टेयर ने जिस धरती पर स्वतन्त्रता, समानता एवं बन्धुता के सिद्धान्तो की रचना की, उन सिद्धान्तो ने हमारे हृदय मे भी चेतना पैदा की।

मुक्त प्रणय का पेरिस मानो केन्द्र ही है। बगीचो मे, सड़को पर, बेंचो पर, नदी के किनारे, जहाँ देखिये तरुण युगल एक-दूसरे को गल-बहियो मे लिपटे हुए चुम्बन करते दिखाई पडेगे। रात्रि-क्लबो मे चलने-वाला अंग-प्रदर्शन तो कला के अन्तर्गत मान लिया गया है। इसमे कोई सन्देह नही कि पेरिस उन लोगो की नगरी है, जिनकी जेबे भरी है।

स्वच्छता, सुन्दरता और सुव्यवस्था के कारण यह नगरी बहुत प्रसिद्ध है। सड़को के नाम, मकानों के नम्बर इत्यादि बड़ी कुशलता के साथ लिखे हुए है। लोगो से मिलने-जुलने के लिए हम नगर के भिन्न-भिन्न

भागों मे अकेले ही पैदल जाते थे, पर हमे कभी कोई दिक्कत नही आयी। हम अपने हाथ मे नकशा रखते थे और उसके अनुसार आसानी से ठीक जगह पर पहुँच जाते थे। प्रत्येक मैट्रो (भू-गर्भ रेल) के स्टेशन पर भी बडे-बडे नकशे टॅगे रहते है, ताकि कही भी यह जाना जा सके कि इस समय हम कहाँ है। ऐसे सुन्दर शहर मे भी नीलाम करनेवाले के बाजार मे जब हम पहुँचे, तो हमारा दम-सा घुटने लगा। लोग हमे सड़क पर से आवाज देकर बुलाते थे और सामान खरीदने का आग्रह करते थे। पेरिस का यह हिस्सा उस हिस्से से सर्वथा भिन्न था, जहाँ धनी लोग भोग-विलास का जीवन जीते है। ऐसे इलाको के लोग अपने जीवन से थके और परेशान लगते थे। 'बार' मे, नृत्य-घर मे या थियेटरो मे मनोरंजन खोजते हुए वे घूमते है। विज्ञापनो की दमक, बिजली की चमक और रात्रि-क्लबो का आकर्षण भी उन्हे शान्ति और समाधान देने मे असफल रहता है। पेरिस के सौन्दर्य पर लोग मोहित है, पर अन्दर के जीवन मे वहाँ भी एक घुटन है। पेरिस के लोग शनिवार और रविवार को कही नदी किनारे, पहाड की गोद मे, जगल की छाया मे या गॉव की शान्ति मे अपना समय बिताने के लिए भागकर जाते है।

पूरे यूरोप मे ऊपर से दीखनेवाली यह समृद्धि एशिया और अफ्रीका के शोषण पर ही तो टिकी है। फ्रास ने दक्षिण-पूर्वी एशिया और अफ्रीका के उपनिवेशो पर शासन करके जो लाभ कमाया और अल्जीरिया जैसे देश के साथ जो व्यवहार किया, उसकी कहानी के साथ यहाँ की समृद्धि को जोडकर देखे, तब यह सहज महसूस होगा कि इस समृद्धि की तारीफ करने का मतलब है, शोषण पर आधारित अर्थ-रचना को बढावा देना। इसलिए इस स्वर्गपुरी के आगे सदैव 'लेकिन' का प्रश्न-चिह्न खडा है। एक शहर के नीचे हजार-हजार गॉवो की करुण-कथा छिपी है। इसलिए मुझे लगता है कि शहर से गॉव ज्यादा सुन्दर है। कृत्रिमता से प्रकृति ज्यादा लुभावनी है। महलो से झोपडियॉ ज्यादा सुहावनी है।

जब पिस्तौल पिघल गयी !

●

पेरिस अविस्मरणीय है। इसलिए नही कि वहाँ विश्वप्रसिद्ध एफेल टावर है। इसलिए भी नहीं कि वहाँ कला का बेहतरीन नमूना मोनोलिसा का चित्र है। इसलिए भी नही कि वहाँ के रात्रि-क्लबो और मदिरालयो की शान निराली है। इसलिए भी नहीं कि दिल्ली से १६ महीने मे ६ हजार मील की पैदल यात्रा समाप्त कर हम वहाँ पहुँचे। पेरिस इसलिए अविस्मरणीय है कि वहाँ प्रेम के सामने पिस्तौल पिघल गयी। शान्ति के सामने क्रोध घुल गया। भय और अविश्वास प्रेमपूर्ण आतिथ्य मे बदल गया।

यह घटना घटी १८ अगस्त १९६३ को। पेरिस का चहल-पहल-भरा राजपथ-एवेन्यू डी क्वीन, मकान नं० ३५। मै अपने साथी प्रभाकर के साथ गाधीवादी श्रीमती पेटिट से मिलने के लिए उक्त मकान पर पहुँचा। हम जब मकान के सामने पहुँचे, तो दरवाजे से एक युवती बाहर निकल रही थी। उस युवती ने जैसे ही हमे देखा, वह डरी, घबरायी और तुरन्त लौट पडी। घर के भीतर जाकर उसने दरवाजा बन्द कर लिया। हम कुछ समझ नही सके कि बात क्या है। हमने पता अच्छी तरह से देखा। मकान नं० ३५। ठीक पता था। पेरिस मे किसी भी घर का प्रमुख दरवाजा खोलने के लिए 'ऑटोमेटिक बटन' होता है। हमने बटन दबाकर दरवाजा खोला। हम ज्यो ही अन्दर पहुँचे कि उस युवती की घिग्घी-सी बँध गयी। उसका सन्देह पक्का हो गया कि शायद हम उसीके पीछे है। वह घबरायी हुई जल्दी-जल्दी सीढ़ियो पर चढ़ने लगी।

हम दरवाजे के पास ही खडे थे। दो मिनट बाद हमने देखा कि एक अधेड उम्र का हट्टा-कट्टा पुरुष जल्दी-जल्दी सीढ़ियो से उतर रहा है। उसके हाथ मे भरी हुई पिस्तौल थी। उसकी उँगली पिस्तौल के घोडे पर थी। उसका चेहरा लाल था। उसके ललाट पर पसीना था।

वह क्रोधित कम था, भयभीत अधिक। युवती ऊपर से झुककर देख रही थी, पर नीचे आने का साहस नहीं कर पा रही थी। पुरुष और युवती दोनों यह सोच रहे थे कि हम शायद पिस्तौल देखकर डरेंगे और तुरत भाग जायेंगे। पर ऐसा नहीं हुआ। वह पिस्तौल मेरी छाती के नजदीक लाया। मै इस सारी घटना पर अचम्भा कर रहा था और हँस भी रहा था। आखिर मामला क्या है? हम फ्रांसीसी भाषा नहीं जानते थे। बात कैसे करे? हमने अंग्रेजी मे उससे बार-बार कहा कि हम यहाँ अपने मित्र से मिलने आये है और उसका पता ढूँढ रहे है। पर वह अंग्रेजी नहीं जानता था। फ्रांसीसी मे उसने हमे ललकारा, डाँटा। वह क्या कह रहा है, यह हम समझ नहीं सके। हम भागे भी नहीं। तब उसने पुलिस को कई आवाजे दी। फिर भी हम खडे रहे। इशारे से हम इतना समझे कि वह हमे बाहर निकल जाने के लिए कह रहा था, पर हम बाहर नहीं निकले। हम शान्त खड़े थे। उसने दूसरे हाथ मे हमे धक्का दिया। हमारी 'शान्ति' को वह सह नहीं सका। उसने हमारा गला पकडकर हमे घर से बाहर कर दिया। हम तब भी उसके भोलेपन पर हँस रहे थे और बड़े प्यार से उसकी ओर देख रहे थे। हम घर के बाहर ही खडे रहे।

हमे काफी देर हो गयी। हमने सोचा कि यदि हम यों ही चले जायेंगे, तो इस भाई के मन का भ्रम कभी नहीं मिटेगा। उसे हमारे बारे मे सचमुच कोई भ्रान्ति हुई है। इसलिए हम खडे रहे। उसने फिर से एक बार इशारे से डाँटते हुए कहा : "चले जाओ यहाँ से।" वह हमे बदमाश समझ रहा था।

इतने मे उसी घर से एक दूसरी महिला, जो यह सब देख रही थी, बाहर आयी। सौभाग्य से यह महिला अंग्रेजी जानती थी। उसके सामने हमने अपनी परेशानी रखी। उस महिला ने कहा : "आप ठीक है। श्रीमती पेटिट इसी मकान मे छठी मंजिल पर रहती है। अभी वे घर पर नहीं है, बाहर गयी है।" और फिर उसने युवती और पुरुष को

हमारी पूरी बात बतायी। तब तो क्या पूछना, वह बेचारा बहुत पछताने लगा और बार-बार क्षमा माँगने लगा। वह युवती भी बहुत शर्मिन्दा हुई। युवती से हमने अग्रजी जाननेवाली महिला को दुभाषिया बनाकर पूछा कि आखिर वह हमे देखकर डर क्यो गयी? तो उसने कहा "आप लोगो ने जो वेश धारण कर रखा है—चूड़ीदार पायजामा और लम्बा कुरता—वह मैने अपने जीवन मे पहली बार देखा है। इस अजीबो-गरीब पहनावे को देखकर मै डर गयी। मैने सोचा, 'आप लोग शायद मुझे तग करने के लिए इस घर में घुसे है।' इस पर हम सब लोग बहुत हँसे। चूडीदार पायजामा और कुरता ऐसी करामात दिखायेगा, यह मैने सपने मे भी नही सोचा था। फिर तो हम उस मकान मे श्रीमती पेटिट से मिलने दसो बार गये। हर बार वह युवती बड़े प्रेम से हमारा स्वागत करती, आतिथ्य करती, अपना नौनिहाल पुत्र हमारी गोद मे दे देती और हमारे साथ घुल-मिलकर बाते करती। कैसी अविस्मरणीय घटना है यह!

राष्ट्रपति-भवन मे गिरफ्तारी

●

हमने फ्रास की जनता और सरकार से बार-बार यह निवेदन किया कि फ्रास अणु-अस्त्रो के प्रयोगो पर पाबन्दी लगाये। पर राष्ट्रपति देगाल का यह कहना था कि फ्रास के पास अभी तक ऐसे शक्तिशाली अणु-अस्त्र नही है, जैसे कि रूस और अमेरिका के पास है। रूस और अमेरिका ने बमो से अपने भण्डार भर लिये है और अब सारी दुनिया को वे अपने प्रभाव मे रखना चाहते है, क्योकि अणु-अस्त्रोवाला देश ही स्वतन्त्रता के अपने सिद्धान्तो की रक्षा बिना किसीके सामने दबे कर सकता है। इसलिए या तो पूर्ण नि:शस्त्रीकरण हो, अन्यथा फ्रास स्वतन्त्र अणु-शक्ति का विकास करेगा।

यह ठीक है कि आणविक प्रयोगो पर प्रतिबन्ध मात्र लगाने से यु[illegible] का खतरा टल नहीं जाता। किन्तु सभी देश यदि यही कोशिश करे कि

हम भी अपनी स्वतन्त्र अणु-शक्ति बनाये, तो शस्त्र-प्रतियोगिता बढ़ेगी और समस्या अधिक-से-अधिक उलझेगी। इसलिए हमने आणविक प्रयोगो पर पाबन्दी लगाने की मॉग लेकर राष्ट्रपति-भवन के सामने प्रदर्शन करने की घोषणा की। एक बुजुर्ग शान्तिवादी ने कहा कि "हमारे राष्ट्र-पति को फ्रास पर गर्व है। वे फ्रास को यूरोप का नेता मानते है। इसलिए एंग्लो-अमेरिकन नीति के साथ उनकी पटरी नही बैठती। लेकिन उनका गर्व वास्तविकता पर आधृत नहीं है।" इसी तरह एक दूसरे सज्जन ने भी कहा कि "फ्रास अगर आणविक हथियारो का प्रयोग करके वायुमण्डल को विषाक्त बनायेगा, तो सारे संसार मे उसे बदनामी ही मिलेगी। आणविक हथियारो के निर्माण की होड़ मे नेतृत्व पाने की इच्छा के बजाय निःशस्त्रीकरण की होड मे हमारे राष्ट्रपति नेतृत्व ले, तो कितना अच्छा हो। संसार के वायुमण्डल को विषैला करने का अधिकार किसीको नहीं देना चाहिए।" आज तक बड़े राष्ट्रो ने अपनी शक्ति के गर्व पर मानव-जाति पर जो अन्याय किया, उसे फिर से नहीं दुहराया जाना चाहिए। फ्रास अणु-अस्त्रो का प्रयोग अपनी धरती पर न करके अफ्रीका मे जाकर क्यो करता है? यह प्रश्न पूरी मानव-जाति से सम्बन्ध रखता है, इसलिए प्रत्येक मानव, भले ही वह ससार के किसी भी कोने मे रहता हो, यह प्रश्न पूछने का अधिकारी है।

हमने अत्यन्त विनय के साथ राष्ट्रपति देगाल को पत्र लिखा, पर हमें उसका कोई उत्तर न मिला। दूसरा पत्र लिखा, उसका भी कोई उत्तर नही। तीसरा पत्र लिखा, फिर भी कोई उत्तर नहीं। आखिर हमने घोषणा की कि १६ सितम्बर को साढे चार बजे हम राष्ट्रपति-भवन के सामने पूर्ण अहिंसात्मक ढंग से शान्तिपूर्वक सत्याग्रह प्रारम्भ करेगे। हमारे इस निर्णय की सूचना बिजली की तरह सर्वत्र फैल गयी। एक जर्मन युवक, वोल्फगाग हमारे साथ सत्याग्रह मे शामिल होने के लिए आये। डेनमार्क के युवक ओल भी हमारे साथ शामिल हो गये। अपने कार्यक्रम की सूचना भारतीय राजदूत अली यावर जंग को भी दी। १५ सितम्बर

की रात को प्रभाकर ने एक शानदार 'बैनर' लिखकर तैयार किया। १६ सितम्बर को हमारे शान्तिवादी मित्रो ने सत्याग्रह पर जाने से पहले शानदार भोज का आयोजन किया। उसके बाद 'क्वेकर हाउस' मे एक छोटा-सा पत्रकार-सम्मेलन हुआ। हमारे मित्रो ने सुझाया कि हम राष्ट्र-पति-भवन के सामने पैदल चलकर न जायॅ। बहुत सम्भव है कि पुलिस रास्ते मे ही हमे रोक ले। इसलिए हम चारो सत्याग्रही कार मे चले।

राष्ट्रपति-भवन के सामने कार पार्किंग की मुमानियत है, पर एक मित्र ने कार पार्क करने का खतरा उठाया। हमारे पहुॅचने के पहले ही अनेक पत्रकार, फोटोग्राफर आदि वहॉ पहुॅच गये थे। हर १० कदम पर सिपाही खड़े थे। ज्यो ही साढ़े चार बजे कि हमारी कार रवाना हुई और राष्ट्रपति-भवन के दरवाजे के ठीक सामने निषिद्ध स्थान पर रोकी गयी। पुलिस ने ज्यो ही कार खडी करने के लिए कहना शुरु किया कि हम पलक मारते कार से बाहर निकल पडे। हमने अपना बैनर खोलना शुरू किया कि सिपाहियो ने आकर बैनर को पकड़ लिया। हम बैनर पूरा खोल नही पाये थे कि वह छीन लिया गया। फोटोग्राफर फोटो ले रहे थे। इतने मे हमने देखा कि भारतीय दूतावास के सास्कृतिक सचिव भी वहॉ उपस्थित है। आखिर राष्ट्रपति-भवन के सुरक्षा-अधिकारी खुद दरवाजे पर आये और हमसे बोले: "आप लोग राष्ट्रपति-भवन मे आमन्त्रित है। अन्दर चलिये।"

हम यह नही समझ सके कि यह आमन्त्रण असल मे गिरफ्तारी का नोटिस है। हम अन्दर गये। पीछे से अपने-आपको 'गांधीजी की मित्र' बतानेवाली दो फ्रेन्च महिलाओ ने हमारे मिशन के बारे मे और सत्याग्रह के बारे मे परचे बॉटने शुरू कर दिये। वे तुरन्त ही गिरफ्तार कर ली गयी। बाद मे उनसे तीस-तीस रुपया जुर्माना लेकर उन्हे छोड़ दिया गया।

हम लोग सुरक्षा-अधिकारी के सामने एक आरामदेह सोफे पर बैठाये गये। अधिकारी ने कहा: "राष्ट्रपति को आपकी सभी चिट्ठियॉ मिली है और उन्हे यह भी मालूम है कि आप [illegible] यहॉ है। [illegible]

लोग अपने इरादे के पक्के है।" हमे फिर उसी कोठरी मे बन्द कर दिया गया। शाम को भी हमने कुछ नही खाया। हमारे इस उपवास के कारण पुलिस-अधिकारी बहुत चिन्तित हुए। हमारे न खाने की सूचना जेल-कर्मचारी बराबर अधिकारियो के पास पहुँचा रहे थे। शहर के अनेक शान्तिवादी, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार और भारतीय दूतावास के अधिकारी बार-बार टेलीफोन करके हमारे बारे मे पूछताछ कर रहे थे।

१८ सितम्बर को जब हमे पुलिस-अधिकारी के सामने पेश किया गया, तो हमने देखा कि वहाँ भारतीय दूतावास के दो अधिकारी भी उपस्थित है। पुलिस-अधिकारी ने कहा : "गृह-मन्त्रालय से हमे यह आदेश मिला है कि आपको 'देश निकाला' दे दिया जाय।" और उन्होने देश निकाले का लिखित आदेश हमारे हाथ मे थमा दिया। २४ घण्टे के भीतर फ्रेंच-सीमा से बाहर निकल जाने का यह नोटिस था। पुलिस-अधिकारी ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा : "कल सुबह पेरिस से साढ़े दस बजे एयर फ्रांस का विमान जाता है। उसमे आपके लिए दो सीटे रहेगी। आपको विमान मे डालकर दिल्ली पहुँचा दिया जायगा।" इस पर भारतीय दूतावास के अधिकारियो ने कहा : "आप इन्हे दिल्ली भेज रहे है, इससे और भी ज्यादा गलतफहमी पैदा होगी। इनकी यात्रा का कार्यक्रम ब्रिटेन और अमेरिका जाने का है। अतः बजाय दिल्ली भेजने के आप इन्हे ब्रिटेन क्यो नही भेज देते?" इस तरह काफी देर तक बातचीत हुई और आखिर पुलिस-अधिकारी ने कहा : "मै इन लोगो की यात्रा के उद्देश्य से और इनके साहस से बहुत प्रभावित हूँ। कानूनी बन्धनो के कारण मुझे इन्हे गिरफ्तार करके जेल मे बन्द करना पड़ा, पर मेरी भी यही कामना है कि इनकी आगे की यात्रा भग न हो, इसलिए आपका सुझाव मान्य करने के लिए मै गृह-मंत्रालय से कहूँगा।" फिर दूतावास के अधिकारियो ने उपवास समाप्त करने का आग्रह किया। हमने कहा : "यह उपवास जेल के अमानवीय व्यवहार के कारण है। यदि हमे उचित रीति से शाकाहारी भोजन उपलब्ध किया जायगा, तो

उपवास समाप्त करने में हमें कोई दिक्कत नहीं। इस पर पुलिस-अधिकारी ने कहा : "आपके साथ जेल-कर्मचारियों ने जो बर्ताव किया, उसके लिए मुझे खेद है। आज मैं नया आदेश देकर उचित व्यवस्था करने के लिए कह रहा हूँ।"

RÉPUBLIQUE FRANÇAISE
PRÉFECTURE DE POLICE
DIRECTION
DE LA POLICE GÉNÉRALE
8e Bureau
N E.224.226.

Paris le 18 SEPT 1982 19

REFUS DE SÉJOUR

(Application de la circulaire ministérielle n° 1523 du 20.9.1946)

Monsieur KUMAR Satish
né le 9 Août 1936 à Dingergark (Indes)
à
de nationalité indienne
demeurant 106, rue Sadi Carnot à Vanves
n'est pas autorisé à résider en France et devra, en conséquence, quitter le territoire français le 19 Septembre 1963
Motifs
"a troublé l'ordre public"
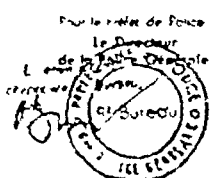
Il a déclaré se rendre à l'étranger
le présent bulletin lui tiendra lieu d'autorisation de séjour jusqu'à la date fixée pour son départ

La présente décision annule l'autorisation de séjour en France, sous peine des sanctions prévues par l'art. 19 (Ordonnance du 2 Nov. 1945)

Signature de l'intéressé
Kumar

Pour le Préfet de Police
Le Directeur
de la Police Générale

8e Bureau

देश निकाले का आदेश

हम ज्यों ही पुलिस-अधिकारी के कार्यालय से बाहर आये कि श्रीमती पेटिट—जो कि १६ सितम्बर को हमारे समर्थन में पर्चे बाँटने के कारण कुछ घण्टों के लिए हिरासत में ले ली गयी थी—हमसे मिलने के लिए पहुँचीं। हम श्रीमती पेटिट के मातृवत् व्यवहार को कभी भूल नहीं

सकेंगे। वे बार-बार हमारे बारे मे पूछताछ करती रही थी। हमसे मिलते ही हमारा भूखा चेहरा देखकर उन्होने पूछा : "क्यो इस तरह कमजोर लग रहे है आप ?" और ज्यो ही उन्हे मालूम हुआ कि पिछले दो दिन से हमने कुछ भी नही खाया है, वे एकदम चिन्तित हो उठी। वे पुलिस-अधिकारी से हमे थोड़ी देर रोकने के लिए कहकर जल्दी से गयी और बाजार से बिस्कुट, कॉफी, आलू चिप्स, केले आदि बहुत-सा सामान ले आयी। कहने लगी : "आपका उपवास मेरे हाथो टूटे।" हम उनके आग्रह को टाल नही सके और वही पर हमने उपवास समाप्त किया।

१९ सितम्बर को दोपहर के दो बजे हम फिर से पुलिस-अधिकारी के दफ्तर मे ले जाये गये। वहॉ अचानक हमने देखा कि स्वयं भारतीय राजदूत श्री अली यावर जग आ रहे है। "फ्रासीसी सरकार ने गिरफ्तार व्यक्तियो को जेल से उठाकर हमारे देश मे क्यो डाल दिया !" ऐसी शिकायत ब्रिटिश सरकार को करने का अवसर न मिले और 'पुलिस के पहरे मे हमे देश से निर्वासित किया गया' ऐसा असुहावना प्रभाव लोगो पर न पड़े, इसलिए राजदूत महोदय ने हस्तक्षेप करके हमे रेल द्वारा पेरिस से डोवर (ब्रिटिश सीमा का पहला बन्दरगाह) तक भिजवा दिया। यो समाप्ति हुई पेरिस-जेल के प्रकरण की ! और यो समाप्त हुई फ्रास की यात्रा। ●
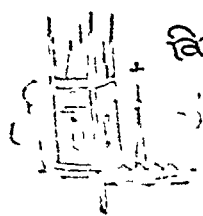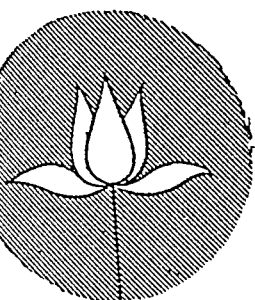
विचार-स्वातंत्र्य की भूमि...

ब्रिटेन में

फ्रांस से देश निकाला पाकर बर्तानिया की धरती पर जब हमने पहला कदम रखा, तो लगा कि जैसे दुनिया ही बदल गयी है। हमारे लिए सुविधा की बात यह थी कि इस धरती पर भाषा की दिक्कत नहीं थी। समुद्र के तट पर बसे हुए डोवर बन्दरगाह से हमारी पदयात्रा शुरू हुई। कदम-कदम चलकर २५ सितम्बर १९६३ को हमने लन्दन शहर में प्रवेश किया।

हाथ में 'युद्ध-विरोधी' पोस्टर लेकर जब हम टेम्स नदी पर बना हुआ लन्दन ब्रिज पार कर रहे थे, तो एक सिपाही ने आकर हमें रोका। पूछने लगा कि आपके पास इस तरह का पोस्टर लेकर चलने की सरकारी आज्ञा है या नहीं? हमने कहा : "हम तो अभी-अभी लन्दन आये हैं और दिल्ली से यहाँ तक इसी तरह बिना किसी सरकारी आज्ञा के अपना युद्ध-विरोधी पोस्टर हाथों में उठाये चलते रहे हैं। हमारा यह निर्णय है कि वाशिंगटन पहुँचने तक हम इसी तरह चलते रहेंगे।" सिपाही ने हमें धमकाते हुए कहा : "बन्द करो यह बहस और इस पोस्टर को मोड़कर कहीं अन्दर छिपा लो।" उसकी इस धमकी के सामने हम

झुकने को तैयार नहीं हुए। हमने कहा : "पोस्टर को मोडकर रखना असम्भव है। हम इसी तरह चलेंगे।" उसने कहा कि अगर आप नही मानेंगे तो मै आपको गिरफ्तार कर लूँगा।" हमने कहा : "गिरफ्तारी का क्या डर बताते हो ? गिरफ्तार करना है तो कर लो। हम अभी-अभी पेरिस की जेल से छूटकर आ रहे है। अच्छा ही है, लन्दन की जेल भी देख लेंगे।" जब हम इस तरह निर्भय होकर बात कर रहे थे, तो सिपाही को भी थोड़ा अचरज हुआ। उसने पूछा : "यह पेरिस की जेल फिर क्या बला है ?" तब हमने उसे पूरी कहानी सुनायी। हमारी इस बातचीत से तथा पदयात्रा के वृत्तान्त से वह चक्कर मे पड गया और कहने लगा : "अच्छा भाई, जहाँ जाना है, जाओ। अपना रास्ता लो।"

लन्दन मे हमने लम्बा समय बिताया। लन्दन के एक प्रमुख दैनिक पत्र 'गार्डियन' ने हम लोगो के बारे मे एक लम्बा लेख लिखा। उसके बाद तो प्रचार का ताँता ही लग गया। हम अनायास 'टेलीविजन हीरो' बन गये। टेलीविजनवालो ने हमे छह मिनट का समय दिया और उस छह मिनट के लिए करीब ६ सौ रुपये भी हमे दिये। इसी तरह बी. बी. सी. रेडियो पर भी हमे ब्राडकास्ट करने का अवसर दिया गया। उसके लिए भी हमे करीब ६ सौ रुपये मिले। साधारण तौर पर हम रुपये स्वीकार नही करते। मास्को मे जब रेडियोवालो ने हमे रुपया देना चाहा, तो हमने उसे अस्वीकार कर दिया और उनसे कहा कि आप यह रकम मास्को की शान्ति-परिषद् को दे दीजिये, ताकि वे शान्ति-आन्दोलन को बढावा देने के लिए उसका इस्तेमाल कर सके। लेकिन लन्दन मे हमने यह रकम इसलिए स्वीकार कर ली कि ब्रिटेनिया से अमेरिका तक हमे जहाज से जाना था और हमारा खर्च स्थानीय शान्तिवादी संस्थाएँ देनेवाली थी। शान्तिवादी संस्थाओ की आर्थिक हालत तो सभी जगह कमजोर होती है, इसलिए उनका बोझ कुछ हल्का हो, ऐसा हमने सोचा। कम पडनेवाली रकम शान्ति-संस्थाओ ने दी। इसलिए आसानी से जहाज के टिकट खरीदे जा सके।

लन्दन एक निराला शहर है। कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली मे मै
काफी रहा हू। लाहौर, काबुल और तेहरान की सडको से भी मै परि-
चित हो गया। मास्को मे भी महीनाभर बिताया। बर्लिन और ब्रुसेल्स
की आसमान छूनेवाली इमारतो की छाया मे भी मैने दिन गुजारे।
यद्यपि पेरिस का जवाब पेरिस ही है, उसकी शोभा निराली ही है; लेकिन
लन्दन भी लन्दन ही है। लन्दन का निरालापन इसलिए नही है कि वह
नीचे से पूरा खोखला है और वहाँ रेले दौड़ती है। इसलिए भी नही कि
फैशन, सौन्दर्य और आडम्बरपूर्ण सामग्रियो का वह केन्द्र है। इसलिए
भी नही कि वहाँ विश्वविख्यात अजायबघर है। इसलिए भी नही कि
लन्दन मनुष्यो का जगल जैसा है। बल्कि लन्दन की विशेपता है, वहाँ
की वैचारिक जाग्रति और राजनैतिक चेतना। अगर पेरिस मे कला,
बुद्धिवाद और साहित्य का अन्तर्राष्ट्रीय सगम है, तो लन्दन सामाजिक,
राजनैतिक और अन्य सार्वजनिक चेतना का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र है।
९ करोड की आबादीवाले इस बर्तानिया देश के करीब एक करोड़ लोग
तो केवल इस टेम्स नदी के किनारे ही बसे हुए है। बडे-बडे मैदानो,
बगीचो और जलाशयो के लिए यह शहर बहुत प्रसिद्ध है। जगह-जगह
पर बेहतरीन नमूने की कलात्मक शिला मूर्तियाँ है। दिल्ली मे जैसा चाँदनी
चौक है, लन्दन मे वैसा ही है आक्सफोर्ड राजपथ और रिजेन्टमार्ग।
विश्वभर की विलास-सामग्रियाँ यहाँ उपलब्ध है।

एक तरफ तो एशिया और अफ्रीका मे असख्य लोग बिना रोटी के
मर रहे है, दूसरी तरफ यूरोप और अमेरिका के लोग फैशन पर, मौज-
बहारो पर, सेना और हथियारो पर तथा अणु बमो पर पानी की तरह
पैसा बहा रहे है। धनी लोग सदा ही यह सोचते है कि उनकी [illegible]
पर, उनकी मौज-बहारो पर तथा उनके भोग-विलासो पर [illegible] और
गरीब लोग नजर न लगाये। वे उनके ऐशो[illegible] के साधनो पर [illegible] न
करे। इसीलिए वे चारो तरफ बन्दूक का पहरा बैठाकर रखते है।

लन्दन की हवा और मिट्टी मे हर तरह के विचारो को फलने-फूलने का अवसर मिलता है। हजारो तरह की सस्थाओ का जाल बिछा है। साम्यवादी, समाजवादी, पूँजीवादी, शान्तिवादी, अराजकतावादी, सेनावादी आदि सभी प्रकार के लोग यहाँ प्रश्रय पाते है। मार्क्स को भी
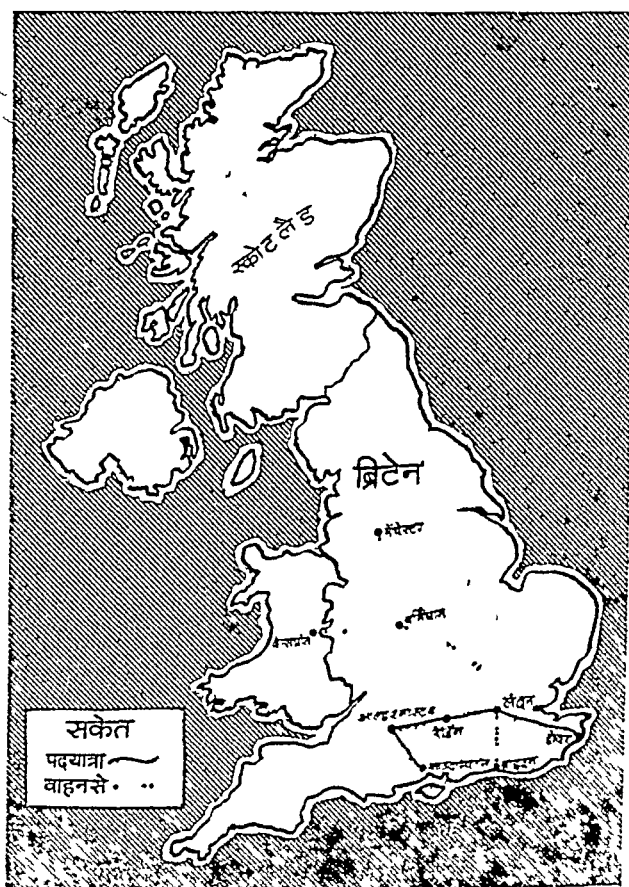
अपनी किताब, केपिटल—'पूँजी' लन्दन मे ही लिखने का अवसर मिला था। कितनी विविधता है लन्दन नगर मे। एक तरफ यह हाल है कि सड़को पर सैकड़ो जगह अखबारो की पेटियाँ रखी है, आप खुद पैसा डालिये, अखबार उठा लीजिये। सैकटों बोतलें दूध से भरी पड़ी है। पैसा

रखिये, बोतल ले लीजिये। कभी कोई गड़बड़ी नही होती। दूसरी तरफ करोड़ो का डाका डालनेवाले लोग भी यहाँ है। एक तरफ हजारो रुपये रोज किराया देकर होटलो मे रहनेवाले लोग है, तो दूसरी तरफ भीख माँगकर गुजारा करनेवाले और गन्दी बस्तियों मे रहनेवाले लोग भी है। लेकिन लन्दन ही क्यो, यह हालत तो प्रायः सभी शहरो की है।

लन्दन मे एक पार्क है—हाइड पार्क। इस पार्क मे एक ऐसा मंच है, जहाँ किसी भी रविवार को कोई भी, किसी विचार का आदमी आकर अपने विचार सार्वजनिक रूप से व्यक्त कर सकता है। इस तरह का लोकमच और किसी शहर मे मैने नही देखा। कवियो, साहित्यकारों और कलाकारो का भी यह एक अद्भुत गढ़ है। हर शनिवार और रविवार को लन्दन मे सैकड़ो प्रकार की विचार-गोष्ठियाँ, चित्र-प्रदर्शनियाँ, साहित्य-सभाएँ आदि होती रहती है। कितने ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी होते है। अफ्रीका की आजादी का मसला हो या रंग-भेद का मसला, अविकसित देशो को मदद देने का काम हो या भूख-निवारण आन्दोलन, हर तरह की प्रवृत्तियो के लिए लन्दन मे संस्थाएँ खुली हुई है।

लन्दन का जीवन काफी महँगा है। मकान-किराया भी महँगा है, यातायात भी। हाँ, भोजन बहुत सस्ता है। रोटी, दूध, मक्खन जैसी चीजो पर सरकार खास तौर से रिबेट—छूट देती है। कोई भी आदमी थोड़े खर्च मे अपना काम चला सकता है। खाद्य-सामग्री अत्यन्त शुद्ध और प्रामाणिक मिलती है। मिलावट का सवाल ही नही। ये तथाकथित भौतिकवादी लोग इन छोटे-छोटे दैनिक व्यवहारो मे भारत के तथाकथित अध्यात्मवादियो से कहीं ज्यादा ईमानदार और सच्चे हैं।

पश्चिम के शान्ति-आन्दोलन का रुख

●

पश्चिमी देशो के वर्तमान शान्ति-आन्दोलन की शुरुआत युद्ध-विरोधी आन्दोलन के रूप मे हुई। लेकिन इस समय आन्दोलन ने अधिक

व्यापक स्वरूप लिया है। बीसियो संस्थाएँ शान्ति के विभिन्न पहलुओ को लेकर विस्तृत पैमाने पर काम कर रही है। इन सब कामो को यदि एक साथ मिलाकर देखे, तो उसका स्वरूप पूरी तरह अहिसक समाज-रचना का स्वरूप होगा।

आज पश्चिम के शान्ति-आन्दोलन की गाडी का जुआ जिन लोगो के कन्धो पर है, उनमे अधिकतर लोग जवान है। वहाँ के जवानो की कार्य-तत्परता, निष्ठा और नेतृत्व-शक्ति देखकर ताज्जुब होता है। खास तौर से ब्रिटेन की 'शत समिति' के लोगो ने तो युवा नेतृत्व का अन्यतम उदाहरण पेश किया है। वे किसी भी नेता की बात को ऑख मूँदकर मानने को तैयार नही होते। नेताओ के साथ उनकी जमकर बहस होती है। मैने ऐसी कुछ सभाओ और गोष्ठियो मे भाग लिया, तो सचमुच मजा आ गया। हमे भी भारत के शान्तिवादी आन्दोलन मे निस्सकोच और खुलकर बहस करने की परम्परा डालनी चाहिए।

वैचारिक स्तर पर व्यापकता ने पॉव पसारे है, पर व्यावहारिक और कार्यक्रम के स्तर पर स्थिति अभी भी वही है। पश्चिम के शान्ति-आन्दोलन के बारे मे मेरा जो अध्ययन है, उससे मुझे लगता है कि यहाँ के साथी अब तक अपने कार्यक्रमो मे युद्ध-विरोध के एकागी पहलू पर ही ज्यादा जोर देते रहे है। अभी भी सम्पूर्ण रूप से अहिसक समाज-रचना की बात उतने जोर से जनता के सामने पेश नही की जाती। खास तौर से अणु-अस्त्र-विरोधी आन्दोलन (सी. एन. डी.) तो केवल आणविक युद्ध की बात पर ही जोर देता है। इस आन्दोलन के कार्यकर्ता आणविक युद्ध की खौफनाक कल्पना पेश करके जनता के दिलो मे भय पैदा करते है। 'शत समिति' के लोग कुछ ज्यादा तीव्र है। वे केवल आणविक अस्त्रो का ही नही, बल्कि सभी शस्त्रो का विरोध करते है। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सत्याग्रह, सविनय कानून-भग, असहयोग आदि मार्गो को अपनाते हैं। इसके अलावा 'युद्ध-विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय' तथा

क्वेकर्स लोग है, जो हर हालत मे युद्ध को अपराध मानते है। पर ये सभी सस्थाऍ मात्र युद्ध के पहलू पर केन्द्रित-सी प्रतीत होती है।

ब्रिटेन के शान्ति-आन्दोलन मे 'पीस न्यूज' साप्ताहिक का किसी भी नेता या संस्था से कम महत्त्व नही है। 'पीस न्यूज' ने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खडा किया है और वह शान्ति-कार्यकर्ताओ की वैचारिक बहस के लिए खुले मंच की भूमिका अदा कर रहा है। 'पीस न्यूज' मे जब-तब शान्ति-आन्दोलन की कमियो को जॉचा-परखा जाता है। कमियो की कडी आलोचना की जाती है। लॉर्ड रसेल जैसे नेताओं के दृष्टिकोण पर भी खुली टीका करने का मौका दिया जाता है। 'पीस न्यूज' किसी एक सस्था का पत्र नही, वह सभी कार्यकर्ताओ और सस्थाओ को एक सूत्र मे पिरोनेवाला विचार-पत्र है। 'पीस न्यूज' ने खास तौर से एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण, आणविक सुरक्षा के स्थान पर अहिंसक सुरक्षा, अहिसक समाज रचना आदि पहलुओ को शान्ति-आन्दोलन के साथ जोडने में सफलता पायी है।

वेल्स प्रान्त मे जाकर हमने बर्ट्रेण्ड रसेल से भी मुलाकात की। ९२ वर्ष की अवस्था मे भी वे बहुत ही सक्रिय है।

इन सारे उज्ज्वल पहलुओ के बावजूद हमने सभी जगह यह अनुभव किया कि कार्यकर्ता काम की गति से सन्तुष्ट नही है और लक्ष्यो के बारे मे स्पष्ट नही है। पूरे आन्दोलन मे गत्यवरोध-सा महसूस किया जा रहा है। "क्या आणविक निःशस्त्रीकरण का आन्दोलन समाप्त हो गया है?"—यह सवाल स्वय कार्यकर्ता अपने मन से पूछ रहे है। विशेष रूप से मास्को मे सम्पन्न अणु-प्रयोग निषेध-सन्धि के बाद यह प्रश्न और तीव्र हुआ है। जिनका लक्ष्य केवल आणविक निःशस्त्रीकरण तक सीमित था, वे समझते है कि अब हमारे लिए ज्यादा काम नहीं बचा है। मास्को-सधि से हथियारो पर किये जानेवाले खर्च मे कोई कमी नहीं आयी है। ऐसी परिस्थिति मे 'सी. एन. डी.' आन्दोलन के सामने अपने लक्ष्य को फिर से परिवर्धित करने की जरूरत पैदा हुई है।

अमेरिकी वीसा पाने में २२ दिन !

●

पासपोर्ट और वीसा प्राप्त करना बहुत आसान नही होता। अमेरिका के लिए वीसा प्राप्त करने मे हमे २२ दिन संघर्ष करना पडा। हालॉकि हर नागरिक का यह सहज मानवीय अधिकार है कि वह दुनिया के किसी भी कोने मे रहनेवाले लोगो के पास जाय और उनसे मिल्कर मित्रता स्थापित करे। साथ ही सरकारो का यह कर्तव्य है कि एक-दूसरे देश मे जाने-आनेवालो को सुविधाएँ प्रदान करे। पर दुर्भाग्यवश आज की अधिकाश सरकारे अनेक अवसरो पर अन्तर्राष्ट्रीय यात्राओ के लिए बाधा पैदा करती है। आदर्श समाज तो तब होगा, जब सारे ससार के लोग बिना पासपोर्ट और वीसा के स्वतन्त्रतापूर्वक एक-दूसरे के देशो मे भाई-भाई की भॉति आ-जा सकेगे और विश्व-नागरिक माने जायॅगे।

भारत से हमने पाकिस्तान, अफगानिस्तान और ईरान के लिए वीसा प्राप्त किया था। रूस के लिए तेहरान मे, पोलैण्ड के लिए मास्को मे, जर्मनी के लिए वारसा मे, फ्रान्स के लिए बोन मे और ब्रिटेन के लिए पेरिस मे सम्बद्ध दूतावासो से हमे प्रवेश-पत्र मिले थे। लन्दन पहुॅचने पर अमेरिका के लिए प्रवेश-पत्र (वीसा) प्राप्त करने का प्रयत्न हमने प्रारम्भ किया। लन्दन के सुप्रसिद्ध हाइड पार्क के पास अमेरिकी दूतावास की भव्य अट्टालिका है। हम दूतावास के वीसा-विभाग मे गये। एक लम्बी लाइन लगी थी। एक अधिकारी के पास से आवेदन-पत्र मिला। दूसरे अधिकारी को हमने आवेदन-पत्र भरकर दिया। तीसरे अधिकारी ने हमारा आवेदन अन्दर भेजा। उसके बाद हम लाइन मे बैठकर करीब दो घण्टे तक प्रतीक्षा करते रहे। जब हमारा नम्बर आया, तो हम चौथे अधिकारी के पास गये। वह एक मधुर स्वभाव की महिला थी। उसने मुझे कुर्सी पर बैठ जाने के लिए कहा। बहुत नम्रतापूर्वक उसने कुछ औपचारिक प्रश्न पूछे और मेरे उत्तर टाइप करती गयी। इस

प्रश्नोत्तर के बाद उसने मेरा पासपोर्ट अपने पास रख लिया और मुझे प्रतीक्षा करने के लिए कहा।

थोड़ी देर की प्रतीक्षा के बाद एक युवा महाशय ने धीरे-से पुकारा : "सतीश कुमार।"

"जी, हॉ!" और मै अन्दर गया।

"आप संयुक्त राज्य अमेरिका जाना चाहते है?"—अधिकारी ने पूछा।

"जी, हॉ! तभी तो आवेदन-पत्र लेकर यहॉ आया हूॅ।" मैने रूखा उत्तर दिया। इससे पहले चार अधिकारियों की हाजिरी भरने और दो घण्टे की प्रतीक्षा करने के बाद मै कुछ ऊब-सा गया था।

"आप अमेरिका क्यो जाना चाहते है?" एक रूखा प्रश्न।

"क्योकि अमेरिका मे काफी मात्रा मे अणु-बम जो है।" फिर से एक रूखा उत्तर! मैने अपनी शान्ति पदयात्रा की पूरी कहानी सुनाते हुए कहा : "हम न्यूयार्क से वाशिंगटन तक पदयात्रा करना चाहते हैं निःशस्त्रीकरण की मॉग करते हुए।" हमारी सारी कहानी सुन लेने के बाद अधिकारी को कुछ दिलचस्पी पैदा हुई। वीसा की बात छोड़कर इन महाशय ने रूस की बाते शुरू कर दी।

"आप लोग रूस मे चार महीने रहे और पदयात्रा की?"

"जी, हॉ!"

"और उन्होने आपको आजादी के साथ ऐसा करने दिया?"

"जी, हॉ!"

"आप लोग रूसी भाषा जानते है?"

"जी, हॉ!"

"आप लोग रूसी लोगो से क्या कहते थे?"

"यही कि रूसी सरकार एकतरफा निःशस्त्रीकरण करे। अहिंसा की नीति अपनाये।"

कहाँ ? मैने कहा : "आपका इतना बडा दूतावास है। अमेरिका दुनिया का सबसे बड़ा धनी देश है। क्या आप दूतावास के खर्च से एक तार नही भेज सकते ?" पर हमारे ये तर्क अधिकारी महोदय के सामने नाकामयाब रहे। हमे प्रतीक्षा करनी ही होगी।

"हम एक पत्र चेस्टर बाउल्स को क्यो न लिखे ?"—प्रभाकर ने मुझसे कहा। "चेस्टर बाउल्स विनोबाजी को, भूदान-ग्रामदान के विचारो को, अहिसावादी सिद्धान्तो को अच्छी तरह जानते है। मै उनकी पत्नी से तो मिला भी हूँ।"

"जरूर लिखो।"—मैने सहमति प्रकट की; "और अमेरिका की 'कमिटी फॉर नॉनवायलेंट एक्शन' तथा उसके अध्यक्ष ए. जे. मस्ते को भी हम एक चिट्ठी लिखे, ताकि हमारी अमेरिका-यात्रा की जिम्मेदारी वहन करने सम्बन्धी एक पत्र वे हमे भेज दे।" हमने दोनो जगह तुरन्त पत्र लिखे। उसके बाद बीच-बीच मे हम अमेरिकी दूतावास जाकर पता लगाते रहे। आखिर ए. जे. मस्ते और चेस्टर बाउल्स के पत्र हमे मिल गये। इन पत्रो के साथ जब हम अमेरिकी दूतावास मे गये, तो अधिकारी ने हमे वीसा दे दिया। आखिरी घाटी पार हुई—ठीक २२ दिन की प्रतीक्षा के बाद !

श्री बाडर के कारखाने मे

❁

श्री अर्नेस्ट बाडर द्वारा चलाये जा रहे एक अद्भुत प्रयोग की तारीफ मैने सुन रखी थी। इसलिए 'स्काट बाडर कामनवेल्थ' देखने की उत्कठा थी। यह बताने की आवश्यकता नही कि हम इस कारखाने मे पहुँचकर कितने खुश हुए। स्वय अर्नेस्ट बाडर से मै अजमेर मे मिला था और उन्होने निमन्त्रण दिया था कि कभी आकर हमारे साथ कुछ दिन बिताइये। हम उद्योगो मे 'सामूहिक स्वामित्व' का प्रयोग कर रहे है। तब यह कल्पना भी नही की थी कि उनका निमन्त्रण इस तरह

फलेगा। ४ नवम्बर को जब हम वोल्लास्टन पहुँचे, तो श्री अर्नेस्ट बाडर के पुत्र श्री गेडरिक बाडर ने हमारा स्वागत किया। कारखाने के लोगो के बीच हमारे भाषण का कार्यक्रम था, पर हमारे लिए तो कारखाने की गतिविधि समझना सबसे ज्यादा रुचि की बात थी। जगह कमाल की थी। ग्राम्य वातावरण, चारो तरफ हरियाली, बहुत ही कलापूर्ण और आधुनिक मकान। कारखाने के कार्य-सचालक ने हमे कारखाने मे घुमाया। फिर हम अर्नेस्ट बाडर के दफ्तर मे गये, जहाँ विनोबाजी का एक बहुत बडा चित्र टँगा था—पूरे कमरे मे किसी व्यक्ति का कोई चित्र था, तो वह एकमात्र विनोबा का था—इससे हम यह सहज कल्पना कर सकते है कि श्री अर्नेस्ट विनोबा के प्रति कितनी आदर की भावना रखते है।

श्री गेडरिक और उनकी पत्नी के साथ जब हम लकडी के बने हुए और ग्राम्य वस्तुओ से सजे हुए घर मे भोजन की टेबुल पर बैठे बाते कर रहे थे, तो गेडरिक बाडर ने हमे कारखाने की गतिविधियो और कठिनाइयो का परिचय दिया। "जब चारो तरफ आग लगी हो, तो घास की एक झोपड़ी को बीच मे बचाकर रखना बडी मुश्किल बात है। फिर भी हम उसे बचाने के लिए सघर्ष कर रहे है। स्वय कारखाने के श्रमिक 'कामनवेल्थ' की बात को पूरी तरह नही समझ पाये है और इसलिए हमे बहुत-से ऐसे नियमो से काम चलाना पडता है, जिन्हे हम गैर-जरूरी मानते है।" उन्होने अपनी बात को सरल ढंग से समझाया। "हमारा यह सामूहिक स्वामित्व का प्रयोग है और हम समझते है कि इसके द्वारा हम केन्द्रीकरण की बीमारियो से बच सकते है।"

इस कारखाने मे छपाई, प्लास्टिक और रगो मे काम आनेवाले कुछ रासायनिक पदार्थ बनते है। २७५ श्रमिक इस समय कारखाने मे है। इन श्रमिको के सामने केवल हर सप्ताह के अन्त मे वेतन प्राप्त करने का लक्ष्य ही नहीं है—बल्कि "कारखाने के काम की अन्तिम कसौटी है—मानव-श्रम की प्रतिष्ठा और समाज की सेवा।" इसकी घोषणा विधान मे

अन्तर्निहित है। इस प्रयोग के सूत्रधार श्री अर्नेस्ट बाडर का जन्म सन् १८९० मे स्विट्जरलैड मे हुआ। १४ साल की उम्र मे एक क्लर्क के तौर पर बहुत साधारण ढंग का जीवन प्रारम्भ किया। उसके छह साल बाद अपनी 'किस्मत आजमाने के लिए' वे लन्दन पहुँच गये। लन्दन मे वे कुमारी स्कॉट के सपर्क मे आये। कुमारी स्कॉट ने युवक अर्नेस्ट के जीवन मे नया अध्याय जोड दिया और आखिर दोनो विवाहित होकर सदा-सदा के लिए जीवन-साथी बन गये। इतना ही नहीं, बल्कि अर्नेस्ट ब्रिटेन मे ही बस गये। पहले उन्होने सेलोलाइड का छोटा-सा व्यापार किया, फिर उसका उत्पादन शुरू किया और बढ़ते-बढ़ते वे एक कारखाने के मालिक बन गये। इसी बीच उन्होने औद्योगिक-कार्यविधि और उद्योग-क्षेत्र की समस्याओ आदि के बीच अपने को जिस ढंग से खपाया, उसके परिणामस्वरूप उनके मस्तिष्क मे एक क्रातिकारी परिवर्तन आया। उन्होने एक नयी औद्योगिक व्यवस्था के दर्शन किये। आखिर वे इस तत्त्व के कायल हो गये कि "कारखाने के असली मालिक वे ही है, जो रात-दिन श्रम करके पैदा करते है।" इस विचार ने उनके मानस मे तूफान खड़ा कर दिया और उसका परिणाम यह हुआ कि उन्होने कारखाने के स्वामित्व का बॅटवारा करने का निश्चय किया। सन् १९५१ मे उन्होने कारखाने का समविभाग किया। सन् १९५१ के बाद इस कारखाने का कोई एक मालिक नही। सभी मालिक है। कितना गजब का और क्रातिकारी कदम था यह! यह कारखाना उन सब श्रमिको और कारीगरो का है, जो इसमे काम करते है।

लन्दन मे हम ५० दिन रहे। दिल्ली छोडने के बाद लन्दन मे ही हमारा सबसे लम्बा समय बीता। ऐसा लगता है कि कलकत्ता, बम्बई आदि भारतीय शहरो की अपेक्षा लन्दन से मै कहीं ज्यादा परिचित हूँ।

५ नवम्बर '६३ को 'क्वेकर्स हाउस' मे 'डबल्यू. आर. आई.', 'कमेटी आफ १००', 'फ्रेड्स पीस कमेटी', 'पीसन्यूज' और 'वर्ल्ड पीस

ब्रिग्रेड' की ओर से हम लोगो को विदाई दी गयी। शान्तिवादी मित्रो और संस्थाओं ने हम दोनो के लिए जहाज का किराया एकत्र कर लिया और २२ नवम्बर के लिए 'क्वीन मेरी' मे हमारे लिए एक विशेष कैबिन बुक कर दिया गया।

हम लन्दन से आल्डर मास्टन होते हुए साउदाम्पटन पहुँचे और वहाँ से जहाज द्वारा अमेरिका के लिए रवाना हुए। ○
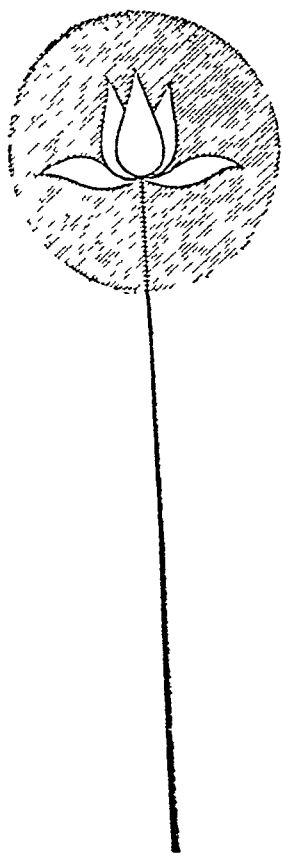
यांत्रिक चरमोत्कर्ष के देश

अमेरिका में

"आप कम्युनिस्ट तो नहीं है ?" अमेरिका की धरती पर पहुँचते ही सबसे पहला सवाल सरकारी अधिकारियो ने हमसे पूछा । हमारे यह बताने पर कि "हम इस देश मे 'कमेटी फॉर नॉनवायलेंट एक्शन' (सी. एन. वी. ए.) के अतिथि है और यह सस्था एक शान्तिवादी संस्था है", सरकारी अधिकारी ने पूछा : "क्या यह शान्तिवादी संस्था कम्युनिस्टो द्वारा सचालित है ?"

हम रूस से आ रहे है, शान्ति की बात करते है और इस देश मे निःशस्त्रीकरण की मॉग करते हुए पदयात्रा करनेवाले है, ये तथ्य अधिकारियो को भ्रम मे डालनेवाले थे । आखिर उन्होने पूछा : "आप भारत मे क्या करते है ?" हमने बताया कि "हम सर्वोदय-आन्दोलन के कार्यकर्ता है और इस आन्दोलन का प्रारम्भ महात्मा गांधी ने किया था ।" बस, गाधी का नाम लेते ही उनके सामने चित्र साफ हो गया । और मुँदकर पासपोर्ट पर मुहर लगाते हुए अधिकारी ने कहा : "आपकी यात्रा सफल हो !"

"क्या आप अपनी यात्रा के उद्देश्यो पर प्रकाश डालेंगे ?"—हमारी दूसरी मुलाकात रेडियो, टेलीविजन और समाचार-पत्रो के सवाददाताओ से हुई। "कितने हजार मील चले ? कितनी जोडी जूते घिसे ? सोवियत सघ मे क्या अनुभव आये ?" इत्यादि सवालो की बौछार होने लगी। टेलीविजनवालो ने लम्बी फिल्म तैयार की। रात को जब हम अपने मेजबान के घर टेलीविजन देख रहे थे, तो हमने स्वय अपने-आपको टेलीविजन पर व्याख्यान देते हुए पाया। अनेक शान्तिवादी अमेरिकन भाई पोर्ट पर घण्टो से हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। ज्यों ही हम उनसे मिले, ऐसा लगा, मानो अपने वर्षो पुराने साथियो से मिल रहे हो, जब कि सब-के सब चेहरे नये थे।

वह २७ नवम्बर १९६३ की शाम थी, संयुक्तराज्य अमेरिका की पहली शाम। बिजली की रोशनी मे चमचमाती हुई गगनचुम्बी अट्टालिकाओवाले न्यूयार्क शहर की पहली शाम। अनगिनत मोटर गाडियो से भरे हुए लम्बे-चौड़े राजपथो की पहली शाम। न्यूयार्क का पहला दर्शन बडा बोझिल-सा लग रहा था। मैंने न्यूयार्क शहर के बारे मे जो कल्पना की थी, उससे भिन्न चित्र मुझे दीख पड़ा। एक भारी-भरकम व्यापारी नगर, जहॉ एक तरफ वैभव और ऐश्वर्य आसमान मे बाहे फैला रहा है, तथा दूसरी तरफ एक गरीब भिखारी किसीकी कार की खिडकी को साफ करके दो-चार सिक्को की भीख मॉग रहा है। मैंने सपने मे भी ऐसी कल्पना नही की थी कि विश्व के सबसे धनी नगर न्यूयार्क मे भिखारी भी होगे!

अतलान्तक महासागर के तट पर बसी हुई न्यूयार्क महानगरी मे हमने १० दिन बिताये। इन दस दिनो के लिए हम कुमारी बेवर्ली और उसके भाई के अतिथि थे। न्यूयार्क नगर के दक्षिणी हिस्से, ब्रुकलिन मे इनका घर है। मै यह देखकर चकित था कि इस घर को कभी ताला नहीं लगाया जाता। दोनो भाई-बहन काम पर चले जाते है। घर मे उनकी

प्यारी कुतिया अकेली रहती है। कुमारी बेवर्ली २५ साल की उम्रवाली शान्तिवादी कार्यकर्त्री है। गाधीजी के बारे मे, भारत के बारे मे, अन्य राजनैतिक प्रश्नो के बारे मे उसका विशद ज्ञान देखकर मुझे दाँतो तले ऑगुली दबानी पडी। हम लोग रात के १२-१ बजे तक विभिन्न विषयो पर चर्चा करते रहते। युद्ध, शान्ति और निःशस्त्रीकरण से लेकर परिवार, विवाह, प्रेम और सामाजिक जीवन सम्बन्धी अनेक समस्याओ पर कुमारी बेवर्ली के साथ हमारी खुलकर चर्चा होती।

२८ नवम्बर को न्यूयार्क की नगर-पदयात्रा करते हुए हम सयुक्त राष्ट्रसघ के भवन तक पहुँचे। हम अपने हाथ मे 'अणुबमो पर पाबन्दी लगाओ' का ध्वज लिये हुए चल रहे थे। निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी इश्तहार भी हम बाँटते जाते थे, वैसे हमने पिछले डेढ साल मे अपनी पदयात्रा के दौरान मे हजारो परचे बॉटे है, पर अमेरिका मे तो यह पहला ही दिन था। ऐसा लगा कि यहाँ के लोग तरह-तरह के विज्ञापनो और इश्तहारो से इतने तंग आ गये है कि वे हमारे हाथ से परचे स्वीकार ही नहीं कर रहे थे। कुछ लोग हमारे ध्वज पढ़ते और निःशस्त्रीकरण की बात से चमककर परचा लेने से झिझक जाते। कुछ लोग प्रतिवाद करते हुए कहते : "हमे शान्ति का सबक सिखाने की जरूरत नही। रूस जाओ और कम्युनिस्टो को सिखाओ।" लेकिन ज्यादातर लोगो ने परचे स्वीकार किये। हमे आशीर्वाद दिया, शुभ कामना प्रकट की। मुस्कराकर 'गुड लक' कहनेवालो की तादाद ज्यादा थी। २८ नवम्बर का दिन इस देश मे बडे पर्व का दिन है। इसे 'थैक्स गिविंग डे' (धन्यवाद-दिवस) कहा जाता है। न्यूयार्क नगर के अनेक शान्तिवादियो ने संयुक्त राष्ट्र-सघ के भवन के सामने इस पर्व के अवसर पर उन करोड़ो लोगो की सहानुभूति मे, जिन्हे पर्याप्त भोजन और वस्त्र उपलब्ध नहीं है, उपवास तथा मौन प्रार्थना का आयोजन किया था। हम भी इस प्रार्थना मे दो घटे तक शामिल रहे।

'हमारा कोई धर्म नही, हम केवल मनुष्य-धर्म मानते है, हमारी कोई जाति नही, केवल मनुष्य-जाति है। हम विश्व-नागरिक है। हमे पूरे विश्व से प्रेम, आतिथ्य और सत्कार मिला। हम केवल मनुष्य बनकर सब जगह गये, इसलिए हमे सर्वत्र मनुष्यता के ही दर्शन हुए।

अगर हम हिन्दू बनकर जाते, तो हमें मुसलमान मिलता।
अगर हम हिन्दुस्तानी बनकर जाते, तो हमें पाकिस्तानी मिलता।
अगर हम कम्युनिस्ट बनकर जाते, तो हमे केपिटलिस्ट मिलता।
पर हम मनुष्य बनकर गये, इसलिए सब जगह हमें मनुष्य ही मिला।

संयुक्त राष्ट्रसघ मे चीन की ७० करोड जनता का प्रतिनिधित्व न होना हमे अखर रहा था। उसके बिना संयुक्त राष्ट्रसंघ अपूर्ण ही रहेगा। जापानी किमोनो, भारतीय साड़ी और अफ्रीकी चोगा पहने विश्वभर का रूप जिस सयुक्त राष्ट्रसघ मे साकार हो उठता हो, वहाँ सम्पूर्ण विश्व का प्रतिनिधित्व कितना लाजिमी है, यह बताने की आवश्यकता नही।

अभिवेशन की बैठक समाप्त होने के बाद महासचिव श्री ऊ थात से हमने जब हाथ मिलाया, तो ऊ थात ने कहा "आप जिस एक-विश्व के सन्देश को पैदल जा-जाकर घर-घर और गॉव-गॉव मे पहुँचा रहे है, उसी सन्देश को क्रियान्वित करने की हमारी कोशिश है। पर हमारे रास्ते मे बाधाओ के अम्बार लगे है।" फिर भी महासचिव की ऑखो मे आशा-वाद का तेज चमक रहा था।

१० दिन के न्यूयार्क-प्रवास के दौरान मे हम अनेक अमेरिकी परिवारो मे गये। अनेक ऐसे लोगो से मिले, जिनका शान्ति-आन्दोलन से कोई परिचय नही था। साधारणतः अमेरिकी लोग वडे हमदर्द और सहायक होते है। मिलनसारिता और सरलतापूर्ण स्वभाव इनकी विशे-षता है। हम जिन-जिनसे मिले, सबसे बहुत जल्दी घुल-मिल गये। लेकिन एक बात सतत हमारा ध्यान खीचती थी कि साधारण लोगो के मन मे 'अमेरिकी महानता' पर बड़ा गर्व था। हमे कितने ही लोगो ने कहा कि "हमारा अमेरिका दुनिया मे सर्वश्रेष्ठ है। हमारी शासन-प्रणाली

उत्कृष्ट है। दूसरे देशो को अमेरिकी महानता का अनुसरण करना चाहिए।"

एक दिन एक वृद्ध महाशय के साथ बातचीत हो रही थी। वे बोले : "आप भारत से आकर हमे निःशस्त्रीकरण का उपदेश दे रहे है। हमारी सरकार की आणविक नीति के खिलाफ प्रचार कर रहे है। आपको ऐसा करना नही चाहिए। यदि हमारा देश और हमारी सरकार हिन्दुस्तान को मदद न करे, तो हिन्दुस्तान भूखो मरेगा। वह अपनी सीमाओ की रक्षा नही कर सकेगा। हम अन्न भेजते है, दवा भेजते है, मशीने भेजते है, कारीगर भेजते है, हथियार भेजते है। पैसा भेजते है। आपको इस देश का अहसानमद होना चाहिए।" धन, शस्त्र, सेना और अणुबमो की प्रचुरता के कारण अमेरिका विश्व की एक बडी ताकत माना जा सकता है, पर क्या भौतिक साधनो की विपुलता ही महानता है ?

न्यूयार्क अमेरिका का सबसे बड़ा नगर है। व्यापार, उद्योग, राजनीति, साहित्य, विद्या, कला आदि का भी शायद सबसे बड़ा केन्द्र है। १०८ मंजिलवाली दुनिया की सबसे बड़ी इमारत 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' भी इसी नगर मे है। संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ और दैनिक अखबार भी यही से प्रकाशित होते है। देशभर मे शान्ति-आन्दोलन का संचालन करनेवाली अनेक संस्थाओ के प्रधान कार्यालय भी यही है। हमने विभिन्न शान्तिवादी संस्थाओ मे अनेक कार्यकर्ताओ और नेताओ से मुलाकाते की। खास तौर से ए. जे. मस्ते के साथ की मुलाकात ने तो हमे अत्यन्त प्रभावित किया।

अमेरिका की धरती पर पदयात्रा

७ दिसम्बर का शीतल प्रातःकाल। स्वच्छ आकाश मे चमकते भास्कर की सुनहली किरणे। संयुक्त राष्ट्रसंघ के भवन के सामने का भीड़भरा चौराहा। अनगिनत शान्तिवादी अपने काम-काज से छुट्टी लेकर

भारत के दो युवा शान्ति-यात्रियो को विदा करने आये थे। उनके अनन्त आशीर्वादो के बोझ से हम नतमस्तक थे। टेलीविजनवाले अपना कैमरा लगाये खड़े थे। पत्रकार लोग सवालो पर सवाल पूछ रहे थे। मित्रगण अपनी शुभ कामनाएँ बरसा रहे थे। दो अमेरिकन युवक, राडस्मिथ और आर्थर मिलर आगे बढ़े, हाथ मिलाकर बडी गम्भीरता से बोले : "हम भी आपके साथ पदयात्रा करना चाहते है।" "स्वागत है आपके निर्णय का"—हमने भी उसी गम्भीरता से उत्तर दिया।

अब हम दो से चार हो गये। हाथो मे निःशस्त्रीकरण का झण्डा और पीठ पर कपडो की गठरी। कौन अजीब लोग है ये ? लोग आते-जाते रुकते। कुछ कानाफूसी करते और हमारी पदयात्रा के उद्देश्यो पर प्रकाश डालनेवाला साहित्य लेकर आगे बढ़ जाते। हम चारो चल पडे। शहर की सीमा तक पहुँचाने के लिए १५-२० लोग हमारे साथ हो लिये। छोटा-सा एक जुलूस ही बन गया था। संयुक्त राष्ट्रसंघ का भवन पीछे छूट गया। १०८ मजिलवाली संसार की सबसे ऊँची इमारत भी पीछे रह गयी। 'हारलम' नाम की अस्वच्छ और दुखदर्दभरी नीग्रो बस्ती भी पीछे रह गयी। जहॉ करोडो का व्यापार घंटो मे होता है, ऐसी वह 'वॉल स्ट्रीट' भी पीछे रह गयी। भीडभरे लम्बे-चौडे राजपथो को पार करके हम वाशिंगटन ब्रिज पर पहुँचे। यह ब्रिज शहर की सीमा पर है। हमारे साथी वापस गये। "गुड लक ! गुड बाई ! अलविदा साथियो !"

और यो हम अपनी लम्बी यात्रा के अन्तिम चरण पर निकल पडे। पिछले १८ महीनो से हम सडक पर थे। चलना और केवल चलना। हम सोते थे, खाते थे, लिखते थे तो चलने के लिए। हम सब कुछ भूल गये, केवल चलना याद रहा। न्यूयार्क के बाद केवल एक महीना और चलना था। जब हम आठ हजार मील दूर दिल्ली से पैदल वाशिंगटन के लिए निकले, तब सारा रास्ता कितना लम्बा और कठिन प्रतीत हो रहा था। पर हम सतत चलते रहे और इस सातत्य ने हमे अपनी मजिल पर पहुँचा ही दिया।

अमेरिका मे हमे सभी वर्गों के लोगो से मिलने का अवसर मिला। शाम के वक्त प्रायः प्रतिदिन सभाओ का आयोजन होता था। इसके अलावा स्कूलों, कॉलेजो और विश्वविद्यालयो मे विशेप कार्यक्रम रहते थे। इस सारे सम्पर्क के बाद ऐसा लगता है कि अमेरिका के लोग युद्ध की भयकरता से उतने भयभीत नही है, जितने यूरोप और रूस के लोग है। क्योकि अमेरिका की धरती पर कोई विश्व-युद्ध नही हुआ, इसलिए वे नही जानते कि युद्ध कितना खौफनाक और बर्बर होता है। वे अपने व्यापार-धन्धे मे इतने व्यस्त है कि युद्ध, शान्ति और निःशस्त्रीकरण जैसे प्रश्नो पर ज्यादा ध्यान देने के लिए उनके पास समय ही नही है। रूस तथा कम्युनिस्ट देशो के खिलाफ जबर्दस्त विरोधी भावना है। यह विरोध ज्ञान और बुद्धिजन्य कम है। भ्रमजन्य अधिक है। मैने अनेक अमेरिकी लोगो से पूछा · "साम्यवाद क्या है ? रूस के बारे मे आप क्या जानते है ? मार्क्स या लेनिन के बारे मे आपने कुछ पढ़ा है क्या ?" साधारण लोगो की ओर से अधिकाश उत्तर नकारात्मक और भ्रामक थे। सरकार और पूँजीवादी अखबारो ने कम्युनिस्ट देशो के बारे मे भ्रम, अविश्वास और घृणा का वातावरण पैदा किया है। कम्युनिस्ट के लिए सरकारी नौकरी या अन्य किसी काम के लिए दरवाजे बिलकुल बन्द हो जाते है। कम्युनिस्ट को अपना नाम सरकारी रजिस्टर मे दर्ज कराना पडता है। एक जनतन्त्रात्मक देश मे कम्युनिज्म के खिलाफ ऐसा अन्धा विरोध देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है।

अमेरिकी आतिथ्य : एक पेट, हजार भेंट !

इस यात्रा मे हमे अमेरिकी आतिथ्य का शानदार अनुभव हुआ। इस यात्रा के दौरान मे हमारे मन पर यह प्रभाव पडा कि साधारणतः सभी देशो के लोग अतिथि के लिए बडे उदार और स्नेहिल होते है। अमेरिकी सहसा किसी नये आदमी से मिलने मे हिचकेगा। लेकिन

नहीं कि वह अतिथिपरायण नहीं है, वरन् इसलिए कि उसके मन मे यह सन्देह होता है कि पता नहीं, यह नया आदमी कौन है? कहीं कोई धोखा न हो जाय। पर जब वह अतिथि को जान लेता है, तब उसका आतिथ्य बरस पडता है।

एक दिन कुछ पत्रकार और फोटोग्राफर रास्ते मे आकर हमसे मिले ओर वे हमे एक कॉफी हाउस मे ले गये। कॉफी हाउस के व्यवस्थापक को जब हमारे बारे मे मालूम हुआ, तब उसने इन पत्रकार बन्धुओ से हमारी कॉफी के पैसे लेने से इनकार कर दिया। वह बोला : "इतनी दूर से आये हुए मेहमानो से कहो पैसा लिया जाता है! ये आपके भी मेहमान है, मेरे भी मेहमान है, सारे देश के मेहमान है।" इसके बाद उसने हमसे कहा : "आप जो कुछ खाना-पीना चाहे, कृपया आज्ञा करे। आप हमारे मेहमान है।" अमेरिका जैसे व्यापारी देश मे यह आतिथ्य आश्चर्य की बात थी।

ऐसी घटनाएँ चार-पॉच बार हमारे साथ घटी। इसलिए इन घटनाओ को आकस्मिक नहीं कहा जा सकता। कई बार लोग कार रोकते, 'लिफ्ट' के लिए पूछते। जब हम अचानक स्कूलो मे पहुँच जाते, तब विद्यार्थी एव अध्यापकगण हमे घेर लेते। बिना भोजन कराये वापस नहीं लौटने देते।

एक दिन अचानक पीछे से एक कार आकर रुकी। ड्राइवर ने हमे पुकारा। यह कार एक चलती-फिरती दूकान थी। हम ड्राइवर के पास गये। थोडी बातचीत हुई। वह बोला : "यात्रियो, पैदल चलते हो, भूख लगेगी। मेरी यह छोटी-सी भेट स्वीकार करो।" और उसने तीन-चार डिब्बे बिस्कुट के हमारे सामने बढा दिये। हमारा पेट भरा हुआ था। कहॉ तक अमेरिकी-आतिथ्य स्वीकार करते? एक पेट, हजार भेट। हमने उसे समझाया, पर वह मानने को तैयार ही नहीं था। आखिर एक छोटा सा डिब्बा हमने स्वीकार किया।

इसी तरह एक दिन हम चल रहे थे कि १५ वर्ष का एक बालक दौडा-दौडा आया और बिना कुछ कहे-सुने बोला : "क्या आप मेरे घर चलेंगे, भोजन के लिए ?" हम चकित हुए यह सोचकर कि इस बालक को हमे भोजन के लिए आमन्त्रित करने की प्रेरणा कैसे हुई ? हमने पूछा : "कहाँ है तुम्हारा घर ?" "यहाँ से आधा मील"—बालक ने कहा । उसका आग्रह तीव्र था । वह और उसकी बहन हमे आमन्त्रित करने आये थे । हमने उनका निमन्त्रण स्वीकार किया । जब हम घर पहुँचे, तब घरभर के लोग खुशियाँ मनाने लगे । बड़ी-सी मेज लगा दी गयी । भोजन हुआ । खूब बातचीत हुई । हमारा भी चित्त प्रसन्न हुआ, ऐसा आतिथ्य पाकर । ऐसी कितनी ही घटनाएँ घटती रही ।

एक दिन एक कार आकर रुकी । एक महाशय कार से उतरकर दौड़े-दौडे हमारे पास आये । "मैने आपको टेलीविजन पर देखा था । क्या आप ही है भारत से आये हुए शान्ति-यात्री ? आज मैने अखबार मे आपके बारे मे लेख पढ़ा ।" वे बोलते-बोलते भाव-विह्वल हुए जा रहे थे । हमसे सुनने की उनके पास फुर्सत ही नही थी । "मेरी ओर से यह भेट स्वीकार कीजिये"—१० डालर (करीब ४० रुपये) का एक नोट हमारे सामने बढाते हुए वे बोले : "मै आपके विचारो से पूरा सहमत हूँ । मै इस काम के लिए हर तरह से मदद करना चाहता हूँ ।" हमने किसी तरह उन्हे समझाया कि हम पैसा स्वीकार नही करते । तब वे बोले : "अच्छा, मै यह पैसा आपकी 'अहिंसा समिति' को भेज दूँगा ।"

गांधी-समाधि से केनेडी-समाधि तक

हमारी यह पदयात्रा न्यूजर्सी, पेनसिल्वेनिया, डालेवर और मेरीलैण्ड, इन चार राज्यो से होकर गुजरी । जैसे भारत मे १६ प्रान्त है, वैसे ही इस देश मे ५० राज्य है । वाशिंगटन सारे देश की राजधानी है । १० मील चौड़े क्षेत्र मे यह राजधानी बनी है । इस क्षेत्र किसी भी

राज्य के अन्तर्गत नही है। इसे कोलम्बिया जिला कहते है। वाशिंगटन बडी सुन्दर नगरी है, जैसे नयी दिल्ली। वाशिंगटन मे रहते हुए मुझे कितनी ही बार भ्रम हुआ कि क्या मै नयी दिल्ली पहुॅच गया हूॅ। हमने अपनी पदयात्रा की समाप्ति स्वर्गीय राष्ट्रपति केनेडी की समाधि पर की। ६ जनवरी १९६४ की वह सूनी सन्ध्या, जब हम केनेडी की समाधि पर पहुॅचे, हमे १ जून १९६२ की सन्ध्या के पास ले गयी, जब हमने महात्मा गाधी की समाधि से अपनी यात्रा प्रारम्भ की थी। हम चले तो थे श्री केनेडी से मिलने के लिए, पर हमे जाना पडा उनकी समाधि पर श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए।

"सयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति की ओर से श्वेत भवन मे शान्ति-यात्रियों का स्वागत है।" राष्ट्रपति जान्सन के निजी सहायक ब्रुक हैज ने श्वेत भवन मे हमारा स्वागत करते हुए कहा : "उन्होने मुझे आप लोगो की अगवानी करने के लिए नियुक्त किया है और आपकी यात्रा की समाप्ति पर बधाई भेजी है।" फिर उन्होने विस्तार से राष्ट्रपति के निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी विचारो पर प्रकाश डाला। इस तरह दिल्ली से मास्को और वाशिंगटन की हमारी पदयात्रा सम्पन्न हुई। हम अपनी मंजिल पर पहुॅच गये।

अमेरिका में अहिसा की भूख

●

ब्रिटेन से अमेरिका के लिए २२ नवम्बर को जब हम जहाज मे सवार हुए, तो जो सबसे पहली खबर रेडियो ने सुनायी, वह थी—'राष्ट्रपति जॉन केनेडी की हत्या!' जिस व्यक्ति से मिलने के लिए हम १९ मास पहले दिल्ली से पैदल रवाना हुए, उसके दर्शन से भी हम वचित रहेगे और यात्रा के अन्तिम परिच्छेद मे हमारी योजना पर यो तुषारपात हो जायगा, इसकी आशका हमने स्वप्न मे भी नहीं की थी।

●

'क्वीन मेरी' जहाज ससार के सबसे बड़े दो-चार जहाजो मे से है। इस जहाज मे चार हजार आदमी एक साथ यात्रा कर सकते है। राष्ट्रपति केनेडी की मृत्यु का समाचार जहाज के यात्रियो ने सुना, तो सबके चेहरे सुन्न हो गये। कई जवान तो फूट-फूटकर रोने लगे। सिनेमा बन्द, नाच-गाना बन्द, खेलना-तैरना बन्द, सब कुछ बन्द। मै गम्भीरता से सोचने लगा कि आखिर केनेडी की हत्या पर इतनी जबरदस्त प्रतिक्रिया लोगो के मन पर क्यो हुई? इसका कारण क्या है?

उस समय मै पूरा समझ नही सका, पर इस देश मे यात्रा करते समय मुझे मालूम हुआ कि केनेडी ने अपने शासन पर अनेक सेनापतियो और प्रतिक्रियावादियो के दबाव के बावजूद कुछ नये कदम उठाने के लिए कमर कस ली थी। अणु-प्रयोग-निषेध सन्धि तो उसका आरम्भ मात्र थी। वे कम्युनिस्ट चीन को मान्यता देने की बात सोचने लगे थे, वारसा-सन्धि और नाटो-सन्धि के देशो के बीच शान्ति-समझौता करने की योजनाएँ बना रहे थे। नीग्रो जाति के लोगो को समानाधिकार देने का 'बिल' पास करना चाहते थे। उनकी ये युवासुलभ प्रगतिशील आकाक्षाएँ बडे-बडे सेनापतियो और गोरे रग की उत्कृष्टता के ठीकेदारो को भायी नही।

वास्तव मे देखा जाय तो हिसा का बीज अमेरिका मे व्यापक रूप मे मौजूद है। यहाँ सौ मे दस आदमी विभिन्न सामरिक हथियारो को बनानेवाले कारखानो मे काम करते है। निःशस्त्रीकरण का समझौता हो जायगा, तो इस देश के दो करोड़ लोग एकदम बेकार हो जायेंगे। विदेशो के साथ इस देश का सबसे बडा व्यापार शस्त्रास्त्रो का है। इस मुनाफे का लालच छोड़ने के लिए कोई तैयार नही है।

गत १२ जून '६३ को जब राष्ट्रपति केनेडी ने अमेरिकन विश्व-विद्यालय मे भाषण करते हुए एक महान् शान्तिवादी की भाँति देश को चेतावनी दी और हथियारो की घुडदौड से बाज आने की अपील की,

तो हथियारो से मुनाफा खानेवालो का दिल दहल उठा। वे बौखला उठे और केनेडी को अमेरिकी अर्थव्यवस्था का दुश्मन समझने लगे।

अमेरिका मे औसतन हर घर मे बन्दूक का होना तो लाजिमी बात है। ये पॉच करोड बन्दूके व्यक्तिगत रूप से घरो मे है। क्रिश्चियन धर्म को भी यह देश मानता है, इसलिए हर घर मे बाइबिल का होना भी लाजिमी है। कैसा मजेदार सन्तुलन, एक हाथ मे शत्रु को भी प्यार करने की शिक्षा देनेवाली पुस्तक—बाइबिल, दूसरे हाथ मे मनुष्य के प्राण-हरण करनेवाली बन्दूक!

और लीजिये। अमेरिका मे बच्चो के खेलने के लिए किस तरह के खिलौने अधिक लोकप्रिय है? यहॉ के पचासो बडे-बडे कारखाने केवल युद्ध-सम्बन्धी खिलौने बनाते है। वे है: पिस्तौल, बन्दूक, राकेट, मिसाइल, टैक, युद्ध मे काम आनेवाले जहाज, बम-वर्षक इत्यादि। लगभग हर घर मे ये खिलौने हमे देखने को मिले। ये हिसा के बीज अप्रत्यक्ष रूप से बच्चो के दिमाग मे बोये जा रहे है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से उन्हे हिसा की अनिवार्य शिक्षा दी जा रही है। टेलीविजन पर घटो इस प्रकार का कार्यक्रम चलता है, जिसमे इस तरह के खिलौनो को चलाने का तरीका बताया जाता है। मनुष्य की आक्रमण-वृत्ति को उभाडने का जहॉ इतना सगठित प्रयत्न हो, वहॉ यदि महान् राष्ट्रपति केनेडी की हत्या की दु:खद घटना घटती है, तो आश्चर्य क्या?

एक दिन पदयात्रा मे हमें किशोर उम्र के तीन लडके मिले। तीनो के हाथ मे खेलने की बडे आकार की बन्दूक! हमने पट-पट-पट की आवाज सुनी, तो उनसे पूछा: "क्यो भाई, क्या करोगे इस बन्दूक का?"

"अपने दुश्मन को मारेगे!"—लडको ने उत्तर दिया।

"कौन है तुम्हारा दुश्मन?"

लडके एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे।—कोई उत्तर नहीं।

"जानते हो अपने दुश्मन को?"—दुबारा पूछा।

"नहीं।"—लडके बोले।

सचमुच कोई नही जानता कि उनका दुश्मन कौन है? 'दुश्मन' हवा मे खडा किया जाता है। रूस मे, चीन मे, क्यूबा मे उनका ऐसा कोई दुश्मन नही, जिसे वे जानते हो। दुश्मनी का यह कल्पित भूत जब तक समाप्त नही होगा, तब तक हिसा के ये कारनामे चलते ही रहेगे।

एक दिन प्रिस्टन विश्वविद्यालय मे छात्रो और प्राध्यापको की एक गोष्ठी मे हम बोल रहे थे। एक प्राध्यापक महोदय गाधी की अहिसा को अव्यावहारिक सिद्ध करने मे पूरा जोर लगा रहे थे। उनकी मान्यता थी कि वियतनाम मे राष्ट्रपति नोदिन जियम की हत्या न की गयी होती, तो अत्याचार पर काबू पाना असभव था। यदि क्यूबा मे डॉ० कैस्ट्रो के दमन को समाप्त करने के लिए अमेरिकी सेना हमला करे, तो भी इन प्राध्यापक महोदय को कोई आपत्ति नही। मैने पूछा : "फिर राष्ट्रपति केनेडी की हत्या गलत है या सही?"

"एकदम गलत"—प्राध्यापक ने मुट्ठी बन्द करके कहा।

"पर क्यो?"—मैने धीरे से पूछा।

प्रोफेसर ने कहा "क्योकि यह अमानवीय है।"

"यह सवाल तो आप उससे पूछिये, जिसने केनेडी की हत्या की या जिसने इस षड्यन्त्र की रचना की। उनका मानना तो यही है कि केनेडी को समाप्त करके उन्होने इस देश की सेवा की है। अगर आप क्यूबा मे हिसा का समर्थन कर रहे है तो, अमेरिका मे वही हिसा गलत क्यो मानते है?"—मैने विस्तार से अपना पक्ष रखा। प्राध्यापक महोदय गम्भीर होकर सोचने लगे।

इस देश मे अहिसा की बात सुनने की जबरदस्त भूख है। हमारी सभाओ मे सौ-डेढ सौ और कभी-कभी तो दो सौ लोगो तक की उपस्थिति होती थी। अमेरिका मे इतने लोगो की उपस्थिति असाधारण मानी जाती है। जहाँ लोग रेडियो और टेलीविजन के इतने आदी है कि सब कुछ टेलीविजन पर ही देखना-सुनना पसन्द करते है, सर्दी मे, बर्फ मे, घर से बाहर निकलना पसन्द नही करते, वहाँ हमारी सभाएँ बहुत अच्छी रहीं

सियाटल
अमेरिका
सान फ्रांसिस्को
लोस एन्जलस
आलबुकर्की
टूसान
संकेत
पदयात्रा
वाहनसे

मैडिसन
कोलबस
मारगन टाउन
बफेलो
अलबनी
न्यूयर्क
नोक्सविल
चारलोट
अटलटा
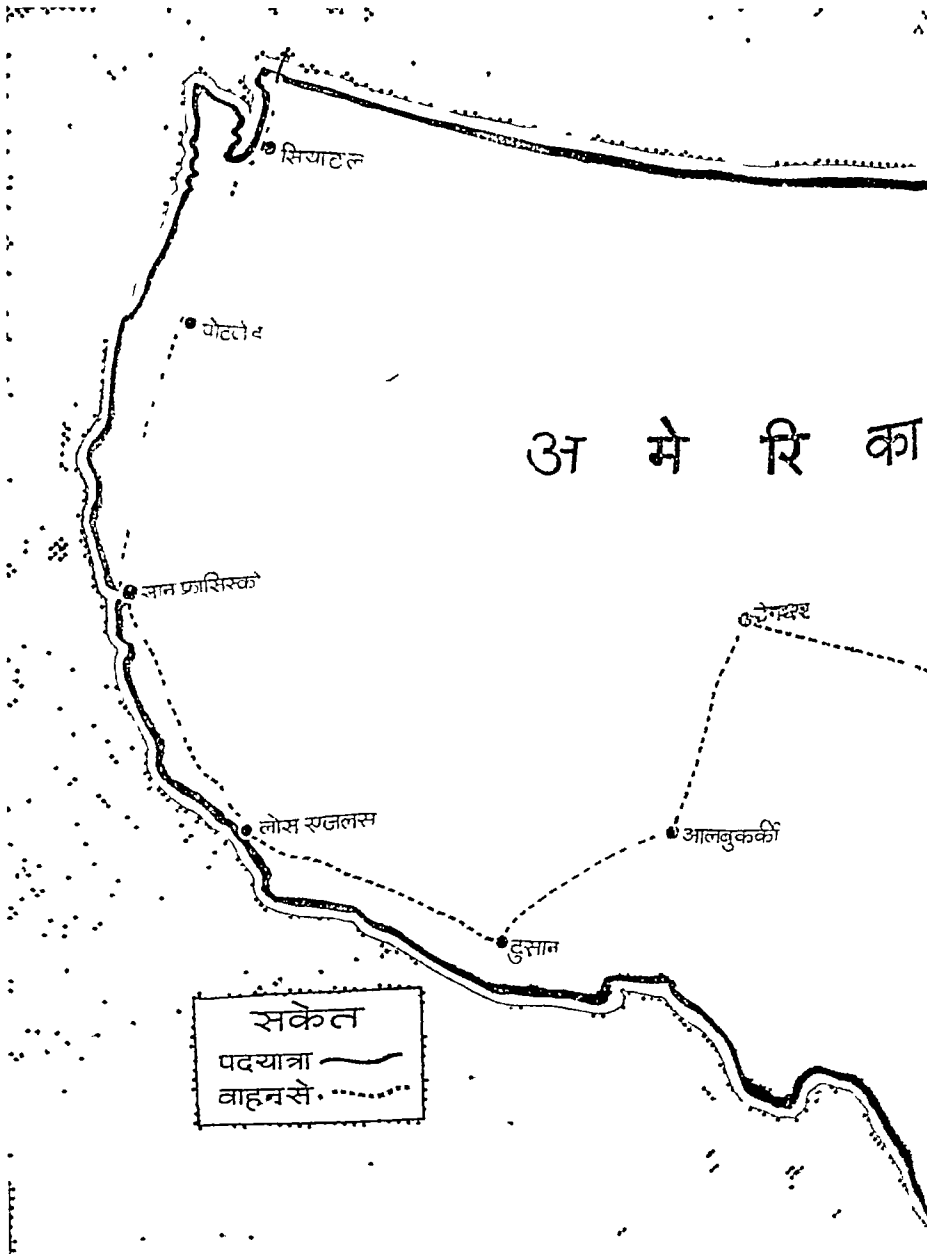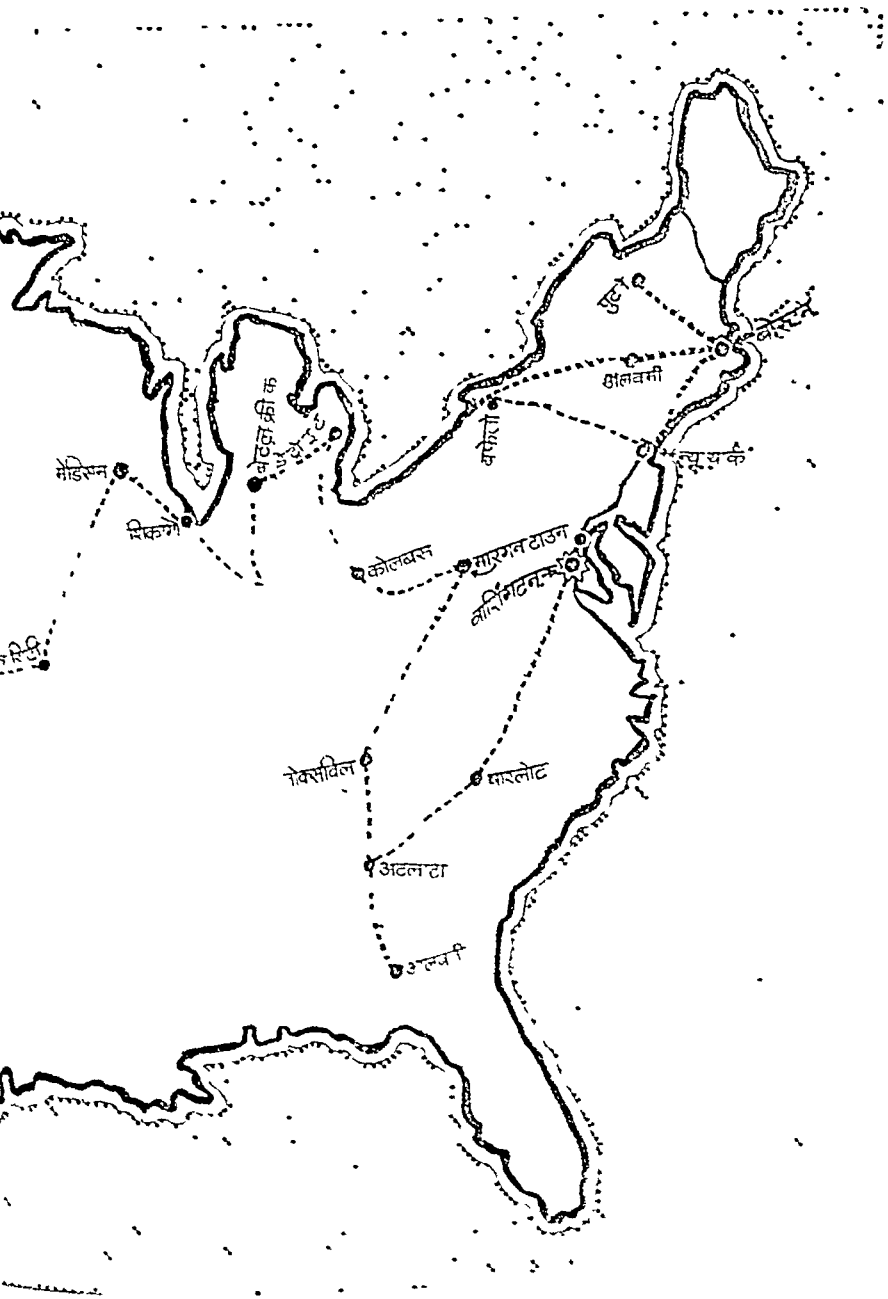
जमती थी। सात-आठ बजे सभा शुरू होती, जो रात को बारह बजे और कभी-कभी एक बजे जाकर समाप्त होती थी।

अमेरिका मे हिसा का विकास चरम सीमा पर पहुँचा है। पलक झपकते सारी दुनिया को समाप्त कर सके, इतनी हिसा की शक्ति सगठित की गयी है। हर घर मे कार है। जीवन मशीनो के घेरे मे बँधा है। समाज का नियन्त्रण मनुष्य के नही, मशीन के हाथ मे है। कपडे धोने और बर्तन माँजने से लेकर जीवन के सभी छोटे-बड़े काम स्वचालित मशीने करती है। ऐसे चरम विकास के बाद भी सारी समस्याएँ ज्यो-की-त्यो है। सौ मे से पाँच आदमी बेकार है। तीन करोड अमेरिकी लोग गरीबी की हालत मे जी रहे है। गन्दी बस्तियाँ अभी भी मुँह फाडे चुनौती बनी खड़ी है। काले लोग अभी भी बुरी तरह अपमानित है।

इतने भारी मशीनीकरण और औद्योगीकरण के बावजूद समाज की इस असन्तुलित प्रणाली मे सरल हृदय और बुद्धिमान् अमेरिकी लोग गम्भीरता से सोचने लगे है। 'कम्युनिज्म' को लोग बुरी तरह घृणा करते है। ऐसे लोगो मे यदि किसी नये विचार के प्रति आकर्षण होता है, तो वह है अहिसात्मक क्रान्ति का, गाधी का, मार्टिन लूथर किग का।

भापण-यात्रा पर

प्रारभ मे मेरे मन मे अमेरिका आने की इच्छा कभी भी प्रबल रूप से जाग्रत नहीं हुई थी। रूस जाने की और वहाँ के सामूहिक-कृषि के तथा साम्यवादी जीवन के प्रयोगो को देखने की मेरी इच्छा शुरू से थी। इसी तरह जापान की सुधरी हुई खेती के ढग तथा वहाँ के छोटे-छोटे उद्योग-धन्धो को देखने की भी मुझे अभिलाषा थी। रूस, जापान, इज-राइल आदि देशो से हम कुछ सीख सकते है, पर अमेरिका जैसे अत्यन्त धनी और भारी उद्योगोवाले देश के प्रति ज्यादा आकर्षण न होने का कारण यही था कि भारत के ग्राम-प्रधान तथा कृषि-प्रधान समाज मे

अमेरिकी पद्धति बहुत काम देनेवाली नही हो सकती। पर बाद मे मुझे अमेरिका के प्रति आकर्षण हुआ। इस आकर्षण के स्रोत थे : मार्टिन लूथर किग और उनका अहिसावादी नीग्रो-आन्दोलन। भारत की आजादी के आन्दोलन के बाद पहली बार इतने बड़े पैमाने पर अहिसात्मक साधनो का प्रयोग अमेरिका मे हो रहा है। इसके प्रति एक गहरा लगाव मुझ जैसे अहिसा के छात्र के हृदय मे हो, यह स्वाभाविक ही है। मुझे लगा कि शान्ति-सेना के काम की दृष्टि से अमेरिका मे बहुत कुछ देखने-सीखने की सम्भावना है।

वैसे तो हमारी पदयात्रा दिल्ली से मास्को और वाशिगटन तक ही थी। वह पूरी हो गयी। उसके बाद हमे वापस भारत लौटना था। पर सी. एन वी. ए. के कार्यकर्ताओ ने तथा ए. जे. मस्ते ने आग्रह किया कि हम पूरे अमेरिका का दौरा करे और अपने विचार लोगो को सुनाये। हमने उसे स्वीकार किया।

अमेरिका की धरती पर करीब सवा छह महीने का समय हमने बिताया। सी एन. वी. ए. ने इस यात्रा का सयोजन बड़ी कुशलता और चतुराई के साथ किया। हम पूरे समय इस सस्था के मेहमान रहे। सी. एन. वी. ए. का प्रधान कार्यालय न्यूयार्क मे है और सानफ्रासिस्को तथा बाल्टेनटाउन मे उसकी शाखाएँ है। नायल हावर्थ (मत्री) तथा बार्बरा लेहमन ने बडी तत्परता के साथ हमारी यात्रा को सुगम एव प्रभावकारी बनाया। बार्बरा के पति सानफ्रासिस्को से मास्को की पदयात्रा मे गये थे। पति-पत्नी दोनो बडे निष्ठावान् और अध्ययनशील है। बार्बरा ने गाधीजी का सत्याग्रह का विचार बड़ी गहराई से समझा है और कृषि-प्रधान सादगी का जीवन बिताने की उसकी इच्छा है। अपनी यात्रा की पूरी जिम्मेदारी बार्बरा को सौंपकर हम निश्चिन्त हो गये। कब, किस, बस से या रेल से या वायुयान से जाना, कहाँ उतरना, कौन बस पर लेने आयेगा, यदि लेने न आये तो उसका फोन नम्बर इत्यादि छोटी-से-छोटी बात बार्बरा ने तारीखवार हमे लिखकर दे दी।

चालीस हजार मनुष्यो को प्रति वर्ष दुर्घटनाओ मे समाप्त कर देनेवाली मोटरो के लिए 'सुपर हाई वे' बनाकर धरती की शोभा को विनष्ट किया जा रहा है। मनुष्य इन बृहत्तम राजपथो पर न्यूयार्क से सानफ्रासिस्को तक की कई हजार मील की यात्रा कार से कर लेता है, पर लोक-जीवन का स्पर्श तक उसे नहीं होता। ग्रामीणो और किसानो के जीवन-सौन्दर्य का एक छीटा भी उसके मानस पर नही पड़ता।

अगर मुझे कोई पूछे कि "तुम्हे अमेरिका की किस नगरी ने सबसे अधिक मुग्ध किया?" तो मै कहूँगा : "न्यू मेक्सिको राज्य की मनोहारी नगरी—आल्बुकर्की।" माना कि न्यूयार्क की तरह आल्बुकर्की मे गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ नही है, शिकागो की तरह बड़े-बडे कारखाने नहीं है, डेट्रोइट की तरह मोटरकारे बनानेवाली कम्पनियाँ नही है, वाशिंगटन की तरह राजनैतिक दाँव-पेच भी नहीं है, पर यहाँ के जीवन मे एक सीधा-सादा वातावरण है। मिट्टी के बने हुए खूबसूरत घर है। प्रकृति का सान्निध्य है। अमेरिकन इण्डियन लोगो की हस्तकला का आकर्षक साहचर्य है। प्राचीन, पर चित्ताकर्षक स्थापत्य-कला के अभी भी यहाँ दर्शन होते है। बधाई है यहाँ के लोगो को कि नवीनता के नाम पर इस कला और सादगी का वे बहिष्कार नहीं कर रहे है। यदि बडे नगरो की बात सोचूँ, तो सानफ्रासिस्को मुझे अधिक भाया। खास तौर पर सानफ्रासिस्को के पूर्वी सिरे पर बर्कले नाम के नगर के कारण यहाँ के वातावरण को चार चाँद लग गये हैं। बर्कले, विश्वविद्यालय का नगर है। तीस हजार विद्यार्थी और हजारो अध्यापको तथा वैज्ञानिको से भरा हुआ बर्कले विश्वविद्यालय। यहाँ हमारे हिन्दी के उपन्यासकार, कवि और लेखक अज्ञेयजी से भेट हो गयी। अमेरिका मे पहुँचकर अज्ञेयजी से भेट करने का अवसर मिलेगा, ऐसा नहीं सोचा था। कभी-कभी अचानक भेट का आनन्द सुनिर्धारित भेट के आनन्द से कहीं अधिक होता है।

नि:शस्त्रीकरण की बातचीत को ताक पर रखकर आणविक हथियारो के विकास का समर्थन करनेवाले अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक

डॉ० एडवर्ड टेलर से हम लोग मिलना चाहते थे। पर जब मैने फोन किया, तो वे यात्रा पर निकलने की तैयारी मे थे, इसलिए केवल १०-१५ मिनट तक टेलीफोन पर ही उनसे बातचीत हो सकी। उनका अभिप्राय यही था कि जब तक रूस और चीन जनतन्त्रात्मक राज्य की स्थापना की ओर नहीं बढते और उन देशो मे चुनावो की स्वतन्त्रता नहीं होती, तब तक निःशस्त्रीकरण की बात करना भी खतरा मोल लेना है।

हमारे लिए सभाओ का आयोजन सर्वांगीण दृष्टि से किया गया था। अनेक प्रसिद्ध विश्वविद्यालयो मे बोलने का हमे अवसर मिला। नामो की गिनती करूँ, तो सख्या पचास के ऊपर चली जायगी। पर बोस्टन शहर के हार्वर्ड विश्वविद्यालय की सभा मे विद्यार्थियो के साथ प्रश्नोत्तरो मे जो आनन्द आया, वह सदा स्मरण रहेगा। श्री जयप्रकाश बाबू ने मेडिसन नगर के जिस विश्वविद्यालय मे अध्ययन किया था, वहाँ भी हम लोग भाषण करने पहुँचे, यह भी एक स्मरणीय सयोग था। स्वामी विवेकानन्द की ज्ञानधारा जहाँ बही थी, उस शिकागो विश्वविद्यालय की सभा मे भारतीय छात्रो द्वारा हमारी अहिसात्मक प्रतिरक्षा की नीति का जबर्दस्त विरोध होगा, ऐसी उम्मीद नहीं थी। लॉस एंजिलेस के केलीफोर्निया विश्वविद्यालय की सभा भी कम रोचक नहीं थी। पर यदि छात्रो की सभाओ मे किसीको नम्बर देना हो, तो बाल्टीमोर नगर के गाल्चर महिला विश्वविद्यालय की सभा को पहला नम्बर देना होगा। यह सभा शाम को ७ बजे प्रारम्भ हुई और सैकड़ो छात्राओं ने रात को ११ बजे तक हिलने का नाम नहीं लिया। प्रश्नो पर प्रश्न! छात्राएँ केवल प्रश्न ही पूछकर नहीं रह गयी, सभा के बाद उन्होने 'छात्रा शान्ति-संघ' की स्थापना भी कर डाली। कई बार हमने चर्च के मच पर से पादरी के स्थान पर रविवारीय सन्देश दिया। ऐसी सभाओ मे हम स्पष्ट रूप से कह देते थे कि "हम ईसाई नहीं है, और किसी भी संगठित धर्म मे हमारी श्रद्धा नहीं है।"

मशीनो का देश

तेहरान, मास्को, बर्लिन, पेरिस और लन्दन के राजपथो पर तीव्र गति से दौडते हुए जन-जीवन को देख लेने के बाद और राज्यवादी, साम्यवादी, समाजवादी, सैन्यवादी और जनतन्त्रवादी शासन-व्यवस्थाओ मे रहनेवाले लोगों के साथ महीनो गुजार लेने के बाद, सयुक्त राज्य अमेरिका के धरती पर यात्रा करते हुए मेरे मन मे कुछ सनसनी पैदा हो उठी। आश्रम मे रहनेवाला, चरखा कातकर खादी का कपड़ा पहननेवाला, हाथ से चक्की पीसकर रोटी बनानेवाला मेरे जैसा भोला सर्वोदयी कही इस रंगभरी दुनिया मे खो तो नही जायगा ?—ऐसा डर खुद मेरे ही मन मे पैदा हुआ।

मुझे सब कुछ अद्भुत लग रहा था। पहली नजर मे ऐसा आकर्षक देश मैने कभी नही देखा। बडी-बड़ी हजारो शेवरले, कैडलक और रोल्सरायस गाड़ियो का तॉता लगा था। बिजली की जगमगाहट तो इतनी लुभावनी थी कि रात और दिन का पता ही नही चलता था। बडी-बड़ी गगनचुम्बी अट्टालिकाओ मे काम करनेवाले लोग रात-दिन बिजली के आलोक मे ही काम करते है। उनके लिए सूरज का आलोक तो शायद अनावश्यक ही हो गया है।

शुरू-शुरू मे अमेरिकी जीवन की चमक-दमक अपने गहरे रग पर रही। पर ज्यो-ज्यो दिन बीतने लगे, त्यो-त्यो अमेरिकावासी लोगो का वास्तविक जीवन देखने और समझने से वह रग फीका पडने लगा। मुझे ऐसा लगने लगा कि यह पूरा देश भारत के पुराने व्यापारी सेठ के घर जैसा है। जहॉ धन पानी की तरह बहता हो, पर जीवन के मूल्य उपेक्षित हो चुके हो। धन और गुण साथ-साथ मिलना साधारणत कठिन ही होता है। जब न्यूयार्क की गन्दगी देखी, तब तो लगा कि संसार का सर्वोत्कृष्ट धनी नगर भी इस अभिशाप से मुक्त नही है। भले ही यहॉ धन

पानी की तरह बहता हो, पर बावरी स्ट्रीट पर टूटा हुआ जीवन लेकर पैसा मॉगनेवाले पर किसे दया नही आयेगी ? भारत मे रहकर मै यह कल्पना भी नही कर सकता था कि न्यूयार्क शहर मे रात-दिन दौड़नेवाली रेले अपने डिब्बो मे भिखारियो को भी ढोती होंगी। क्या लाभ हुआ इस अपार धनराशि का ? एक ओर गगनचुम्बी महल, दूसरी ओर हार्लेम की गन्दी बस्तियॉ !

हम एक रेस्तरॉ मे बैठे जलपान कर रहे थे। मेरे साथ थे लन्दन के एक पत्रकार जॉन पैण्वर्थ। थोडी देर मे ३०-३५ वर्ष का एक सुन्दर-सा गोरा जवान आकर हमारे टेबल के पास पड़ी खाली कुर्सी पर बैठ गया। थोडी देर बाद उसने हमारी प्लेट की तरफ इशारा करते हुए पूछा : "क्या यह मै ले सकता हूॅ ?" मै समझा नही। क्या सचमुच वह खाना मॉग रहा था ? "क्या आप भूखे है ?" अमेरिका मे भी ऐसे भूखे लोग होगे, इसकी कल्पना मुझे नही थी, इसलिए मैने पूछा।

"हॉ, मैने सबेरे से कुछ नही खाया है।"—उसने कहा।

"आप यह प्लेट जरूर ले सकते है।"—मैने कहा।

"और यह प्लेट भी।"—जॉन ने अपनी प्लेट देते हुए कहा।

"मै एक आवारा हूॅ।"—उस जवान ने अपनी कहानी शुरू की। "एक बेवकूफ आवारा। मुझ जैसे हजारो है यहॉ। मेरे पास कोई काम भी नही है।" मैने उससे कहा : "मुझे तो आप एक अच्छे आदमी दीखते है। आप आवारा नही है। बेवकूफ भी नही है।" शायद उसने बहुत दिनो बाद किसीसे सुना कि वह भी एक भला आदमी है। उसे मेरी बात पर भरोसा नही हो रहा था। वह एकटक मेरी ओर देखता रहा।

"मुझे जीवन चाहिए।"—उसने गद्गद स्वरो मे कहा।

मेरे मित्र जॉन ने कहा कि "जीवन तो आपके पास है। शायद आपको किसीका प्यार चाहिए।"

प्यार शब्द सुनते ही उक्त महाशय बौखला उठे : "प्यार, प्यार! दुनिया का सबसे कठिन शब्द! क्या मुझे प्यार चाहिए? क्या कोई मुझे प्यार दे सकता है? नहीं, कोई नही दे सकता।"

हम यह बातचीत कर ही रहे थे कि दरवाजे पर हमने देखा कि रेस्तरॉ के मैनेजर किसीको डॉट रहे थे और धक्के देकर उसे बाहर निकाल रहे थे। ऐसे लोग वहॉ एक नहीं, अनेक थे। हमारे टेबल पर के आदमी ने खाना खा लेने के बाद हमसे पैसा मॉगा। बीयर पीने के लिए उसे पैसो की जरूरत थी। हम रेस्तरॉ से बाहर निकले, तो सड़क पर भी कई लोगो ने मदिरा पीने के लिए हमसे पैसे मॉगे। मदिरा पीकर वे लोग अपना दुःख-दर्द भुलाना चाहते थे। चॉद पर पहुँचने की घुडदौड मे जो देश बीस बिलियन डालर खर्च कर रहा हो, वहॉ पॉच करोड़ लोग अभी भी 'स्लम्स' मे रहते है, क्या यह आश्चर्य की बात नही है? ऊपर की चमक-दमक देखकर अगर हम अन्दर की बीमारी को नजर-अन्दाज कर देगे, तो वह अनुचित होगा। खूबसूरत परिधान मे ढॅके हुए बीमार शरीर पर आखिर कितनी देर कोई मुग्ध होगा?

इसमे कोई सन्देह नही कि अमेरिका असाधारण रूप से सम्पन्न देश है। पर 'दीया तले अन्धेरा' की भॉति इस असाधारण सम्पन्नता के नीचे एक-चौथाई आबादी का जीवन जिस हालत मे है, उसे देखकर स्वय राष्ट्रपति लिंडन जानसन का दिल भी दहल उठा है। वैज्ञानिक शिक्षा के क्षेत्र मे अनिपुण, मशीनी सभ्यता मे अकुशल, एक सीधे-सादे आदमी का जीना अमेरिका जैसे देश मे दूभर है। तकनीकी विद्या मे सक्षम लोगों के इस देश मे इन अक्षम लोगो के लिए कोई स्थान नहीं। इतिहास मे पहली बार मनुष्य और मशीन के बीच ऐसी जबर्दस्त होड पैदा हुई है। ये अक्षम और कमजोर गरीब! अल्पमतवालो की कौन सुनवाई करे? राष्ट्रपति जानसन ने गरीबी के खिलाफ युद्ध छेडने का बीडा उठाया है। पर उसके लिए भी अमेरिका के अनुदारपथी, कन्जरवेटिव लोगो की आलोचना का राष्ट्रपति को शिकार होना पड रहा है।

जानसन सरकार अणुयुद्ध की तैयारियो पर साठ बिलियन डालर प्रतिवर्ष खर्च कर रही है, जब कि देश की गरीबी पर हमला करने के लिए उन्हे केवल एक बिलियन डालर का बजट मिला है।

सवा छह महीने की यात्रा मे हम लोगो को लगा कि इस देश मे मशीन की शक्ति के सामने मनुष्य की शक्ति घुटने टेककर हार रही है। जब हम लोग वाशिगटन मे थे, तो वहाँ कनटक्की राज्य से आये हुए खान-मजदूरो के प्रतिनिधि-मण्डल से मिलने का मौका मिला। कनटक्की राज्य के ये खान-मजदूर राष्ट्रपति के सामने अपनी यह पुकार पेश करने आये थे कि उस राज्य की खानो मे स्वचालित मशीनो का इस्तेमाल दिन प्रति दिन बढता जा रहा है और हजारो मजदूर बेकारी की भयंकर परिस्थिति मे उलझते जा रहे है। इसी तरह मशीन यदि मनुष्य का हर जगह स्थान लेती जायगी, तो आखिर मनुष्य एक निरुपयोगी प्राणी मात्र बनकर रह जायगा।

मै जब 'ओटोमेट' नाम के एक रेस्तराँ मे गया, तो एक ओर मेरे मन मे उस नवीन पद्धति के प्रति कुतूहल और आश्चर्य था, तो दूसरी ओर मेरे मन मे मशीन के पजे मे फँसते जा रहे मनुष्य के प्रति तरस भी आ रहा था। इस ओटोमेट रेस्तराँ के नजदीक पहुँचते ही दरवाजा अपने-आप खुल गया। दरवाजा खोलने के लिए बढा हुआ मेरा हाथ निराश होकर वापस आ गया। यह एक बडा-सा खूबसूरत रेस्तराँ था। पूरे रेस्तराँ मे एक भी मनुष्य नही। पचासो तरह की सामग्रियाँ, गरम और ठडे पेय, विभिन्न देशो के विभिन्न गरम और ठडे पदार्थ मशीनो मे रखे थे। मशीन मे पैसा डालो, जो वस्तु चाहिए उस वस्तु के नाम के सामने-वाला बटन दबाओ, इच्छित वस्तु बाहर प्रस्तुत हो जायगी। यदि आपके पास एक डालर का नोट है और आपको खुदरा पैसे चाहिए, तो उसके लिए भी आप मशीन के पास जाइये। बटन दबाइये। मशीन खुदरा पैसे निकालकर दे देगी।

इसी तरह यहाँ के सर्ववस्तु भण्डार, 'सुपर मार्केट' की स्वचालित व्यवस्था ने भी मुझे हैरत मे डाल दिया। ये सारे 'सुपर मार्केट' तीन-चार वडी कम्पनियो के हाथ मे केन्द्रित है और यहाँ साग-भाजी, फल, मास तथा अन्य खाद्य-सामग्री ताजा मिलने के बजाय शीतोष्ण नियन्त्रित मशीनो से प्राप्त होती है। सभी तरह का पका-पकाया भोजन, सब्जी, सूप, खीर इत्यादि बन्द डिब्बो मे उपलब्ध है। रसोई बनाने मे ज्यादा समय खर्च करने की जरूरत नही। हाँ, इतने सारे बचे हुए समय का क्या और कैसे उपयोग करना, इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं। ब्लीचिग पाउडर से साफ किये हुए गेहूँ के आटे की बनी हुई रूई की तरह नरम और सफेद डबल रोटी देखने मे कितनी ही आकर्षक लगती हो, पर खाने मे मुझे तो कभी स्वादिष्ट नहीं लगी। आश्चर्य तो इस बात का हुआ कि डबल रोटी के लिए भी विज्ञापन किया जाता है। तो क्या कल पानी के लिए भी विज्ञापन करना पड़ेगा? भारत मे तो टाफी, कैन्डी, चाकलेट आदि प्रायः बच्चो के लिए ही बनती है। पर यहाँ तो ये चीजे जवान और बूढे लोग भी बच्चों की ही तरह खाते है। कुछ अमेरिकी मित्रो ने बताया कि अधिक कैन्डी खाने की वजह से ही सफेद, मजबूत और सुन्दर दाँत कम ही देखने को मिलते है। 'कोकाकोला' जैसे पेय और मीठी टाफियो का सतत उपयोग दाँतो का दुश्मन ही है। यहाँ की तरुण-तरुणियाँ 'चुइंग गम' (एक ऐसा पदार्थ, जिसे घण्टो तक धीरे-धीरे चबाया जा सकता है) बहुत पसन्द करती है। सिगरेट पीना तो आम बात है। कुछ लोगो ने हमे बताया कि वे सिगरेट इसलिए पीते है कि उनके हाथ सिगरेट थामे रहने से कुछ व्यस्तता-सी महसूस करते रहे। मनुष्यो का काम मशीने करे और मनुष्य को व्यस्त रखने के लिए ये मशीने 'चुइंग गम' तथा सिगरेट पैदा करे!—यह है इस नये युग की यान्त्रिक सभ्यता।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के आँकडो के अनुसार हर नौ सेकण्ड के बाद एक मनुष्य नाम का प्राणी भूख का शिकार होकर मर जाता है। पर यदि अमेरिका जैसे देशो मे होनेवाली अन्न की बरबादी का हिसाब लगाया

जाय, तो असंख्य लोगों के प्राण बचाये जा सकते है। कागज की बरबादी का तो कोई पार ही नहीं। रद्दी, कूड़ा-कचरा उठाने के लिए एक परिपूर्ण तन्त्र ही खड़ा है। अकेले 'न्यूयार्क टाइम्स' के रविवारीय अंक को छापने के लिए दस एकड भूमि का बाँस काटकर बनाया हुआ कागज लगता है। अस्सी प्रतिशत विज्ञापनों से भरे हुए इस एक विशालकाय अंक का वजन दो-ढाई किलोग्राम तक होता है। और 'सभ्यता' के नाम पर इसे हम ऑख मूँदकर स्वीकार कर लेते है। हॉ, एक बात मुझे बहुत पसन्द आयी कि किसीको एक कागज का टुकड़ा भी फेकना हो, तो वह उसे जहॉ कही सडक पर नहीं फेकेगा, बल्कि जहॉ पर कचरा डालने का डिब्बा रखा है, वही पर फेकेगा। जगह-जगह ऐसे डिब्बे रखे है। कोई आदमी यदि कागज का छोटा-सा भी टुकडा इधर-उधर फेक दे, तो उसे १० डालर जुर्माना देना पड़ेगा। इसीलिए अमेरिका के नगरों मे एक विशेष प्रकार की स्वच्छता हमने देखी। पर वह स्वच्छता भी न्यूयार्क की हारलम जैसी बस्तियो मे कहॉ है!

एक दिन फिलाडेल्फिया मे हमारी सभा के बाद आयोजकों ने श्रोताओ के लिए कुछ नाश्ता और चाय का प्रबन्ध किया। गत्ते से बनी सुन्दर प्लेट और प्लास्टिक के बने आकर्षक चम्मच इस्तेमाल करने के बाद कचरे के डिब्बे मे फेके जा रहे थे। चम्मचो को कौन धोये? कौन सँभालकर रखे? धोने के लिए नौकर रखा जाय, तो वह इतना महँगा पडेगा कि उतने मे ऐसे कितने ही चम्मच और खरीदे जा सकते है।

अमेरिका मे चीजे सस्ती है, आदमी महँगा है, जब कि भारत में आदमी सस्ता है, चीजे महँगी है। अमेरिका मे प्रायः हर आदमी के पास कार होती है। पर, ड्राइवर तो हजारो में किसी एक के ही पास होगा। सब लोग अपनी कार खुद चलाते है। दो-चार हजार में कार मिल सकती है, पर ड्राइवर रखना हो, तो उस पर कम-से-कम हजार रुपया महीना खर्च करना पडेगा। कोई अमीर आदमी घर के काम-काज के लिए नौकर रखता है, तो वह नौकर अपनी कार मे आता है।

वह छह-सात घण्टे घर मे सफाई करेगा, भोजन पकायेगा, प्लेट आदि साफ कर देगा। और हजार रुपया मासिक वेतन लेकर अपनी गृहस्थी चलायेगा। यो अमेरिका मे ज्यादातर काम तो मशीन से ही होते है। दाढ़ी बनाने के लिए बिजली की मशीन हाजिर है। दॉतो का ब्रश बिजली से चलता है। स्त्रियॉ अपने गीले बालों को बिजली से सुखाती है, बिजली के ब्रश से अपने बाल झाड़ती है। जूतो पर पालिश करने के लिए भी बिजली का ब्रश है। कपड़े धोने और सुखाने की बिजली की मशीन तो एक आम बात है। बिजली का कम्बल ओढ़कर सो जाइये और रातभर गरम रहिये। भारी रजाइयॉ ओढने की कोई जरूरत नही।

अमेरिकी विविधता

अमेरिका की जिस विशेषता ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया, वह है उसकी विविधता मे एकता। सैकड़ो तरह के छोटे-बड़े राजनैतिक और धार्मिक दलो को देखकर मै हैरान रह गया। हिटलर को युगनेता मानकर नाजी पार्टी चलानेवाले भी इस देश मे कानूनन सुरक्षित है और इस नाजी पार्टी के कोप-भाजन यहूदी लोग भी सुरक्षित हैं। गोरे वंश की पवित्रता और सर्वश्रेष्ठता मे विश्वास करनेवाले 'कू क्लुक्स क्लान' पार्टी के लोग भी नीग्रोवंश के खिलाफ आजादीपूर्वक नीग्रो-विरोधी आन्दोलन चला रहे है और उसी स्वतन्त्रता के साथ काले नीग्रो-वंश की पवित्रता और सर्वश्रेष्ठता की वकालत करनेवाले गोरे वंश के राक्षसीय वंश होने का प्रचार कर रहे है। फासिस्ट विचारो के उपासको की 'जान बर्च सोसाइटी' भी जोर-शोर के साथ अपना प्रचार चला रही है। अहिंसा, समानता और शान्ति की बात करनेवाले पैसिफिस्ट भी नक्कारखाने मे तूती की आवाज के समान अपना स्वर ऊँचा कर रहे हैं। अधिकांश अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ व्यापारियो, पूँजीपतियो और विज्ञापनदाताओ द्वारा दमित होने के का[illegible] और [illegible]

दूर रहते है। फिर भी 'प्रोग्रेसिव', 'लिबरेशन', 'दि माइनोरिटी आफ वन', 'नेशन' आदि कुछ छोटे-मोटे प्रगतिशील पत्र प्रकाशित हो ही रहे है। भले ही उनकी आवाज अरण्यरुदन की भाँति व्यर्थ हो ! आमतौर पर रेडियो तथा टेलीविजन पर चलनेवाले कार्यक्रमो का स्तर अत्यन्त व्यापार-दमित और घटिया होता है, फिर भी के. पी. एफ. ए. जैसे कुछ रेडियो स्टेशन अपना ऊँचा स्तर कायम रखने मे भी सफल हुए है और घाटे मे चलकर भी जीवित है। इस तरह की विविधता का यह देश है।

अमेरिका मे आत्मालोचन की प्रवृत्ति भी बढ रही है। मैने ऐसी अनेक पुस्तके देखी, जो अमेरिकी जीवन की गहरी समीक्षा प्रस्तुत करती है। 'अगली अमेरिकन्स', 'अदर अमेरिका' और इसी तरह की कुछ पुस्तको ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया। इस आत्मालोचन की प्रवृत्ति ने अमेरिका को अपना विकास करने की नयी दिशा दी है। अमेरिका का रूप अन्तर्राष्ट्रीय माना जा सकता है। इग्लैण्ड, जर्मनी, पोलैण्ड, रूस, इटली आदि अनेक देशो से आये हुए करोड़ो लोगो का सम्मिलित रूप ही अमेरिका है। अमेरिका के मूल निवासी तो अमेरिकन इडियन है, जिनकी सख्या बहुत ही कम है। केवल यहाँ के निवासी ही नही, बल्कि यहाँ के शहरो तक के नाम दुनिया के विभिन्न देशो से पहुँचे है। एक दिन हम अपनी मेजबान के साथ कही जा रहे थे कि वह बोली : "यह मास्को है", "मास्को ?"—मैंने आश्चर्य से पूछा। "जी हाँ, मास्को ! पर मास्को यू. एस. एस. आर. नहीं। मास्को यू. एस. ए. है।" अमेरिका मे केवल मास्को ही नहीं, पेरिस, रोम, लन्दन, बर्लिन आदि दुनियाभर के शहरो के नाम पर बसे हुए शहर है। यहाँ तक कि देहली भी है और न्यू देहली भी। कितना मजेदार है यह देश !

अमेरिकी लोग सीधे दिल और खुले दिमाग के होते है। औसत अमेरिकी नागरिक को अधिक पैसा कमाने की तथा सुरक्षा की चिन्ता सबसे ज्यादा रहती है। किसी भी दूसरे देश की भाँति यहाँ के लोग भी राजनैतिक मामलो मे ज्यादा ध्यान नही देते, बल्कि ब्रिटेन, जापान और

भारत के विद्यार्थियो की तुलना मे अमेरिका के विद्यार्थी राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलनो मे अपेक्षाकृत कम भाग लेते हैं। नीग्रो-आन्दोलन ने पहली बार युवको मे सामाजिक आन्दोलन की चेतना पैदा की है और हजारो विद्यार्थियो को सच्चे अर्थ मे कर्मक्षेत्र मे उतरने का अवसर दिया है। अमेरिका का शान्ति-आन्दोलन युवको और छात्रो मे नीग्रो-आन्दोलन की तरह चेतना पैदा नही कर सका है। 'स्टूडेन्ट्स पीस यूनियन' नाम की संस्था ने इस दिशा मे थोडा प्रयत्न किया है और 'कमिटी फॉर नॉनवायलेन्ट एक्शन' ने भी कुछ क्षेत्रो मे सगठित जाग्रति उत्पन्न की है।

अमेरिका में शिक्षण

●

अमेरिका पहुँचनेवाले मुझ जैसे मुसाफिर के लिए शिक्षण-सस्थाओ की सैर करना एक खास दिलचस्पी का विपय था। रूस, जर्मनी, फ्रास और ब्रिटेन की शिक्षण-सस्थाओ मे समय गुजार लेने के बाद अमेरिकी शिक्षण-पद्धति को जानने-समझने की उत्सुकता स्वाभाविक ही थी। मुझे पहली रुचि शान्ति के प्रश्न पर थी और दूसरी रुचि शिक्षण के प्रश्न पर। इसलिए जहॉ कही भी शिक्षण-व्यवस्था को समझने का अवसर आया, मैने उसका उपयोग किया। मेरे मन मे बराबर यह खटकता रहा है कि आजादी के बाद भारत मे अगर किसीकी सबसे ज्यादा उपेक्षा हुई है, तो वह शिक्षण की हुई है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन की साधना से पवित्र प्रिंटन विश्वविद्यालय से लेकर हार्वर्ड और कोलम्बिया विश्वविद्यालय तक जाकर मैने यह समझने की चेष्टा की कि आखिर अत्यन्त आधुनिक और वैज्ञानिक साधनो से सम्पन्न इन विश्वविद्यालयो के विद्यार्थियो का जीवन कैसा है एवं उनकी विचार-परिपक्वता कितनी ऊँची है और तीस-चालीस

हजार की सख्या मे विद्यार्थियो को समा सकनेवाले ये विद्या के केन्द्र मानवीय सम्बन्धो के क्षेत्र मे कहाँ तक आगे बढे हुए है ?

अमेरिका की शिक्षण-संस्थाएँ एक जैसी नहीं हैं। प्रत्येक कॉलेज और विश्वविद्यालय का अपना ढग और अपना स्वतन्त्र स्वरूप है। वेरमोन्ट राज्य के दो कॉलेजों मे हमारे भाषणो का कार्यक्रम था। इन दोनो शिक्षण-सस्थाओ मे कुछ आकर्षक ढॉचा हमे देखने को मिला। करीब डेढ सौ छात्र और छात्राएँ प्रत्येक कॉलेज मे है। वहीं अध्ययन और वही निवास है। इतने थोड़े-से विद्यार्थियों के लिए ३०-४० प्राध्यापक थे। वहाँ हमे मानवीय स्पर्श के दर्शन हुए और शिक्षा का स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा मिला। अमेरिका के सामाजिक जीवन और पारिवारिक जीवन की परम्परा मे कॉलेज मे पढनेवाले विद्यार्थी घर मे रहने के बजाय छात्रावास मे रहते है। लडके-लडकियाँ साथ मिलकर जीवन व्यतीत करते है। जिस लडके के साथ 'लड़की-मित्र' (गर्ल फ्रेंड) न हो और जिस लडकी के साथ कोई 'लडका-मित्र' (बॉय फ्रेंड) न हो, वे अपने-आपको कुछ हीन-सा महसूस करते है। भिन्न-भिन्न राज्यो मे शिक्षा के तौर-तरीके भी भिन्न-भिन्न हैं। कुछ सरकारी स्कूल और कॉलेज भी हैं। अधिकांश शिक्षण-सस्थाएँ आम जनता के चन्दे से निजी तौर पर चलती है। गैर-सरकारी शिक्षण-सस्थाएँ बहुत महँगी हैं। प्रति वर्ष तीन-चार हजार डालर (करीब सोलह हजार रुपये) का खर्च आता है। इतनी महँगी शिक्षा दिल दहलानेवाली है। नौजवान छात्र प्रतिवर्ष अपने माँ-बाप से इतनी बडी धनराशि प्राप्त करके खुश नही रहते। वे आत्मनिर्भर रहना चाहते है। इतने भारी खर्च के कारण अनेक छात्र स्वेच्छित विश्वविद्यालयों मे नही जा पाते। सरकारी विश्वविद्यालयो में शिक्षा सस्ती है। पर गैरसरकारी विश्वविद्यालयो के छात्रो की तुलना मे सरकारी विश्वविद्यालयो से उत्तीर्ण छात्रो की पूछ कम होती है।

अमीर घरानो के विद्यार्थी भी सामान्य श्रम करके अपनी पढाई का खर्च खुद निकाल लेते है। कैसा भी छोटा काम करने मे वे बेइज्जती

महसूस नहीं करते। होटल में प्लेट धोने का काम हो या सफाई करने का काम हो, ये विद्यार्थी आसानी से सब कर लेते हैं। श्रम की ऐसी प्रतिष्ठा और ऐसा मूल्य भारत मे कब होगा ? प्रिस्टन विश्वविद्यालय के एक छात्र ने हमे बताया कि शिक्षा का खर्च पूरा करने के लिए वह होटल मे काम करता है और दिन मे केवल एक बार भोजन करके अपना काम चला लेता है।

इस अति आधुनिक और दुरूह शिक्षा के बावजूद अपराधो का स्तर क्यो इतना ऊपर चलता जाता है ? केन्द्रीय जॉच संगठन ने सन् १९६२ के अपराधों की समीक्षा करते हुए बताया था कि गम्भीर अपराधो की २० लाख घटनाएँ उस वर्ष घटी। राष्ट्रपति केनेडी की हत्या ने सारे संसार को चौंका दिया, पर हत्याएँ इस देश के लिए कोई नयी बात नहीं है। सन् १९६२ मे प्रतिदिन २४ हत्याएँ हुई। अर्थात् हर घण्टे मे एक आदमी मौत के घाट उतार दिया गया। यदि इस हिसा और घृणा पर काबू नही किया जा सकता, तो अवश्य ही शिक्षण-पद्धति में कही दोष है। सन् १९६२ मे बलात्कार की घटनाओ का औसत प्रतिदिन ५० रहा। यह तो निश्चित ही है कि बलात्कार की सभी घटनाएँ पुलिस की नजर में नही आ पाती। हर चार मिनट के बाद एक झगड़ा पुलिस की पकड़ में आया। पुलिस की पकड़ के बाहर कितने झगड़े और बलात्कार हुए, उनका कोई हिसाब नही। हर रविवार को गिरजाघरों मे धर्म की शिक्षा दी जाती है। इसलिए ऐसा नही कहा जा सकता कि धर्म की शिक्षा के अभाव मे अपराध बढ़े है। हर गली और हर सडक पर दो-चार गिरजा-घर अवश्य मिलेगे। साम्यवादी देशो मे जिस तरह धर्म को जान-बूझकर बहिष्कृत किया गया है, उसके बदले यहाँ चर्च और धर्म को अधिक प्रतिष्ठा दी गयी है। फिर भी अपराधो की संख्या इतनी बड़ी है।

अमेरिका की शिक्षण-सस्थाओ पर राज्य का नियन्त्रण तो कम है, किन्तु अर्थदाताओ का प्रभाव उन पर कहीं अधिक है। कहीं-कहीं तो न चाहने पर भी विद्यार्थियो को कॉलेज के गिरजाघर मे अनिवार्य रूप से

इसलिए जाना पडता है कि उस कॉलेज का खर्च अमुक चर्च से मिलता है।

अमेरिकी शिक्षण-पद्धति मे सबसे अधिक आकर्षण की बात यह है कि विद्यार्थियो का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व प्राध्यापक के कन्धो पर होता है। विश्वविद्यालय की ओर से शिक्षको और विषयो की लम्बी सूची विद्यार्थियो के सामने प्रस्तुत की जाती है। अपना शिक्षक और विषय चुनने के लिए विद्यार्थी स्वतन्त्र है। जब विद्यार्थी अपने शिक्षक और विषय का चुनाव कर लेते है, तब शिक्षक विद्यार्थियो के लिए पुस्तके सुझाते हैं। ये शिक्षक ही परीक्षा लेते है।

भारत के विश्वविद्यालयो मे तो विश्वविद्यालय की ओर से उसका स्वीकृत पाठ्यक्रम शिक्षक और विद्यार्थियों पर लाद दिया जाता है, पर अमेरिका के विश्वविद्यालयो मे इस केन्द्रित निर्णय की पद्धति को हटाकर प्राध्यापक और विद्यार्थियो पर सब कुछ छोड़ दिया जाता है। भारत मे शिक्षक पढ़ाता कुछ और है, परीक्षक प्रश्नपत्र कुछ दूसरे ही बना देता है। उत्तर-पत्रो की जॉच कहीं तीसरी जगह होती है। यही कारण है कि जब विद्यार्थी प्रश्नो के उत्तर नहीं दे पाता, तब वह या तो नकल करता है या चोरी करता है, और पकडे जाने पर परीक्षा-भवन की जॉच के लिए तैनात प्राध्यापक पर हमला भी कर बैठता है। पर अमेरिका मे ऐसा कुछ नहीं होता। वहॉ तो जो प्राध्यापक पुस्तकों का चुनाव करता है, वही पढाता है। वही छात्रो के लिए प्रश्नपत्र बनाता है। वही परीक्षा लेता है। वही उत्तर-पत्रो की जॉच करता है, वही नम्बर देता है। वही छात्रो को उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण करता है। प्राध्यापक का हर निर्णय अन्तिम होता है। विश्वविद्यालय के किसी भी अधिकारी को छात्र और प्राध्यापक के बीच आने का हक नहीं।

इस पद्धति मे छात्र और शिक्षक के बीच हृदय का सम्बन्ध बनता है। दोनो एक-दूसरे के प्रति जिम्मेदार होते है। दोनो के हृदय मे एक-दूसरे के प्रति आदर होता है। अनुशासनहीनता की घटनाएँ स्वतः कम

हो जाती है। जब मैंने कुछ लोगो से पूछा कि 'क्या यहॉ के छात्र कभी हड़ताल करते है?' तो लोग मेरे प्रश्न को समझ ही नहीं सके। छात्र और हड़ताल? जब कि भारत मे हड़ताली छात्रो पर गोलियॉ तक चलती है! भारत के छात्रो और प्राध्यापको के बीच न तो इस तरह का आदर-भाव है और न कोई गहरा रिश्ता।

थोरो की कुटिया पर

●

"सविनय कानून भग का शस्त्र अत्यन्त प्रभावशाली है। आपको यह शस्त्र कहॉ से मिला?"—प्रसिद्ध अमेरिकी पत्रकार लुई फिशर ने महात्मा गाधी से पूछा।

"अमेरिका से"—बापू ने मुस्कराकर कहा।

"अमेरिका से?"—लुई फिशर ने आश्चर्य किया। बेचारा पत्रकार असमजस मे पड गया।

"हॉ लुई, इसमे आश्चर्य की बात नहीं। अमेरिका के महान् चिन्तक हेनरी डेविड थोरो ही मेरे गुरु है। उन्हींसे मैंने सविनय कानून-अवज्ञा का पाठ पढा है।"—बापू ने स्पष्ट किया।

मैने जब यह विवरण पढा, तो उसी दिन से मेरे मन मे तरह-तरह की जिज्ञासाएँ उत्पन्न होने लगीं। मैने पहली बार थोरो का नाम पढा था। 'कौन है यह महान् चिन्तक, जो महात्मा गाधी को प्रेरणा दे सकता है?' यह सवाल रह-रहकर मेरे सिर मे चक्कर काटने लगा। मैने पुस्तकालय छानना शुरू किया, पर दुर्भाग्य से कोई पुस्तक नहीं मिली। मेरी जिज्ञासा बढ़ती गयी। एक दिन मै किसी मासिक-पत्रिका के पन्ने उलट रहा था। सम्पादक ने एक लेख के नीचे बची हुई जगह मे एक छोटा-सा संवाद छापा था। यह संवाद था थोरो और उसके मित्र महान् विचारक श्री एमरसन के बीच का। थोरो सरकार को व्यक्ति-कर चुकाने से इनकार करने पर गिरफ्तार करके जेल मे बन्द कर दिये गये थे।

उन्होने यह कर चुकाने से इसलिए इनकार किया था कि सरकार मेक्सिको-युद्ध के खर्च मे सरकारी पैसे का उपयोग कर रही थी। थोरो से मिलने के लिए कवि एमरसन जेल की कोठरी पर पहुँचे और विनोद मे बोले : "कहो हेनरी, जेल की कोठरी के अन्दर बैठे क्या कर रहे हो ?" हेनरी ने कहा : "साथी एमरसन, तुम जेल की कोठरी के बाहर खड़े क्या कर रहे हो ?" इस प्रश्न मे एक उत्तर भी था और एक जबर्दस्त चुनौती भी। जेल की कोठरी के बाहर खड़े रहकर अन्याय को सहन करने की पीड़ा से अन्याय का प्रतिकार करते हुए जेल की कोठरी के अन्दर रहने की पीड़ा कहीं कम होती है।

उक्त सवाद ने मेरे मन को और अधिक झकझोर डाला। बहुत खोजने पर मुझे थोरो का एक निबन्ध पढ़ने को मिला—'सिविल डिसओबीडिएन्स'—सविनय अवज्ञा। इस निबन्ध ने मुझे एक नयी रोशनी दी। थोरो ने लिखा था कि दुनिया का कोई भी कानून व्यक्ति की आत्म-चेतना से ऊपर नहीं है। यदि किसी कानून के कारण आत्म-चेतना पर आघात होता है, तो उस कानून को चुनौती देना या उस कानून को अस्वीकार कर देना व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। गाधी को इसी विचार से प्रेरणा मिली और उन्होने अंग्रेजों द्वारा लादे हुए नमक कानून को अस्वीकार किया। मार्टिन लूथर किंग को भी थोरो से प्रेरणा मिली और उन्होने रंगभेद कानून को अस्वीकार किया। बर्ट्रेण्ड रसेल को भी थोरो से प्रेरणा मिली और उन्होने आणविक अस्त्रों के खिलाफ प्रदर्शन करने की पाबन्दी तोडकर जेल जाना पसन्द किया।

हम अपनी शाति-यात्रा के दौरान में जब अमेरिका का पर्यटन कर रहे थे, तो हमारे मन मे थोरो की कुटिया पर जाकर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने की कामना अत्यन्त प्रबल थी। अमेरिका के पूर्वी किनारे पर बसे हुए बोस्टन शहर से करीब ४० मील दूर वाल्डेन पोंड की वन-वीथी में थोरो ने अपने हाथ से एक छोटी-सी कुटिया बनायी थी। बिना

किसी मजदूर के पूरी कुटिया का उन्होने स्वय निर्माण किया था। स्वावलम्बी और श्रमिक जीवन का आदर्श उन्हे वहुत प्यारा था। पैसे का व्यवहार वे कम-से-कम करना चाहते थे। धन और सत्ता को उन्होने मानव-जीवन की प्राकृतिक सरलता और सादगी के लिए वाधक माना था। जेल से छूटने के वाद उन्होने इसी पहाड़ी पर अपने दोस्तो को दावत दी। अपने मित्रो के वीच अनुपम स्वतन्त्रता का अनुभव करते हुए कहा : "स्टेट वाज नो हेयर टु वी सीन"। "राज्य कही भी तो दिखलायी नही पड़ता !" इस एक ही वाक्य से थोरो के शासन-मुक्ति के विचार समझे जा सकते है।

जब हम वाल्डेन पोण्ड पहुँचे, तो सूर्यास्त की वेला थी। लाल क्षितिज की पृष्ठभूमि में वाल्डेन पोण्ड के ऊँचे-ऊँचे पेड खूबसूरत लग रहे थे। वर्फ से सफेद धरती पर काला अन्धेरा विछता जा रहा था। इस सुहावने जगल के अन्दर सड़क पर हमने अपनी कार छोड दी। हमारे दो अमेरिकन मित्र अँधेरी पगडण्डी पर आगे-आगे चलते हुए रास्ता वता रहे थे। हम उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। फरवरी का ठडा महीना। तेज हवा। कभी-कभी ऐसी तूफानी हवा मुझे वड़ी अच्छी लगती। ओवर-कोट, फरोवाली गरम टोपी और हाथ के दस्तानो के कारण यह कड-कड़ाती सर्दी हम पर ज्यादा असर नही कर सकती थी। दो-तीन घाटियाँ पार करके हम अपने लक्ष्य-स्थल पर पहुँचे। इस समय कुटिया पर कुछ नही है। टूटा खँडहर मात्र है। सरकार ने एक शिलालेख गाड़ रखा है, जिससे पता चलता है कि यहाँ थोरो रहते थे। यह स्थान सर्वथा उपेक्षित है। फिर भी चारों ओर का प्राकृतिक वातावरण अत्यन्त सुरम्य है। यदि इस स्थान की ओर थोडा भी ध्यान दिया जाय, तो पर्यटकों के लिए यह एक उत्तम आकर्षण-केन्द्र वन सकता है। एक-एक पत्थर और एक-एक लकड़ी चुन-चुनकर थोरो ने जव इस कुटी का निर्माण किया होगा, तो उनके मस्तिष्क मे कितना ऊँचा आदर्श रहा होगा। सादगी के जीवन का आदर्श ! थोरो का यह छोटा-सा ममार कितना लुभावना

रहा होगा ! वे प्रकृति की गोद मे रहते थे। प्रकृति के पुजारी थे। प्रकृति का प्यार उन्हे यहाँ खीच लाया था। हमने थोरो को अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की। कितना पावन था यह तीर्थ!

काली चमड़ी, पिस्तौल का निशाना

गोरी चमड़ी का अभिमान भी कैसा भयकर अभिमान है। मै सुना करता था कि दक्षिण अफ्रीका और अमरिका के गोरी चमड़ीवाले लोग अपने-आपको काली चमडीवालो से ऊँचा समझते है और काली चमडी से घृणा करते हैं। लेकिन उस समय मैं ऐसा समझता था कि पहले भले ऐसा रहा होगा, पर अब धीरे-धीरे मिट गया होगा। लेकिन अमेरिका की यात्रा के दौरान मे मैं जब दक्षिणी राज्यो में गया, तब वहाँ के नीग्रो लोगो की हालत देखकर मैं चकित रह गया। इस बीसवी शताब्दी मे भी केवल काली चमडी के कारण ऐसा व्यवहार होगा, यह कल्पना से बाहर की बात है। काली चमडीवाले नीग्रो दूसरी श्रेणी के नागरिक माने जाते हैं। काली चमड़ी का होना एक भयकर अभिशाप है। केवल इतना ही नही कि काली चमडीवाला नीग्रो हब्शी गोरी चमडीवालों के होटलो, सिनेमाओं आदि सार्वजनिक स्थानो मे नही जा सकता, बल्कि यह भी है कि गोरी चमडी की उत्कृष्टता के दावेदार नीग्रो लोगो को भयकर रूप से सताते है। उन्हे वक्त-बेवक्त मारते-पीटते है। उनके घर जला डालते हैं। जोर्जिया अल्बामा, मिसीसिपी आदि दक्षिणी राज्यों में नीग्रो-समाज की जो दुरवस्था है तथा उन पर जो अन्याय होता है, उस पर विश्वास करना भी कठिन है। हब्शियो का क्रन्दन सुनकर कान बहरे हो जाते हैं। ये लोग गन्दी बस्तियों मे रहते है। फटे-पुराने कपडे पहनते हैं। गरीबी का जीवन बिताते है। उन्हे सरकारी दफ्तरों मे या निजी व्यापार-संस्थानों मे आसानी से काम नही मिलता। बेकारी की समस्या उनके जीवन की प्रमुख समस्या है।

का कुछ भी पता नही है। यदि आप नाराज होते है, तो मुझे इस रेस्तराँ मे कुछ भी खाने-पीने की इच्छा नही है। लेकिन मैं समझना चाहता हूँ कि आखिर बात क्या है ? आपको कारण समझाना होगा।"

मैने ऐसा कई बार कहा। पर मेरे बारे मे उसे भ्रम होने का सवाल ही क्या ? साफ जाहिर था कि मेरी चमड़ी रेस्तराँ के मालिक की चमड़ी से भिन्न थी। जब इस सारी बहस मे पॉच-सात मिनट गुजर गये, तो रेस्तराँ के मालिक का धीरज टूट गया। रेस्तराँ मे बैठे हुए तमाम लोगो का ध्यान हमारी ओर खिंचा हुआ था।

रेस्तराँ के मालिक का शरीर कॉप रहा था। उसने चिल्लाकर कहा : "रेस्तराँ के बाहर जाते हो या सबक सिखाऊँ ?" और उसने आलमारी की दराज में से एक बडा-सा चमड़े का बैग निकाला। बैग को खोलते ही एक अत्यन्त आधुनिक ढंग का पिस्तौल उसमे से निकल पडा। शायद उसने सोचा कि पिस्तौल देखकर मै भाग जाऊँगा। पर मैने हँसते हुए कहा : "मेरे भाई, पिस्तौल दिखाने की कोई जरूरत नही। मुझे आपके पिस्तौल का डर भी नही लगता। फिर, मै यहॉ झगडने के लिए नही आया हूँ और स्वय चला जा रहा हूँ। परन्तु तब तक नही जाऊँगा, जब तक आप मुझे यह नही समझा दे कि मुझे यहॉ खाना क्यो नही मिलेगा ?"

मेरा हँसना और बजाय डरकर भागने के वही खडे रहना उसकी क्रोधाग्नि मे घी का काम कर रहा था। उसने पिस्तौल हाथ मे उठायी, अगुली घोडे पर रखी और दूसरे हाथ से रेस्तराँ के दरवाजे की तरफ इशारा करते हुए कहा : "बिना कुछ बोले बाहर निकल जाओ।"

इसी बीच हमारे पास खड़ी वेट्रेस को दया आयी। उसने सोचा कि कही कुछ दुर्घटना न घट जाय, इसलिए उसने पीछे से एक जोर का धक्का लगाया और मुझे रेस्तराँ के बाहर निकालकर झट से दरवाजा बन्द कर लिया। मैने देखा कि रेस्तराँ का मालिक कोई बात सुनने-समझने को तैयार ही नहीं था। इसलिए बात बढाना बेकार है। मेरे

साथी जॉन ने भी यही कहा कि अब बात बढ़ाना उचित नही होगा। इसलिए हम वहाँ से लौट आये।

इस घटना से जाहिर है कि रगभेद का नशा कितना जहरीला होता है। यदि ऐसा कोई प्रसग हो, कोई परेशानी या मतभेद हो, तो पुलिस को बुलाया जा सकता है, परन्तु इतनी जरा-सी बात पर पिस्तौल हाथ मे लेने की बात तो अजीब-सी लगती है। बाद मे अन्य अमेरिकी मित्रो ने बताया कि अगर रेस्तरॉ की वेट्रेस धक्का देकर बाहर न निकाल देती, तो किसी दुर्घटना का होना असम्भव नही था।

नीग्रो-आन्दोलन

नीग्रो लोगो ने समानता प्राप्त करने के लिए पिछले कई सालो से एक बहुत जबर्दस्त आन्दोलन छेड रखा है। इस आन्दोलन मे भाग लेनेवाले और इसका नेतृत्व करनेवाले ज्यादातर हब्शी युवक है। इस आन्दोलन का स्वरूप लगभग वैसा ही है, जैसा भारत मे आजादी के आन्दोलन का था। हम जब भी नीग्रो बस्तियो मे से गुजरते थे, तो हमे 'फ्रीडम' 'फ्रीडम' का नारा सुनाई पडता था। भारत मे तो हम केवल गाधी की पूजा करते है, अमेरिका के हब्शी युवक तो गाधी के विचारो पर अमल करते है। हजारो युवको ने जिस तत्परता और निष्ठा के साथ इस आन्दोलन मे भाग लिया है, वह विलक्षण है। ये युवक हफ्तो उपवास करते है, जेल-यातना भोगते है। रोबिन्सन नाम के एक नीग्रो युवक ने मुझसे घण्टेभर बात की। वह बोला : "मै नीग्रो जाति की आजादी के लिए लड रहा हूँ, न कि गोरी चमडीवाले अपने भाइयो के खिलाफ। मै अन्याय से नफरत करता हूँ। पर अन्याय करनेवाले के प्रति मेरे मन मे द्वेष नही। यह सबक मैने 'गाधी की आत्मकथा' से सीखा है।" एक दूसरे नीग्रो युवक कार्ल अर्नोल्ड से मैने पूछा : "जब गोरे लोग आपके शरीर पर बिजली के कोड़े चलाते है अथवा आप पर कुत्ते

छोड़ते है, तब भी क्या हिसा का सहारा लेने की आपकी इच्छा नहीं होती ?" श्री अर्नोल्ड ने कहा : "हिसा का शमन हिसा से नहीं हो सकता। आग से आग नहीं बुझती। हमारे आन्दोलन मे हिंसा अनैतिक ही नहीं, अव्यावहारिक भी है।"

हम जब भारत से बिदा हो रहे थे, तो कुछ मित्रो ने कहा था कि आप विदेशो मे भारत की उच्च सस्कृति का सन्देश फैलाये और विश्व को अहिसा तथा शान्ति का पाठ पढ़ाये। लेकिन जब हमने अमेरिका मे डा० मार्टिन ल्थर किग के नेतृत्व मे चलनेवाला अहिसात्मक नीग्रो-आन्दोलन देखा, तो हमे लगा कि शायद भारत को ही अहिसा का मार्ग वहाँ से सीखना पड़ेगा। शान्तिमय आन्दोलन के द्वारा समानता-प्राप्ति का सक्रिय शिक्षण उन्हीसे लेना होगा। हाल मे ही डॉ० किग को विश्व का सबसे बड़ा पुरस्कार, नोबुल प्राइज देकर उनके अहिसा सम्बन्धी विचारो का सम्मान किया गया है। ये डॉ० किग ही थे, जिनके आह्वान पर हजारो नीग्रो जेलो मे गये। अमेरिका की जनता ने नीग्रो लोगो को समानता का अधिकार देना स्वीकार कर लिया है। अमेरिका की सरकार ने काले-गोरे के भेद को समाप्त करनेवाला कानून बनाया है। नीग्रो लोगो ने आजादी की लडाई के लिए हिसा, रक्तपात और वैमनस्य का नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण प्रतिकार, असहयोग, सविनय कानून भग और सत्याग्रह का मार्ग चुना।

अब्राहम लिकन के बाद पहली बार राष्ट्रपति जान केनेडी ने एक दमित जाति के आँसुओ को पोछने का बीडा उठाया। काली और गोरी चमडी के नाम पर मनुष्य-मनुष्य के बीच दुर्भाव, घृणा और भेद पैदा करनेवालो से उन्होने जीवन के नये मूल्य अपनाने की अपील की तथा देश के सामने नागरिक अधिकार कानून उपस्थित किया। इसके पहले कि यह कानून साकार हो पाता, केनेडी के सीने मे बन्दूक की तीन गोलियाँ दाग दी गयीं। उनका सपना उनके रहते सक्रिय रूप नहीं ले सका। उनके उत्तराधिकारी राष्ट्रपति जानसन ने कहा कि स्व० जान केनेडी को

सच्ची श्रद्धाञ्जलि देने का सबसे श्रेष्ठ साधन है—नागरिक अधिकार कानून को यथावत् स्वीकार करना। परन्तु गोरी चमड़ी को श्रेष्ठता का प्रतीक माननेवाले कुछ प्रतिक्रियावादी लोग इस अपील को मानने के लिए राजी नहीं हो रहे थे।

काली और गोरी चमड़ी का प्रश्न पूरे अमेरिका मे दिन प्रतिदिन तीखा होता जा रहा है। किसी भी समय हिंसा फूट पड़ने का खतरा सिर पर लटक रहा है। प्रतिक्रियावादी नेता मलकम एक्स ने स्पष्ट शब्दो मे कहा था कि 'गोरेपन के अभिमान मे चूर अहिंसा की भाषा कभी नहीं समझेगे। अत. हमे अपने बचाव के लिए बन्दूक चलाने का प्रशिक्षण लेना चाहिए और गोरो के अन्यायो को समाप्त करने के लिए ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहिए।' अगर इस युवा नीग्रो नेता की सीख पर अमल किया गया, तो इसमे सन्देह नहीं कि अमेरिका मे गोरे और काले के बीच वैसे ही भयकर रक्तपात का खतरा है, जैसा कि सन् १९४७ मे भारत मे हुआ था। कहीं-कहीं होनेवाले हिंसात्मक दगे इस बात का प्रमाण हैं कि हिंसक शक्तियाँ विश्राम नहीं कर रही है।

आज अमेरिका का नीग्रो एक दुराहे पर खड़ा है। एक ओर मलकम एक्स का बन्दूक का रास्ता है, दूसरी ओर डॉ० किंग सद्भावना और अहिंसा का दीप लेकर खडे है। आज का नया नीग्रो 'नागरिक अधिकार कानून' से कुछ आश्वस्त हुआ है। यदि यह कानून अस्वीकृत हो जाता तो निराशा, असन्तोष और प्रतिक्रिया की चपेटो मे उलझा हुआ नीग्रो किस मार्ग की शरण लेता, यह कहना कठिन है। जब हम अमेरिका मे थे, तब यह कानून काग्रेस ने तो स्वीकार कर लिया था, पर सीनेट मे जाकर अटका गया था। एक डेमोक्रेट राष्ट्रपति द्वारा उपस्थित यह बिल डेमोक्रेट सदस्यो के विरोध के भँवर मे उलझा हुआ था। गोरी चमड़ी की उत्कृष्टता के पोषक कुछ सदस्य इस बिल मे अनेक संशोधन उपस्थित करके उसे प्रभावहीन, दुर्बल और लँगड़ा बना देना चाहते थे। ये सारे संशोधन न केवल कानून के रूप को बदल डालने,

बल्कि उसे पूरी तरह निकम्मा बना देते। डॉ० किंग की तो यह मान्यता थी कि इस संशोधित बिल को स्वीकार करने के बजाय बिल का न होना ही ज्यादा अच्छा था। बाद मे सीनेट ने बहुमत से इस बिल को स्वीकार किया। अमेरिका पर विश्व की ऑखे लगी है। जनतन्त्र, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और समानता के आदर्शों के लिए अमेरिका सदा से वकालत करता रहा है। यदि अमेरिका मे ही इन सिद्धान्तो पर अमल नहीं होता, तो ससार को कितनी निराशा होगी! इसलिए नीग्रो समानता का महत्त्व राजनैतिक दृष्टि से भी कम नहीं है।

नीग्रो-आन्दोलन पर अहिंसा का जो प्रभाव है, वह अपना असाधारण महत्त्व रखता है। आज अहिंसा और गाधी लोगो के लिए विशेष चर्चा और अध्ययन के विषय बन गये है। रिचर्ड ग्रेग ने कहा था कि 'अमेरिका के नीग्रो छात्र ठीक वही भाषा बोलते है, जो भाषा गाधीजी बोला करते थे।' इससे यह स्पष्ट है कि अमेरिका के नीग्रो अपना आन्दोलन धीरज, हिम्मत और गम्भीरता के साथ चला रहे है। पर आशका यही है कि कही उनके धीरज का बॉध दूसरे पक्ष की हठधर्मिता के कारण टूट न जाय। यह सही है कि उक्त बिल के स्वीकृत हो जाने मात्र से नीग्रो लोग गन्दी बस्तियो को छोड़कर खूबसूरत महलो मे नहीं पहुँच जायेगे; स्कूलो, सिनेमाओ और होटलो मे बरता जानेवाला भेदभाव भी एक ही दिन मे समाप्त नही हो जायगा, शिक्षा का स्तर भी तुरन्त आसमान पर नहीं चढ जायगा, बेकार नीग्रो काम पर नहीं लग जायेगे; उनकी आर्थिक आय पलो मे दुगुनी नही हो जायगी; नीग्रो बच्चो को खूबसूरत कपडे नही मिल जायेगे; स्कूलो मे पर्याप्त शिक्षक भी नही पहुँच जायेगे, बीमार नीग्रो तुरन्त दवा भी नहीं पा जायेगे; इसमे देर होगी। केवल कानून बन जाने से यह परिवर्तन नही हो जायगा। यह परिवर्तन तभी होगा, जब अमेरिका की जनता का हृदय-परिवर्तन होगा—जब गोरों के मन मे नीग्रो के प्रति सद्भाव पैदा होगा। कानून बन जाने से आज की हीनता की स्थिति पर हथौडा अवश्य लगेगा।

इससे नीग्रो लोग हीन भाव और दूसरी श्रेणी के नागरिक की सतह से ऊपर उठने के लिए तैयार हो सकेंगे। गोरे लोगो के हृदय-परिवर्तन के लिए तथा अहिसात्मक आन्दोलन चलाने के लिए व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से जो प्रशिक्षण-केन्द्र चलाये जा रहे है, वे भविष्य के उत्तम समाज की बुनियाद डालेगे।

सपना साकार हुआ

●

अमेरिका से विदा होने की वेला आयी। ऐसा लगता था, जैसे हमने कोई सपना देखा हो। हम जब भारत से चले थे और खैबर दर्रे से गुजर रहे थे, तो चार अमेरिकी सज्जन मिले। उन्होने अपनी कार रोकी और पूछा : "क्या आप हमारे साथ चलेगे ? जहाँ आपको जाना हो, हम छोड़ देगे।"

हमने कहा : "नही, हम गाडी मे नही चलेगे।" तो उन्होने पूछा : "कहाँ जा रहे है ?"

हमने कहा : "हम अमेरिका जा रहे है।"

वे चारो अमेरिकी भाई ठहाका मारकर हँस पडे। उन्होने इसे एक मजाक समझा। कहने लगे : "मालूम है, कहाँ है अमेरिका ?"

हमने कहा : "हम कभी गये तो नहीं है, पर नक्शे मे देखा है। बहुत दूर है। फिर भी हम चल ही पडे है। 'चलता मुसाफिर ही पायेगा मजिल और मुकाम।' कभी तो हम पहुँच ही जायँगे।"

उन लोगो को विश्वास तो नहीं हुआ, पर उनमे से एक भाई डॉ० स्कार्फ ने अपने घर का पता और टेलीफोन नम्बर देते हुए कहा : "अगर आप सयोग से अमेरिका पहुँच ही जायँ, तो हमे टेलीफोन कीजियेगा।"

हमने उनका नम्बर अपनी डायरी मे नोट कर लिया। कदम-कदम चलकर आखिर जब हम अमेरिका पहुँचे और फिलाडेल्फिया शहर मे

गुजर रहे थे, तो हमे डॉ० स्कार्फ और उनके साथियो की याद आयी। रात को बारह बजे हमने उन्हे टेलीफोन किया : "डॉक्टर साहब, क्या आपको याद है कि खैबर पास मे दो पदयात्री आपको मिले थे।" डॉक्टर बोले : "हॉ, हॉ, मुझे याद है। कहॉ है वे ?"

हमने कहा : "हम आपके नगर मे पहुँच गये है और हम ही टेली-फोन पर बात कर रहे है।"

उन्हे अपने कानो पर भरोसा नही हो रहा था। उन्होने कहा : "क्या सचमुच आप पहुँच गये ?"

जब हमने कहा कि 'कल सवेरे हम आपसे मिलेगे' तो डॉक्टर स्कार्फ बोले : "सवेरा तो बहुत दूर है। मै रुक नही सकता तब तक।"

रात की कडी सर्दी मे १२ बजे आकर वे हमसे मिले। उन्होने कहा : "सचमुच सपना साकार हुआ।"

इसी तरह एक अन्य अमेरिकी युवक ने 'न्यूयार्क टाइम्स' मे हमारी पदयात्रा के प्रारम्भ होने के समाचार पढकर प्रधानमन्त्री नेहरू को लिखा कि 'मुझे मालूम नही कि ये दोनो पदयात्री कहॉ है ? पर वे जहॉ भी हो, कृपया उन्हे मेरा यह सन्देश दीजिये कि वे जब भी अमेरिका जायॅ, मेरे घर आकर अतिथि बने।' हम काबुल पहुॅचे, तो नेहरूजी के कार्यालय से एक चिट्ठी हमारे राजदूत ने हमे दी। इतना पहले से आतिथ्य का आमन्त्रण पाकर हमे बडी खुशी हुई, पर उस समय हम नही जानते थे कि किस तरह उसका आमन्त्रण चरितार्थ होगा। पर आखिर वह चरितार्थ हुआ और उस उत्साही युवक से हम मिले। उसके विद्यालय मे जाकर हमने अपनी यात्रा के अनुभव भी सुनाये। वह वेस्टपोर्ट का युवक कहने लगा : "मैने जब नेहरूजी को चिट्ठी लिखी थी, तो भरोसा नहीं हो रहा था कि आप कभी अमेरिका पहुॅच सकेगे। पर जब आप पहुॅच गये तो लगता है कि सपना साकार हुआ।"

हवाई द्वीप

●

अमेरिका मे हमारा आखिरी मुकाम होनोलूलू, हवाई द्वीप मे था। सचमुच यह छोटा-सा द्वीप धरती पर स्वर्ग का टुकड़ा ही है। हमने इन सीधे-सादे हवाइयन लोगो के साथ जो चार दिन विताये, वे कभी भुलाये नही जा सकते।

होनोलूलू प्रशान्त महासागर के दक्षिणी हिस्से के एक छोटे-से टापू 'ओआहु' मे बसा हुआ एक खूबसूरत नगर है। होनोलूलू मे ही पर्ल हार्बर भी है, जहॉ जापान ने बम गिराया था। होनोलूलू पहुँचते ही वहॉ की 'हुला' बालाओ ने हमारे गले मे 'लेई'—माला पहनायी तथा 'अलोहा' कहकर हमे बॉहो मे भर लिया। अतिथियो के स्वागत का यह निराला ही तरीका है। ग्रास-स्कर्ट कमर मे, एक चोली-सी स्तनो पर, एक फूलमाला गले मे—यही थी उन 'हुला' किशोरियो की वेष-भूषा। वैसे यहॉ की स्त्रियॉ जो वेष-भूषा आमतौर पर पहनती है, उसे 'मुमु' कहा जाता है।

पर्यटको की होनोलूलू मे भारी भीड रहती है। हमने 'वाइकिकि' समुद्र-तट पर इन पर्यटको को बडी संख्या मे देखा। तीन-चार लाख पर्यटक यहॉ पर प्रतिवर्ष आते है और हवाइयन लोगो को १०-१५ करोड डालर की आमदनी प्रतिवर्ष होती है। फलो और फूलो की इतनी बहुतायत है कि ससारभर का डिब्बो मे भरा हुआ ७५ प्रतिशत अनन्नास हवाई द्वीप-समूह मे तैयार होता है।

सन् १८९८ तक हवाई द्वीप का प्रशासन स्थानीय राजा द्वारा होता था। उसके बाद यह द्वीप सयुक्तराज्य अमेरिका के मातहत हो गया। सन् १९५९ से इस द्वीप को अमेरिका का पचासवॉ राज्य घोषित कर दिया गया।

होनोलूलू में हम लोग क्वेकर-भवन में ठहरे थे। हमारा कार्यक्रम रेडियो पर हुआ था तथा कुछ सभाएँ भी आयोजित हुईं। होनोलूलू का एक विशिष्ट स्थान है : 'ईस्ट वेस्ट सेंटर।' इस सेंटर में दक्षिण-पूर्व एशिया के विद्यार्थियों को पढने के लिए अमेरिकी सरकार विशेष रूप से सहायता करती है। भवन बहुत सुन्दर है और अन्य व्यवस्था भी काफी अच्छी है। होनोलूलू से हम जापान की ओर रवाना हुए। ●
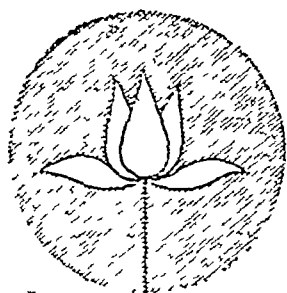
पूर्व और पश्चिम की
समन्वय-भूमि...
जापान में

मे तीन-चार महीने रहने, टोकियो से हिरोशिमा की पदयात्रा करने और जापान के शान्ति-आन्दोलन को देखने, समझने और उसे मदद पहुँचाने की बात भी हमारे सामने रखी। इसलिए हमने अपने शान्तिवादी साथियो का निमत्रण स्वीकार किया और जापान जाने का निश्चय कर लिया।

जापान के लिए रवाना होते ही मै जापान की परिश्रमी और विनीत जनता के बारे मे सपने सॅजोने लगा। हमारे विमान की परिचारिकाओ मे एक जापानी बहन भी थी। उसकी नम्रता, सेवा, तत्परता और मुस्कराहट दूसरी सभी परिचारिकाओ से उसे भिन्न कर रही थी। यो मन-ही-मन जापान के चित्र खीचते हुए हम टोकियो के अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर पहुँचे। विमान से उतरते ही रेडियो और टेलीविजन-वालो ने और पत्र-पत्रिकाओ के संवाददाताओ ने हमे घेर लिया। उनसे छुट्टी पाकर जब हम हवाई अड्डे के बाहर आये, तो जापान बौद्धसघ, एफ. ओ. आर. (फेलोशिप ऑफ रिकन्सिलिएशन), अनार्किस्ट सोसाइटी और डबल्यू. आर. आई. के साथियो ने हमारा स्वागत किया।

विश्व के इस सबसे बड़े शहर मे पहुँचते ही एक विशेष परिवर्तन दीख पड़ा। पूर्व और पश्चिम मे जो अन्तर है, वह अन्तर स्पष्ट नजर आया। एक बार तो ऐसा लगा, मानो हम वापस कलकत्ता ही पहुँच गये हो। टोकियो की भयकर भीड़ को देखकर तो कोई भी चकित हुए बिना नही रहेगा। मनुष्यो के ऐसे जगल मे रहने से मानवीय स्पर्श कैसे जीवित रहेगा? शहर की रेलो मे सुबह-शाम सफर करने का मौका पडे, तो 'सेडविच' की भॉति हमारा पिच जाना मामूली बात है।

टोकियो के शान्तिवादी लोगो की एक सभा हुई और उन लोगो ने मिलकर 'शान्ति-यात्रा सहायक समिति' का निर्माण किया। डब्ल्यू. आर. आई. और उसके प्रमुख नेता श्री सिराई शिम्पे ने पूरी जिम्मेदारी के साथ इस समिति को चलाने का भार उठाया। एक सप्ताह का समय टोकियो मे बिताकर हमने अपनी पदयात्रा प्रारम्भ की। अनेक शान्तिवादी

लोग जुलूस बनाकर पूरे शहर मे हमारे साथ चले। जापान ही एक ऐसा देश है, जहाॅ के लोग अणुबम की भयंकरता के भुक्तभोगी है। हिरोशिमा और नागासाकी से निकली हुई भयावह ज्वाला को अभी भी जापान के लोग भूले नही है। इसलिए हमारी यात्रा को असाधारण समर्थन प्राप्त हो, यह जापानी लोगो की भावना के अनुकूल ही था।

द्वितीय महायुद्ध के सैनिक श्री रिओबुइचिरो ने तय किया कि वे टोकियो से हिरोशिमा की ७०० मील की यात्रा मे पूरे समय तक हमारे साथ रहेगे। हिंसक सेना का एक सिपाही शान्ति की सेना का सैनिक बन जाय, इस घटना का विशेष महत्त्व था। इसी प्रकार अमेरिका की श्रीमती मेरी हार्वी भी विशेष रूप से अमेरिका से हमारी यात्रा मे पूरे समय साथ रहने के लिए जापान पहुॅची। सन् १९४५ मे अमेरिका का एक विमान-चालक अणुबम गिराने के लिए जापान आया और लाखो लोगो को हिंसा की आग मे झुलसाकर चला गया। उसी देश की एक सुकुमार बहन ने अपने पैरो के छालो की परवाह न करते हुए ७०० मील पैदल चलकर उस पाप का प्रायश्चित्त किया। हमे प्रसन्नता है कि न्यूयार्क-वाशिंगटन की पदयात्रा मे जो दो युवक हमारे साथ रहे थे, वे अब वाशिंगटन से नयी दिल्ली की शान्ति-यात्रा पर चल पड़े है। इसी तरह अमेरिकी शान्ति-आन्दोलन की एक प्रतिनिधि बहन का पदयात्रा के लिए जापान आना विशेष महत्त्व की बात थी।

हमारी पदयात्रा ने जापान के लोगो मे रुचि पैदा की। विश्वविद्यालय की दो छात्राएॅ भी हमारे साथ चली। कुमारी सुएको के पैरों मे छाले पड गये। तेज धूप का प्रभाव उसके कोमल शरीर पर ऐसा पड़ा कि होठो तथा हाथो की चमड़ी उधड़ने लगी और फफोले पड़ गये। इन छात्राओ की तपस्या देखकर मुझे नतमस्तक हो जाना पड़ा। पीठ पर सामान लादकर सवेरे ९ बजे से शाम को ५ बजे तक १२ से १५ मील की दूरी रोज तय करना और फिर रात को प्रतिदिन सभाओ मे भाग लेना, भाषण देना, चर्चा करना और अनुवादक का काम करना

यह सब आसान काम नही। हर शहर मे तो सभा के लिए कोई-न-कोई अच्छा दुभाषिया मिल जाता था, परन्तु बाकी चर्चाओ के लिए ये बहने ही दुभाषिया बनती थी।

प्रत्येक शहर मे नगरपालिका के अध्यक्ष हमारा स्वागत करते थे। नगरपालिका के अन्य सदस्यो से भेट होती थी। नगरपिता हमे अच्छे-अच्छे उपहार भेट करते थे। अनेक स्थानो पर 'लेबर यूनियन' के लोगो के साथ भी मुलाकात होती थी। जापान का सुप्रसिद्ध श्रमिक-संगठन 'सोह्यो' अणुअस्त्र विरोधी आन्दोलन मे बहुत सक्रिय है। इसलिए इस सगठन के लोग हमारे कार्य मे विशेष रूप से रुचि प्रकट करते थे।

जापान का शान्ति-आन्दोलन अणुअस्त्र विरोधी मात्र है। उसमे तीन दल है। एक की रस्सी पेकिंग से बँधी है। दूसरा दल मास्को और पेकिंग से बँधा न होने पर भी अहिंसा और सम्पूर्ण युद्ध के निषेध की भूमिका मे विश्वास नही करता। तीसरा दल मुख्य रूप से छात्रो का दल है, उसका प्रभाव सीमित है। इस तरह जापान का आन्दोलन राजनैतिक-दलो द्वारा दमित है, यह कहना अत्युक्ति नही होगी। हम जहाँ भी जाते

थे, प्रतिदिन हमसे इस फूट के बारे मे पूछा जाता था। हमारा दृष्टिकोण तो यही रहता था कि राजनैतिक गुटबन्दी से ऊपर उठकर सैद्धान्तिक भूमिका के साथ स्वतन्त्र शान्ति-आन्दोलन की रचना करनी चाहिए। डब्ल्यू. आर. आई. जैसी संस्थाएँ छोटी है और प्रभावशाली नही है। इन सस्थाओ को प्रभावशाली बनाने की जरूरत है।

जापान की यात्रा करते समय जिस चीज ने मुझे बेहद प्रभावित किया, वह है इस देश की प्रगतिशीलता। जीवन मे, सामाजिक सम्बन्धो मे और रूढ़िवादी रीति-रिवाजो मे एक जबर्दस्त परिवर्तन यहाँ हो रहा है। मजहबी कट्टरता के बन्धन टूट रहे है और स्त्री-पुरुषो के सम्बन्धो मे नया दृष्टिकोण पनप रहा है। 'हमारेपन' की उत्कृष्टता का झूठा गर्व जापान मे बहुत था, परन्तु वह तेजी के साथ बदल रहा है। छोटे-छोटे खेतो मे कडी मेहनत से काम करनेवाले किसानो के जीवन से हम बहुत कुछ सीख सकते है। जापान का हर घर एक कारखाना है, यह कहना मुनासिब ही होगा। छोटे पैमाने के इन उद्योगो ने जापान के लोगो को एशिया का सर्वाधिक समृद्ध देश बना दिया है। भारत के हम लोग जब तक अपने जड-सस्कारो को नही बदलेगे, नया दर्शन और नये मूल्य स्थापित नही करेंगे, तब तक हमारे समाज का परिवर्तन सम्भव नही। समाज को बदलने के लिए मनुष्य को ही बदलने की जरूरत है।

गजब का देश

●

दूसरे लोगो की तरह मेरी भी यह धारणा थी कि जापान भूकम्पों का देश है। जापान जाने की बात उठते ही मन मे यह आशंका पैदा होती थी कि जिस छोटे-से द्वीप मे हर साल पन्द्रह सौ बार भूकम्प के धक्के लगते है, वहाँ की यात्रा करना कितना विचित्र होगा? वहाँ के लोग कैसे होगे? वहाँ के मकान कैसे होगे? पर जब ३० हजार फुट की ऊँचाई से हमारा 'पानआम' विमान जापान की धरती पर उतरा

तब मन पर पहला प्रभाव यही पडा कि यह भूकम्पो का ही नही, अनुपम सुन्दरता का भी देश है। प्राकृतिक सुन्दरता और मानवीय सुन्दरता का यह देश 'सूर्योदय का देश' कहलाता है। 'फूजी' पर्वत के प्राकृतिक वैभव के सामने मै नतमस्तक हो गया। जापान के सबसे बड़े ज्वालामुखी पर्वत 'आसो' पहुँचकर वहाँ की भयङ्करता के सामने मै स्तम्भित रह गया। एक ओर सागर, दूसरी ओर पर्वत के बिना जापान का कोई चित्र ही नही खिचता।

हमारी यात्रा केवल यात्रा ही नही हुई, उसमे अध्ययन और अध्यापन भी हुआ। इस यात्रा से मुझे एक मुक्त दृष्टिकोण मिला। इस यात्रा मे बदलते हुए जापान को मैने नजदीक से देखा। एशिया का यह छोटा-सा देश एटम बम छोडकर ससार की शायद हर चीज बनाता है। नये-नये ढग, नये-नये तरीके अपनाकर ही जापान ने यह प्रगति की है। जापान के लोगो ने अपने स्वत्व को भी सुरक्षित रखा और दुनिया के कोने-कोने से सीखने लायक बाते सीखीं। द्वितीय महायुद्ध के बाद यहाँ के सामाजिक दृष्टिकोण मे बुनियादी परिवर्तन आ गया है।

हजामत और स्नान

●

जापान की स्त्रियाँ खूबसूरत रग-बिरगे 'किमोनो' पहनकर, सज-धज-कर केवल घर मे नही बैठती, वे जीवन के हर क्षेत्र मे पुरुषो के साथ कदम मिला रही है। होटलो और रेस्तराँओ पर तो उनका एकाधिकार ही है। इनके अलावा दूकानो पर सामान बेचने से लेकर बस सचालन तक के कामो मे स्त्रियो का ही राज है। हजामत बनानेवाली भी स्त्रियाँ ही मिलेगी। जापान मे आप बाल काटने की दूकान पर जाइये। सुन्दर तरुणी मुस्कराकर आपका स्वागत करेगी। फिर आप बहुत ही आरामदेह कुर्सी पर बैठकर हजामत बनवाइये। एक घण्टे तक आपके बाल कटेगे, शेम्पू से सिर धुलेगा, मालिश-चम्पी होगी। इस तरह आपकी

सारी थकान दूर हो जायगी। हजामत के बाद यदि आप सार्वजनिक स्नानागार मे स्नान करने का भी आनन्द उठा सके, तो कहना ही क्या ?

सार्वजनिक स्नानागार मे एक बड़े हाल मे गरम पानी का बड़ा-सा हौज होता है। इस हौज मे पचासो लोग एक साथ नंगे होकर स्नान करते है। ५०-६० साल पहले तक तो स्त्रियाँ और पुरुष एक ही साथ इस हौज मे नगे स्नान करते थे। अब भी होक्कायदो प्रान्त मे कही-कही ऐसे स्नान-घर है। वरना साधारण तौर पर स्त्रियाँ और पुरुष अलग-अलग नहाते है। स्त्रियो और पुरुषो के स्नान-घर के बीच एक पतली-सी दीवार होती है। पैसे लेने के लिए एक महिला खिड़की पर बैठी होती है, वही दोनो ओर के स्नान-घरो की सँभाल करती है। स्नान करनेवाले पुरुष नगे ही इस महिला के सामने रहते है और कभी-कभी तो वह तौलिया अथवा साबुन देने के लिए स्नान-घर मे भी पहुँच जाती है।

पहली बार तो ऐसे सार्वजनिक स्थान मे सबके सामने नगे होकर नहाने मे बड़ा संकोच मालूम देता है, पर धीरे-धीरे इसका अभ्यास हो जाता है। आम जापानी लोगो को तो बचपन से ही यह आदत होती है, इसलिए उनके मन मे तो इस बारे मे कोई विकार ही पैदा नहीं होता। ये स्नान-घर बहुत स्वच्छ, सुन्दर और फूलो से सजे-सजाये रहते है। फूलो की सजावट जापानी जीवन का विशेष अग है। वहाँ के शौचालयो तक मे फूलो के गमले रहते है। जापानी जनता का प्रकृति-प्रेम तथा पुष्प-प्रेम विश्व-प्रसिद्ध है।

छोटी ऑखे, दबी नाक, उभरे गाल, चौड़े ललाट और ठिगने कद-वाले जापानी लोगो मे नम्रता, सरलता और मिलनसारिता कूट-कूटकर भरी रहती है। यो मानव-स्वभाव सभी देशो मे समान-रूप से उत्तम है, पर सामान्य जापानी नागरिक के स्वभाव मे जैसी नम्रता है, उसने अपना विशिष्ट प्रभाव मुझ पर डाला। दोनो घुटने टेककर, सिर जमीन पर रखकर प्रणाम करने का और झुक-झुककर विदा होने का जापानी ढग अपनी निराली शान रखता है। आपने यदि किसीको [illegible]

मदद की, तो धन्यवादो से आपकी झोली भर दी जायगी। आमतौर पर मेहनती और ईमानदार जापानी लोग खेती और उद्योगो मे यूरोपीय देशो को भी पछाडते हुए आगे बढ रहे है। यदि हम जापान को एशिया का सर्वाधिक समृद्ध देश कहे तो अतिशयोक्ति न होगी। यद्यपि जापान हर तरह का कच्चा माल बाहर से मॅगाने के लिए मजबूर है, तथापि हर घर उद्योगो की क्रीडा-भूमि बनता जा रहा है। आकर्षक और सस्ता सामान तैयार करने मे जापान का मुकाबला कोई नही कर सकता। जेबघडी जैसे छोटे रेडियो, टेप रिकार्डर और कैमरे जापान की अद्भुत विशेषता है। घरो की कौन बात करे, कारो और टैक्सियो मे टेलीविजन लगे है। युद्ध के बाद जापान की आम जनता का जीवन-स्तर तेजी के साथ ऊपर उठा है। इसके कई कारण है, पर सबसे बडा कारण है खेती और घरेलू उद्योगो को दिया गया महत्त्व। जापान की बुनियाद खेती पर खडी है और यह बुनियाद काफी मजबूत है। हमारे भारतवर्ष मे बडे-बडे उद्योगो का महल अविकसित खेती की कमजोर बुनियाद पर खडा किया गया है। यह महल देखने मे कितना ही सुन्दर लगता हो, पर मजबूत बुनियाद के अभाव मे उसके कभी भी गिर पड़ने का खतरा है। खेती, उद्योग, व्यापार और शिक्षा की बहुत कुछ जिम्मेदारी स्थानीय नगरपालिकाओ पर है। जापान की नगरपालिकाओ का कार्य केवल पानी, बिजली और सफाई तक ही सीमित नही है, उन पर पूरे नगर के सर्वांगीण विकास का उत्तरदायित्व रहता है, यहॉ तक कि पुलिस-विभाग भी नगरपालिका के अन्तर्गत है। जापानी भाषा मे नगरपालिका को 'शिया कुशो' कहते है, जिसका अर्थ होता है—'नगर की सरकार'। खेती और उद्योगो के विकास की बुनियादी जिम्मेदारी नगर की सरकारो पर है।

इसमे कोई सन्देह नही कि सारे संसार मे नगरो के विस्तार का जो तूफान आया है, उससे जापान भी अछूता नहीं है। गॉव के लोग तेजी से शहरों की ओर दौड़ रहे है। आज हालत यह है कि ७० प्रतिशत

लोग शहरो मे पहुँच गये है और केवल ३० प्रतिशत लोग गाँवो मे बचे है। परिणामस्वरूप शहरो पर आबादी का भारी दाब है, जिसे सँभाल पाना कठिन हो रहा है। जिन दिनो मै टोकियो मे था, टोकियो के लोगो को भयकर जल-सकट का सामना करना पड़ रहा था। जापान की रेले अपनी कुशलता और तेज रफ्तार के लिए विख्यात है। इस छोटे-से द्वीप मे अधिक सडके और रेले बिछाने के लिए स्थान नही है। रेलो पर सडके, सडको पर रेले, इस तरह कई मजिले बनाकर स्थान बचाया जा रहा है। पहले तो आबादी के मुकाबले यह द्वीप ही छोटा है. फिर जो है, वह भी पहाडो से भरा है। चतुर एव परिश्रमी जापानी किसानो ने पहाडो को भी कृषि-भूमि मे परिवर्तित कर लिया है। फिर भी नगरीकरण एक समस्या बनती जा रही है। इन शहरो मे भारी उद्योग है, इसलिए वहाँ पर न खुली हवा है, न खेत और खलिहान ही। चारो ओर गन्दगी, भीड और शोरगुल। ट्रको और गाडियो की भड-भड के कारण नगरो की हालत वही है, जो हमारे कलकत्ता आदि शहरो की है।

हमारे जापान-प्रवास के दिनो मे टोकियो, ओसाका आदि बड़े शहर 'ओलम्पिक' की तैयारियो मे नव-शृगार कर रहे थे। टोकियो शहर के नीचे 'भू-गर्भ रेले' बिछ रही थी। टोकियो शहर से हवाई अड्डे तक अपने ढग की अद्वितीय 'मोनोरेल' बनी है। इसी तरह ओसाका से टोकियो तक करीब चार सौ मील तक एक नयी रेल लाइन बनी है, जो १२५ मील प्रति घण्टे की रफ्तार से दौडा करेगी। यह रेल दुनिया की सबसे तीव्र गतिवाली रेल होगी। इसी तरह नये-नये होटलो का भी तेजी से निर्माण हुआ है। जापानी पद्धति के इन होटलो मे पलग, तकिया, सोफा, कुर्सी, टेबुल आदि नही होते। खूबसूरत चटाइयो पर गद्दियाँ बिछाकर बैठना और सोना। 'हाशी' लकड़ी की चापस्टिक से, छुरी-काँटा से नही, भोजन करना भी विशेष आनन्द देता है। जापानी भोजन अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। जापानी भोजन मे मछली का प्राधान्य रहता है। इसलिए मुझ जैसे शाकाहारी को थोडी दिक्कत स्वाभाविक थी, लेकिन

मदद की, तो धन्यवादो से आपकी झोली भर दी जायगी। आमतौर पर मेहनती और ईमानदार जापानी लोग खेती और उद्योगो मे यूरोपीय देशो को भी पछाड़ते हुए आगे बढ रहे है। यदि हम जापान को एशिया का सर्वाधिक समृद्ध देश कहे तो अतिशयोक्ति न होगी। यद्यपि जापान हर तरह का कच्चा माल बाहर से मॅगाने के लिए मजबूर है, तथापि हर घर उद्योगो की क्रीडा-भूमि बनता जा रहा है। आकर्षक और सस्ता सामान तैयार करने मे जापान का मुकाबला कोई नही कर सकता। जेबघडी जैसे छोटे रेडियो, टेप रिकार्डर और कैमरे जापान की अद्भुत विशेषता है। घरो की कौन बात करे, कारो और टैक्सियो मे टेलीविजन लगे है। युद्ध के बाद जापान की आम जनता का जीवन-स्तर तेजी के साथ ऊपर उठा है। इसके कई कारण है, पर सबसे बडा कारण है खेती और घरेलू उद्योगो को दिया गया महत्त्व। जापान की बुनियाद खेती पर खडी है और यह बुनियाद काफी मजबूत है। हमारे भारतवर्ष मे बडे-बडे उद्योगो का महल अविकसित खेती की कमजोर बुनियाद पर खडा किया गया है। यह महल देखने मे कितना ही सुन्दर लगता हो, पर मजबूत बुनियाद के अभाव मे उसके कभी भी गिर पड़ने का खतरा है। खेती, उद्योग, व्यापार और शिक्षा की बहुत कुछ जिम्मेदारी स्थानीय नगरपालिकाओ पर है। जापान की नगरपालिकाओ का कार्य केवल पानी, बिजली और सफाई तक ही सीमित नही है, उन पर पूरे नगर के सर्वांगीण विकास का उत्तरदायित्व रहता है, यहॉ तक कि पुलिस-विभाग भी नगरपालिका के अन्तर्गत है। जापानी भाषा मे नगरपालिका को 'शिया कुशो' कहते है, जिसका अर्थ होता है—'नगर की सरकार'। खेती और उद्योगो के विकास की बुनियादी जिम्मेदारी नगर की सरकारो पर है।

इसमे कोई सन्देह नही कि सारे ससार मे नगरो के विस्तार का जो तूफान आया है, उससे जापान भी अछूता नहीं है। गॉव के लोग तेजी से शहरों की ओर दौड रहे है। आज हालत यह है कि ७० प्रतिशत

में हजारों मुर्दे बह रहे थे। ट्रकों में हजारों मुर्दे भरकर हिरोशिमा को बडी मुश्किल से साफ किया गया।

जापान का राष्ट्रीय सविधान अनूठा है। वह 'शान्ति-सविधान' के नाम से प्रसिद्ध है।

जापान के कई विश्वविद्यालयो ने हिन्दी-शिक्षण की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया है। भारत मे तो कम ही विश्वविद्यालयो मे जापानी भाषा की शिक्षा का प्रबन्ध है, पर टोकियो विश्वविद्यालय तथा ओसाका विश्व-विद्यालय मे हर साल पचासो छात्र हिन्दी परीक्षाओ मे उत्तीर्ण होते है। हिन्दी भाषा के प्रति जापान मे इतना ध्यान दिया जा रहा है, इसकी हमे कल्पना भी नही थी। हम भारत मे अग्रेजी पर इतना ज्यादा जोर देते है कि अन्य विदेशी भाषाओ और खासतौर से एशियाई भाषाओ की प्राय: उपेक्षा हो जाती है। इसीलिए आज एशियाई देशो से भारत का सम्बन्ध बढाने की तरफ ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। मैने ७०० मील की पदयात्रा तथा कई हजार मील की रेल-यात्रा करके जापान को खूब देखा और समझा। ७५ दिन का समय ज्यादा नही होता, पर मुझ जैसे पृथ्वी-परिक्रमा करनेवाले के लिए यह समय बहुत कम भी तो नही।

हिरोशिमा-दिवस

●

६ अगस्त और ९ अगस्त १९४५ ऐतिहासिक बर्बरता के दिन है। चन्द पलो मे हिरोशिमा और नागासाकी के हजारो मनुष्यो को भयङ्कर आणविक ज्वाला मे भस्मसात् कर दिया गया। निरपराध और निरीह बाल-बच्चे, स्त्री-पुरुष युद्ध-पिपासु कमाण्डरो की निर्दय हिसा की अग्नि मे झोक दिये गये। दु:ख तो यह है कि इस करुणाहीन घटना के बावजूद युद्ध के निकम्मेपन को इन्सान ने नही समझा।

१९ साल पहले जो घटना घटी, उससे कही बढ-चढकर आज युद्ध की ज्वाला फूट सकती है, क्योकि आज भी विश्व की शक्तियाँ अणु-अस्त्रो

हमारी सहयात्री अमेरिकी बहन मेरी हार्वी तो ऑसुओ मे नहा रही थी। किसी अमेरिकी शान्तिवादी का ऐसे अवसर पर भावुक बन जाना स्वाभाविक है। हम सहज ही कल्पना कर सकते है कि ऐसी स्थिति मे श्रीमती मेरी बहन की मनोदशा क्या हो सकती है? उसके ऑसुओ की धारा देखकर तथा टोकियो से हिरोशिमा की उसकी पद-यात्रा का इतिहास जानकर तो पत्रकार तथा टेलीविजन के कैमरे मुस्तैदी के साथ श्रीमती मेरी की ओर झुक गये। नागरिको की इस सभा के बाद १५ मिनट तक टेलीविजन पर हमारा कार्यक्रम रखा गया और यह कार्यक्रम 'हिरोशिमा-दिवस' के विशिष्ट कार्यक्रम के रूप मे सारे जापान मे प्रसारित किया गया।

पिछले साल यहॉ की अणु-विरोधी सस्था 'गेनसुइ क्यो' मे जो दो दल हो गये थे, उनमे एक दल को कम्युनिस्ट दल का समर्थन प्राप्त है और दूसरे दल को समाजवादी दल का। जापान की कम्युनिस्ट पार्टी पीकिंग-ब्रॉड कम्युनिज्म की समर्थक है और रूस-अमेरिकी शान्ति-प्रयत्नो मे विश्वास नही करती। कम्युनिस्ट समर्थित 'गेनसुइ क्यो' का वार्षिक सम्मेलन इस बार हिरोशिमा मे न होकर टोकियो तथा क्योतो शहर मे हुआ। सम्मेलन मे अनेक तरह के विवाद पैदा हुए। इसलिए रूस, भारत आदि के कुछ प्रतिनिधि-मण्डलो ने इस सम्मेलन का बहिष्कार किया और समाजवादी समर्पित 'गेनसुकीन' के सम्मेलन मे भाग लिया। यह सम्मेलन हिरोशिमा मे आयोजित हुआ था।

जापान मे स्वतन्त्र तथा निष्पक्ष शान्ति-आन्दोलन की अत्यन्त आवश्यकता है। हिरोशिमा के कुछ निष्पक्ष लोगो ने 'शान्ति-अध्ययन सघ' की स्थापना की है। यहॉ के लोगो को इस सघ से बडी उम्मीदे है। इस सघ की ओर से इसी वर्ष एक प्रतिनिधि-मण्डल अमेरिका, यूरोप तथा रूस की यात्रा कर आया है। इस प्रतिनिधि-मण्डल मे अधिकतर अणुबम-पीडित, जिसे जापानी भाषा मे 'हिबाकुशा' कहते है, भाई-बहने थी। यह संघ अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-आन्दोलनो मे सम्बन्ध बढाने

के प्रयत्न मे भी है। हिरोशिमा मे डब्ल्यू. आर. आई. के कुछ सदस्य भी निष्पक्ष और लगनशील है। यदि शान्ति-अध्ययन संघ और डब्ल्यू. आर. आई. के लोग मिलकर शान्ति-आन्दोलन का नेतृत्व करे, तो सारे विश्व के शान्ति-आन्दोलन को सबल नेतृत्व प्राप्त होगा। अभी शान्ति-सस्थाएँ अपने-आपको छोटी और कमजोर महसूस करने के कारण आगे नही बढ पा रही है, ऐसा लगता है।

जापान-बौद्ध-संघ की ओर से भी कुछ शान्ति-प्रवृत्तियाँ चलती है। पर जापान-बौद्ध-संघ एक धार्मिक सम्प्रदाय है, इसलिए अपने सम्प्रदाय के बाहर उसका प्रभाव नहीं के बराबर है। कुछ शान्ति-सस्थाओ के लोगो को भी जापान-बौद्ध-सघ के साथ निकट सम्पर्क जोड़ने मे संकोच होता है। उन्हे इस बात का भय है कि "अगर हम इन बौद्ध-संघ के भिक्षुओ के साथ अधिक सम्पर्क रखेगे, तो हम पर भी धर्म की चिप्पी लग जायगी।"

जापान-बौद्ध-सघ के प्रमुख फूजीओी गुरुजी के साथ हम लोग तीन दिन तक रहे। एक शान्ति-स्तूप के उद्घाटन-समारोह मे भी हमने भाग लिया। फूजीओी गुरुजी के अलावा श्री मरियामाजी और श्री इमाईजी के शुद्ध हृदय से निकली हुई बातो ने हमे बहुत प्रभावित किया।

वापस भारत की ओर

●

ये जापान के प्रवास के साथ हमारी विश्व-यात्रा पूरी हुई। एक फ्रेन्च जलयान 'वियतनाम' मे हम लोग भारत के लिए रवाना हुए।

हॉगकॉग मे हमारा जहाज दो दिनो तक रुका। हॉगकॉग दो हिस्सो मे बॅटा हुआ है। एक हिस्सा चीन की मुख्य भूमि के साथ ही लगा हुआ है और दूसरा हिस्सा समुद्र के बीच एक छोटे-से टापू के रूप मे है। यह एक करमुक्त पोर्ट होने के कारण यहाँ हर प्रकार की चीजे काफी सस्ते दामो मे मिल जाती है। अभी भी हॉगकॉग ब्रिटिश उपनिवेश है।

आप लोग जब य
ऐसा नही लगता
लता के साथ सम्पन्न
करके दिखा दिया ।

आपकी यात्रा की क
काश ! मैं फिर से
को शांति के रास
करते हुए इस भू-
गांधी के देश भारत
होना सम्भव है ।